

घोपट राजा, टके सेर भाजी टके मेर ग्याजा ।'

(ग) पोपाबाई का न्याय बड़ा निश्चिन्ध था। एक बार दो व्यापारियों ने बानो मिर्च का मोटा किया। वायदा हो चुकने के कुछ दिनों बाद कानो विर्च के भातों में असाधारण तेजी आ गई। देने वाले व्यापारी का मन सोम में पग पड़ा। वह भागा-पीछा करने लगा। उनका सोन बादगाही पायली भर कर देना-नेता निश्चित हुआ था। अब यह व्यापारी कहने लगा—'मैं आधी पायली से दूँगा।' दोनो का यह विवाद पोपाबाई की कचहरी में गया।

पोपाबाई ने इनका निपटारा करने के लिए बीच-बचाव करके कहा—'तुम्हारी सीधी पायली भी जाने दो, तुम्हारी औधी भी जाने दो, आधी पायली ने दे दो।' यह न्याय सुनकर लोग विसविसाकर हस पड़े। बेचारा व्यापारी फिर हाथ मारकर रह गया, किन्तु आगे शिकायत कहाँ करे? कौन सुने।

इस प्रकार जब सरासर अन्याय होता है और फिर उसकी सुनाई भी नही हो तो लोग प्रायः कहा करते हैं—'यह पोपाबाई का न्याय है।' इस घटना को लेकर एक पद्य भी प्रसिद्ध है—

मिरी शिरधी बाणीये महमूदी की माप ।
भरवा नी बखते कहे ऊध्या भरल्यो आप ।
ऊध्या भरल्यो आप तब हुआ झगडा भारी ।
झगडत झगडत बिहु गया तब राजदुवारी ।
आड न्याय भर खेखे पाही पोपा छाप ।
मिरी शिरधी बाणीये महमूदी की माप ॥

(उपदेश रत्न कथा कोप भाग-३ प्रकरण ७६)

१६० जूठन का खींचा हुआ कृत्ता जिन घरों में जूठन मिलती है वहाँ समय पर अपने-आप पहुँच जाता है। उसी प्रकार रस-सोनूप मुनि अच्छे-अच्छे घरों में रस का खींचा हुआ समय पर जा धमकता है।'

१६१. जो सूत्र और अर्थ को जाने बिना उसके विरुद्ध बात कहते हैं वे धर्म ही गालो के गाले चलाते हैं, अर्थात् जादूगर की तरह गाल फुलाकर सोह के गोने निकालते हैं और उन्हें हुया में गायब कर देते हैं।'

१. निग घर जाण तेहिया, ज्यू डोरी साख्यो खान ।

साजे आहार मूटा पड़े, ओ पेठ भरण रो तान ॥

(साध्याचार री ओपई डा० १ गा० १२)

२. कई भेषधार्या री एहकी सरधा, बहे साधा में माठी सेव्या नही आव ।

ते मूत्र अर्थ जानै नही भोला, गाला रा गोला धड धड खवाई ॥

(यझा री ओपई डा० ३ गा० १६)

१६२. वर्तमान में साधु ममाज की स्थिति का चित्रण स्वामीजी ने अपने शब्दों में इस प्रकार किया है—

जद पिण पाछडी या अति घणा रे, तो हिवडां पिण पाछडी नो जोर रे ।
 चीर जिणद मुगते गया पछे रे, भरत में हुओ अधारी घोर रे ॥
 तिण में धर्म रहसी जिणराज रो रे, थोड़ी सो आगिया नो चमत्कार रे ।
 अक्की परे नें वने मिट जावसी रे, पिण निरतर नही इकबीस हजार रे ॥
 अल्प पूजा होसी सुघ साध री रे, आगूच धीर गया छै भाख रे ।
 अमाधु री पूजा महिमा अति घणी रे, ठाणाअग माहे तिण री साख रे ॥
 ऊगे ऊगे नें बने ऊगियो रे, तो आपमिया बिन किम उगाय रे ।
 एण न्याय भविषण नही धर्म सासतो रे, हुय हुय झलपट नें बुझ जाय रे ॥
 लिगरा लिगरी बचसी अति घणा रे, करसी माहोमाहि जगडा राड रे ।
 जे कोई काई तिण में खूचणो रे, क्रोध कर लडवा नें छैतयार रे ॥
 बेला बेली करण रा लोभिया रे, एकत मत बाधण सू काम रे ।
 विकला ने भूड भूड भेला करे रे, दिराए गृहस्थ ना रोकड दाम रे ॥
 पूज री पदवी नाम धरावसी रे, भूँ छै सासण ना नायक साम रे ।
 पिण आधारे डीला सुघ नही पालसी रे, नहीं कोइ आतम साधन काम रे ॥
 आचार्य नाम धरासी गुण बिना रे, पेट भरा ज्वारी परिवार रे ।
 सपटी सो हूँसी इन्दी पोखवा रे, कपट करस्यामी सरस आहार रे ॥
 तकसी तो देखी आरा टामला रे, रिपसी एजाणी जीमणवार रे ।
 पात जीमे तिहा जानो पाघरा रे, आग्या लोपे हूँसी बेकार रे ॥

(साध्वाचार री चौरई द्वा० ३ गा० ६ से १४)

१६३. गुरु के मृत्योक्तन के लिए स्वामीजी ने लकड़ी की डांडी का दृष्टान्त दिया । जैसे—लकड़ी की डांडी के तीन छेद होते हैं उनमें बीच का छेद सम स्थान पर न हो तो बाण पड़ती है, सम स्थान पर हो तो बाण नहीं पड़ती । वैसे ही देव, गुरु, धर्म, इन तीनों के बीच में गुरु आते हैं । यदि गुरु अच्छे हों तो देव भी अच्छे होते हैं और धर्म भी अच्छा बनता है और गुरु अच्छे न हों तो देव भी अच्छे नहीं होते और धर्म भी सच्चा नहीं बनता । जिस प्रकार—१ 'ब्राह्मण' गुरु मिलते हैं तो देव-शिव, धर्म-ब्राह्मणों को जिमाओ बतलाते हैं । २ 'भोपा' गुरु मिलते हैं तो देव-धर्मसाजा और धर्म-भोपा को जिमाओ बतवाने हैं । ३ 'बार्वाडिया' गुरु मिलते हैं तो देव रामदेवजी, धर्म-ब्रम्हों की रान जमाओ बतलाते हैं । ४ 'मुन्ता' गुरु मिलते हैं तो देव-अन्ता, धर्म—

एर चरन्ती मेर चरन्ती, सेउ चरन्ती बहु तेरा ।

हुकम आया अन्ता साहिब रा, सो गया बादूग तेरा ॥

५, निपय गुरु मिलते हैं तो देव—'अरिहंत' धर्म भगवान् की आज्ञा में बतलाते

है। कहा भी है—

‘गजी मेमुदी वासती, तीनूँ एकण गोत।
जिण नै जैमा गुरु मिल्या, वैसा काढ़या पोत।’

जिस प्रकार गजी—एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा जिसका अरत रूप चौड़ा होता है।

मेमुदी (मुहम्मदी)—एक प्रकार का बड़िया वस्त्र—मलमल। बामनी—एक प्रकार का मोटा लाल रंग का कपड़ा विशेष।

ये तीनों धागों (तारों) की दृष्टि से एक ही श्रेणी के हैं पर बुनने वाले उन्हें तीन तरह का कपड़ा बना देते हैं उसी प्रकार जिन्हें जैसे गुरु मिलते हैं वैसा ही उन्हें और देव बतलाने हैं।

(भिक्षु दुष्टान्न २६३)

१६४. एक लड्डू में जहर मिला है और एक में नहीं पर समझदार आत्मी सन्देह मिटे बिना दोनों ही लड्डू नहीं खायेगा। वैसे ही साधु और अनाधु का निर्णय किये बिना चतुर आदमी साधुत्व की दृष्टि से बन्दना नहीं करता।

(भिक्षु दुष्टान्न २७)

१६५. किसी नगर में दो जीहरी रहते थे। दोनों भाई अलग-अलग रहने लगे भी उनमें बहुत प्रेम था। बड़ा भाई गुजर गया। घर का भार सब बालक के कंधों पर आ गया। एक बार माँ के हाथ में कठिनाई आने पर उसने एक हीरो की गठरी निहाली और उसके दाम उठाने के लिए बालक को लेकर चाचा के पास भेज दिया। चाचा ने गठरी छोटकर देखा—‘समूचा मांस ही नकली है, केवल काँच के टुकड़े हैं।’ फिर उसके मन में आया यदि अभी मैं नकली बहुर रंगू या सोडा दू तो सम्भव है इनकी माँ को बड़ी चोट लगेगी या कुछ बुरी बगवान भी हो उठेगी—। उसने हीरो को गुरुशिर रखने की बात कहकर कभी राह आने पर मगवाने का आश्वासन दे दिया। पुत्र ने माँ से गठरी देकर सब बातें बता दी। माँ अब मुनहले भविष्य की आशा में पुत्र को दुसारे-द्वार से पाने लगी। धीरे-धीरे पुत्र बड़ा हुआ, चाचा के पास उसने अपने पैतृक व्यापार में अर्द्ध निपुणता प्राप्त कर ली।

चाचा ने अब समय देखा। हीरो की गठरी मगवाई। लड्डू का माँ के हाथ में गठरी मागने के लिए आया। माँ ने निजोरी में निकालकर पुत्र के हाथ में दे दी। लड्डू के ने अभी ही गठरी खोली तो उसका मन झुझसा उठा। गठरी को उसने बाई फेंक दिया। माँ चिल्ला उठी—‘अरे बेडा ! यह क्या कर रहा, मेरा कनेडा फिट फेंका !’ लड्डू—‘माँ कनेडा है ही कहाँ ? ये तो कीरे काँच के टुकड़े हैं।’ माँ—‘है !’ नेत्र चाचा ने बदल दिये होवे ? राम दे राम ! कैसा कसपुण है !’ लड्डू—‘विनकुन बलन है। मैं बड़ी बीडा था, मेरे सामने ही उन्होंने खोली और उनी कप

मेरे हाथ में दे दी। मां—फिर उन्होंने कहा क्यों नहीं, यह घोघा क्यों दिया ?

सड़का चाचा के पास आया और बोला इसका क्या रहस्य है, क्यों नहीं उस दिन बताया गया कि ये कांच के टुकड़े हैं, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर चाचा। चाचा—बेटा ! मैंने उस दिन देखा लिया था यह समूचा माल ही नकली है, काच है पर मैं उस दिन यह देता तो तुझे और तेरी मा को कड़ी चोट लगती। समय है हमारा साथ ही बिगड़ जाता, तेरी पढ़ाई लिखाई भी नहीं हो सकती थी। अब तू सपना हो गया है, स्वयं परीक्षा कर सकता है। इसलिए आज भगवाकर तुझे दिखाने का विचार आया।

मां और पुत्र का मन आश्चर्य हो गया। मां ने बड़े दुलार से बेटे का सिर चूम लिया। बाहरे बेटा ! घाप जमा ही जीहरी बन गया है न ? वास्तव में मनुष्यों में जब तक परीक्षक बुद्धि जागृत नहीं होती तब तक उनके लिए काच और हीरे की तरह सत्य और असत्य की परीक्षा नहीं होती। किन्तु जब विवेक की आंख उघड़ जाती है, अज्ञान का पर्दा हट जाता है तब मनुष्य मणि और काच का भेद अपने आप कर लेता है। सत्य-असत्य की रेखा स्पष्ट समझ लेता है। आचार्य भिक्षु ने इस विषय में कहा है—

काच तणा देघी मिणकला, अण समझ्या हो जाणें रत्न अमोल।

ते निजर पड़्या सराफ री, कर दीपो हो त्वारो कोडया मोल ॥

(अनुकथा री चौपई ढा० ७ भा० १६)

१६६ कई व्यक्ति कहते हैं—‘कोई साधु दोष का सेवन करे तो भी गृहस्थ से तो अच्छा है, इसका हार्द समझाने के लिए स्वामीजी ने दृष्टान्त दिया—एक साहूकार की दूकान पर सुबह-सुबह एक आदमी आया। उसने एक पैसे का गुड़ मांगा। दूकानदार ने पैसा लेकर गुड़ दे दिया। सोचा सुबह-सुबह बित्री हुई है, ताबे का पना मिला है। दिन में माल अच्छा मिलेगा। उसने पैसे को सिर पर चढ़ाया और अपनी रोकड़ में डाल दिया।

दूसरे दिन सुबह वही आदमी एक रुपया भुनाने आया। दूकानदार चादी का रंग देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने रुपये के खुने पैसे दे दिये। रुपये को सिर पर चढ़ाकर रोकड़ में रख दिया। तीसरे दिन फिर वही आदमी एक छोटा रुपया लेकर भुनाने आया। दूकानदार ने उसे बजाया तो वह छोटा रुपया निकला—ताबे के ऊपर चादी का झोल किया हुआ था। उसने झुझलाकर रुपया फेंक डाला। आज तो सुबह-सुबह छोटा रुपया दिखाई पड़ा, बहुत बुरा हुआ।’

प्राहक बोला—‘सेठजी ! आप झुझला क्यों उठे ? परसों जब मैं ताबे का पैसा लाया था तो आपने खुश होकर सिर पर चढ़ाया। कल जब मैंने चादी का रुपया भुनाया तो प्रसन्न हुए, उसकी बदनामी की और आज जब मैं ताबे और चादी दोनों का मिला हुआ रुपया लाया हूँ, तो भाव खोल क्यों गये ? प्रत्युत इसकी दो

बार बदना करनी चाहिए।'

दूकानदार—'सूखें ! यह मिमावट अच्छी नहीं होती । शुद्ध तांबा और चांदी ही अच्छे हैं । किन्तु मिमने पर मोश खपा बन जाता है, उसमें नरन आ जाती है नक्ली के दर्शन ही बुरे होते हैं।'

इस तरह पैसे के समान तो गृह्य थायक है, रुपये के समान साधु है, छोटे रुपये के समान बेघरारी साधु है, ऊपरी बेघ तो साधु का है पर साधु के लक्षण नहीं है अतः बे बन्दनीय नहीं है । थायक देशत्रों का और साधु महात्रों का पालन करने में स्तुत्य और मोश के आराधक है परन्तु उनके अभाव में बेघरारी साधु न स्तुत्य है और न मोश के आराधक ।

(मिम्बु दृष्टान्त २६५)

१६७ किसी व्यक्ति ने कुएँ पर दरी बिछाकर उसके चारों ओर पत्थर के टुकड़े रख दिये । अनजान व्यक्ति उस पर आकर बैठता है तो वह कुएँ में गिरकर अपने प्राणों को समाप्त कर देता है ।

इस उदाहरण को घटित करते हुए स्वामीजी कहते हैं—'कुगुरु तो कुएँ के समान और साधु का बेघ दरी के समान है । उन्हें कोई अशानी गुरु-बुद्धि में बदना आदि करता है वह भव-समुद्र में डूब जाता है।'

कुगुरु भटभूजा के तुल्य, उनकी विपरीत थड़ा भाड़ के समान और बटुर्मा जीव चनों के तुल्य है ।

कुगुरु उन प्राणियों को विपरीत थड़ा रूप भाड़ में झोंक देते हैं ।

१६८ सुगुरु और कुगुरु को समझाने के लिए स्वामीजी ने तीन प्रकार की नौका का उदाहरण दिया—'एक तो साजी काष्ठ की नौका है । दूसरी फूटी नौका तथा तीसरी पत्थर की नौका है । साजी नौका के समान तो शुद्ध साधु है जो स्वयं भव-मिम्बु में सरते हैं और दूसरों को सारते हैं, फूटी नौका के समान निबन बेघरारी साधु है जो खुद डूबते हैं और भोले लोगों को डूबाते हैं । पत्थर की नौका के समान तीन मौं जेमठ पाखड़ी है जो प्रत्यक्ष रूप में बिगड़ दिखाई देते हैं । समझदार

१. जाजम बिछाई बूवा ऊपर, बिहकानी रे मेल्लो ऊपर भार ।
मौला बेस तिग ऊपर ते दूबे मर रे तिग बूवा मझार ॥
तिम कुगुरु छे बूवा सारिछा, जाजम सम रे कने माघ रो भेछ ।
र्याने गुरु लेखव बदना करै, ते दूबे रे मूर्ख अंध अदेछ ॥

(साधवाचार री बोपाई डाल १० गा० १.७)

२. कुगुरु भटभूजा सारिछा, र्यागी सरछा हो छोटी भाड़ समान ।
भारीकर्म जीव बिगा सारिछा, र्याने मोर्थ हो छोटी सरछा मे आण ॥

(साधवाचार री बोपाई डाल १० गा० ८)

आदमी प्रथम तो उन्हें स्वीकार नहीं करता, बदाचित् गुह रूप में अंगीकार कर भी लेता है तो उसके लिए उन्हें छोड़ना सुगम है। फूटी बोका के ममान जो वेप-धारी है, उन्हें छोड़ना कठिन होता है। विवेकी मनुष्य ही उन्हें छोड़ सकता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त ३०१)

१६६. कुछ साधु आधाकर्मों स्थानक (उनके लिए बनाया गया मकान) में रहते हैं, लेकिन जब कोई व्यक्ति उनमें रहता है कि स्थानक आपके लिए बनाया गया है, तब वे कहते हैं—'हमने कब कहा था कि हमारे लिए स्थानक बनाना।' इस पर स्वामीजी ने उदाहरण देते हुए कहा—

(क) जब जवाई समुराल में जाता है तब कब कहता है कि हलुआ मेरे लिए बनाना? पर भोजन के साथ खा अवश्य लेता है, तब ही समुराल वाले उसके लिए दुबारा बनाते हैं। यदि जवाई हलुवा खाने का त्याग कर दे तो वे नये बनाए।

इसी तरह वे कहते हैं कि हमने कब कहा था कि हमारे लिए स्थानक बनाना, पर अपने लिए बने हुए स्थानक में तो रह ही जाते हैं। सभी गृहस्थ लोग दूसरी बार बनाते हैं। यदि वे अपने लिए बनाये गए स्थानक में रहने का त्याग कर दें तो श्रावक लोग क्यों बनाएंगे?

(भिक्षु दृष्टान्त ६४)

(ख) लड़का कब कहता है कि मेरा सम्बन्ध (सगाई) कोजिए, पर सम्बन्ध होने पर शादी कर लेता है? बालक! बहू किसकी कहलाती है? बालक की। घर किसका बनता है? बालक का। ठीक इसी प्रकार वे स्थानक बनाने के लिए कहते नहीं पर स्थानक उनका ही कहलाता है और वे ही उसमें सहर्ष रहते हैं। इसलिए मानना चाहिए कि स्थानक उनके लिए ही बनाया गया है।

(भिक्षु दृष्टान्त ६१)

(ग) जो साधु आधाकर्मों स्थानक में रहते हैं और हम घर-बार के स्वामी हैं ऐसा कहते हैं, इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—

१. धनी के उपासरा २. मधेरण के पोशाल ३. फकीर के तक्रिया ४. भक्तों के स्थान ५. छुटपुट भक्तों के मंडी ६. कनफडों के आसन ७. सन्दासी के मठ ८. रामस्नेहियों के रागद्वार या राम मोहिल्ला ९. घर के मालिक के घर १०. सेठों के हूवेसी ११. गांव के स्वामी के कोठरी तथा राबला १२. राजा के महल या दरबार और १३. साधुओं के स्थानक।

इनमें सिर्फ नाम का अन्तर है लेकिन सब घर के घर ही हैं। जैसे—'कहीं पर तो 'कसी बूही' (खेत आदि में काम आने का उपकरण) कहीं पर 'कुदास बूहा' कहते हैं, पर छहवाय के जीवों का आरम्भ-समारम्भ तो सर्वत्र हो ही जाता है।

बधनी और करणी में मगसा, वाचा, कर्मणा एक रूप रहना ही साधु के लिए हितकर है।

(भिक्षु दृष्टान्त ३०८)

२००. कई गांधु कहते हैं— 'हम तो जीवों की रक्षा करते हैं पर भीष्मजी नहीं करते।' इस पर स्वामीजी ने कहा— 'एक चौकीदार था, उसने चौकी देरी तो छोड़ दी और चोरी करना शुरू कर दिया। लोगों को कष्ट कि मैं चौकी सगाना हूँ इसलिए मुझे पैसे मिलने चाहिए। लोग बोले— तुम्हारी चोरी तो दूर रही पर तू चोरी करना छोड़ दे। तू दिन में तो दुकान, घर आदि देखकर जाता है और रात में वहीं पर चोरी करता है। तुमको घर बैठे ही पैसे इकट्ठा करने देंगे। तूम चोरी करना छोड़ दो।'।

स्वामीजी ने कहा— 'ठीक इसी प्रकार वे कहते हैं कि हम जीवों की रक्षा करते हैं पर गाँव को प्रमार्जन किये बिना ही किवाड़ खोलते हैं, बन्द करते हैं, त्रिमय अनेक जीव मरते हैं अब बचाने तो दूर रहे कम-से-कम जीवों का कष्ट करना तो छोड़ें।'।

(भिक्षु दृष्टान्त १९)

२०१ कई अज्ञानी मनुष्य ऐसे हैं जिनको दूसरा व्यक्ति समझाता है तो भी नहीं समझते और अपनी कही हुई भाषा को भी नहीं समझते। इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा— 'एक बहिन मोची— मेरा पनि जो अगर किसी है उसे दूसरे व्यक्ति नहीं पड़ सकने। तब दूसरी बहिन बोनी— मेरा पनि मोचिगा है उसे वह स्वयं भी नहीं पड़ सकता है। इस तरह के कुट्टिरी मनुष्य को अपनी भाषा के अन्तर्गत है वे केवली— भाषित धर्म की पहचान के कर सकते हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त २०)

२०२ कई गांधु कहते हैं कि गाँव बग़दान में पुण्य, पाप अथवा मित्र न करना चाहिए। इसलिए हम गाँवदान में मोन रहते हैं। इस पर स्वामीजी ने मोनी को का उदाहरण देते हुए कहा— 'एक मोनी मुनि अपने बेलों गठित एक गाँव में जाते। मोनी भी कुछ आदिमूढ़ में जीवजन्म मांगते नहीं पर दूसरे में अनुचित होते कर सकते हैं। इनमें गैर जाते, इनमें गैर भी, इनमें गैर कुछ आदि मासिकी का न किताब का न भीषी, पत्थारी आदि में कहते सगे।'।

कई लोग जान में उल्टा कुछ कम माँगने के लिए कहा— 'तब कुछ ही न हुआ कि वह गाँव का सदान के कष्ट मोहन के लिए संकेत किया।'। 'ये गाँव में काँटों के सदान के कष्ट मोहन मोहन सगे। साग दिखाते सदा उड़े और'।

'मोनी मोन जायगी भर्त, हुकाने बंद जाया हनी।'।

'मोनीगाँव उदय करे, गाँव जाय कहो काट गाँव करे।'।

कई लोग जान में मोन रहते हैं, उनकी मोन मोनी मुनि की तरह समझते हैं कि गाँव में मोन रहने से ही पर गाँवकों का भाजन कराने में पुण्य है'।

मित्र की भावना व्यक्त करते हैं।

(भिक्षु दृष्टान्त २३१)

२०३. कुछ साधु स्वयं हाथों से किवाड़ खोलते हैं और बन्द करते हैं पर गृहस्थ किवाड़ खोलकर बहराता है तो उसके हाथ से नहीं लेते। इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—एक आदमी अन्य गांव जा रहा था। रास्ते में एक हरिजन (भगी) का स्पर्श हो गया। उसने पूछा तुम कौन हो? वह बोला—मैं भगी हूँ। उसने कोप में आकर कहा हाथ! तुमने मेरे भस्ते को छू लिया, चलता हुआ ध्यान नहीं रखता, इस तरह बोल-चाल होने से गाली-गलौच व हाथा-पाई भी हो गई। वह भगी को पछाड़ कर उसके ऊपर बैठ गया। भगी बोला—‘आप मुझे छोड़ दो, मैं आप जो कहूँगे वही करूँगा।’ तब वह बोला—‘तुम्हारी स्त्री से थोका दिलाकर, कोरे घड़े से पानी मंगवाकर, महाजन की दुकान में आटा खरीद कर ऐसी की ऐसी रोटियां बनाकर दे तो छोड़ूँ।’ भगी ने उसकी बात सहर्ष कबूल कर ली। उसने उसी तरह अपनी पत्नी से रोटियां बनवाकर उसको दे दी।

स्वामीजी ने तिष्णर्ष की भाषा में कहा—‘जो समझदार व्यक्ति हो तो उसे मूर्ख समझता है क्योंकि जिसने भगी द्वारा छुई छुई रोटियां तो न खाईं पर उसके द्वारा बनाईं छुई खाईं।’ ठीक उसी तरह वे स्वयं अंधेरी रात में किवाड़ खोलते व बन्द करने हैं, उसमें तो सन्देह नहीं करते और गृहस्थ खोलकर दे तो नहीं लेते।’

(भिक्षु दृष्टान्त २३२)

२०४. एक व्यक्ति ने एक स्त्री से पूछा—‘क्या तेरे पति का नाम पेमा है?’ वह बोली—‘कौन कहता है मेरे पति का नाम पेमा है।’ तो क्या नायू है? उसने कहा—‘कौन नायू है मैं नहीं जानती।’ उसने फिर पूछा—‘क्या पायू है?’ वह तपाक से बोली—‘क्यों है मेरे पति का नाम पायू।’ दो-चार नाम लेने के बाद जब उसका सही नाम आया तो वह चुप हो गई। तब उसने समझ लिया कि यही इनके पति का नाम है जो अपने मुह से नहीं लेती।

स्वामीजी ने कहा—‘इसी प्रकार कुछ साधुओं से पूछा जाय कि सावध दान में पाप है?’ तब वे कहते हैं—‘पाप क्यों होता है। तो क्या मित्र होता है? मित्र क्यों होता है। पुण्य होता है? तब वे मौन धारण कर लेते हैं।’ तब समझदार व्यक्ति समझ लेता है कि इनके सावध दान में पुण्य की श्रद्धा है।

(भिक्षु जश रसायण डा० १७ पृ० ३-६ के आधार से)

२०५. तीन करण—करना, करवाना, अनुमोदन करना तथा तीन योग—घन, वचन, काया ये एक-दूसरे से संबंधित हैं। जो कार्य मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति द्वारा करना अच्छा (शुभ) है तो करवाना और अनुमोदन करना भी अच्छा है। जो कार्य करना बुरा (अशुभ) है तो करवाना और अनुमोदन करना भी बुरा है। इसे निम्नोक्त उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है।

‘अन्तर्दाता ! मेरे बेटे की बहू है।’ उसको देखकर बार-बार राजा का मन सन्नविष्ट होने लगा। गिराहियों को आदेश दिया कि एक बार उभे रोको। पत्नी का बनेजा बाँधने लगा। वह गिराहिये सगी, मुझे क्यों रोवने है? वह मेरे बेटे की बहू है और कोई नहीं।

राजा ने कहा—‘एक बार इसका घूँघट उतार कर देखो। बड़ी रक्साव के बाद क्यों ही घूँघट उतारा तो वह मुन्नीनी मूर्छी बाना नीयवान सामने आ गया।

राजा की आँखों में धून भरगने लगा, पत्नी ! मुझ में भी नहीं बची। एक घर तो शक्ति भी छोड़नी है। राजा ने रानी को बुलाया और उसकी तीव्र भर्त्सना करने हुए पत्नी और रानी को भोज के पाट उतरवा दिया। उस दुष्ट के हाथ पैर काटकर नगर के चौराहे के बीच बन्धों तक गाड़ दिया गया। महा हाथ का बोटवानी जूता वही रखकर गूथना मित्र दी गई कि आने जाने वाला इसकी भर्त्सना करे, इस पर घूँके और इस जूते को इसके गिर लगाए।

पाग से गुजरने वालों में से किसी ने जूता लगाया, किसी ने घूँका, किसी ने मुँह बिचकाकर उसकी निन्दा की। सभी एक भगेही उधर से निवृत्ता, निवृत्त जाकर उभे सराहने लगा—‘वाह रे मर्द ! भरना तो सब को है किन्तु मूँ बड़ी बहादुरी में मर रहा है। आशिर राजा के महसूस तक पहुँच तो गया ही।’

शत से उभे गिरपतार करके राजा के समक्ष खड़ा किया गया। राजा ने सिंह गर्जना करते हुए कहा—‘मेरे शासन में अपराध करने वाला जितने दण्ड का भागी है, उतना ही उभे सहयोग एवं प्रेरणाहून देने वाला। समाज में अपराध प्रति सभी पतननी है जब कुछ लोग बुराई का सहयोग कर पीठ घपघपाने वाले हों। इसलिए इसकी भी वही दशा करो जो उसकी...’

इस प्रकार अपराध करने वाला, उभे सहयोग देने वाला और उसकी सराहना करने वाला तीनों के लिए राजा ने एक न्याय किया।

(उपदेश रत्न कथा कोष भाग १ प्रकरण ८)

स्वामीजी की मान्यता है कि जिन कार्य को करने में धर्म है तो उसके करवाने और अनुमोदन में भी धर्म है और जिन कार्य को करने में धर्म नहीं है, उसके करने और अनुमोदन में भी धर्म नहीं है।

२०६. दुःख उत्पन्न होने पर लोग विलापन करते हैं, इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त दिया एक साहूकार ने ‘खोड़े’ (कोडा—अनाज रखने का बखार) में गेहूँ भर्राये। ऊपर से दल लीपकर उभे मुरझान कर लिया। एक पड़ोसी ने भी उसके देखादेख एक खोड़े धूल, खाद, कचरा बालकर ऊपर से लिपाई कर ली। कालान्तर से गेहूँ के भाव में तेजी आई। दुगुना मुनाफा समझकर साहूकार ने खोड़े को खोल कर गेहूँ बेचना आरम्भ कर दिया। पड़ोसी भी बाजार में जाकर ग्राहकों को गेहूँ

की साईं देकर अपने घर पर साया और ग्योहा ग्योहा । अन्दर में ग्याद निजसी दब वह रोने लगा, देग्यादेग्य सोम भी उसके साथ रोने लगे । बहने लगे—'देगो निजारे के गेहू वी ग्याद हो गई ।' इतने में एक समझदार व्यक्ति ने उतने पूछा—'ओ भाई ! तुमने अन्दर क्या खाया था ?' वह रोता हुआ बोला—'मैंने तो हाथ मही था ।' तब वह बोला—'जब ग्याद खाती तो गेहूँ कहीं से निजालेगे ?'

इसलिए प्राणी जैसे पुण्य-पाप का बंध करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है । बिन्यापान में कुछ नहीं होता, प्रत्युत अशुभ कर्म का बंध होता है ।

(भिक्षु दृष्टान्त २११)

२०७. निरियारी में एक भाई-जो गोत्र में बोहरा खीयगरा था—ने स्वामीजी से पूछा—'जीव नरक में कैसे जाता है ?' स्वामीजी ने कहा—'जिस प्रकार पत्थर भारी होने से कुण्ड में जाता है उसी प्रकार कर्म भार से जीव दुर्गति में जाता है ।'

निरियारी में फिर उसी भाई ने पूछा—'जीव स्वर्ग में कैसे जाता है ?' स्वामीजी ने कहा—'जिस प्रकार काष्ठ का पाटिया हल्का होने से पानी में तैरता है, उसी प्रकार कर्म से हल्का होने पर जीव स्वर्ग में जाता है ।'

(भिक्षु दृष्टान्त १४२)

२०८. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'जीव हल्का कैसे होता है ?' स्वामीजी बोले—'पैसे को पानी में डालने से वह डूब जाता है, पर उस पैसे को तपाकर बूट-कूटकर कटोरी बना लिया जाये तो वह तैरने लग जाती है और अपने रखा हुआ पैसा भी तर जाता है । उसी प्रकार तप सधम के द्वारा आत्मा हल्की होती है और ससार-समुद्र को तरती है ।'

(भिक्षु दृष्टान्त १४३)

२०९. किसी भाई ने पूछा—'महाराज ! साधुओं के अगाथा क्यों होती है ?' स्वामीजी बोले—'कोई व्यक्ति आकाश में पत्थर फेंककर नीचे गिर माड़ कर खा हो गया और पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो पहले फेंका हुआ पत्थर तो गिर पर चोट लगायेगा ही, पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो चोट नहीं लगेगी । ठीक उसी प्रकार पहले पाप कर्म का बंध किया उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, पीछे सावध कर्म का त्याग कर दिया तो दुःख नहीं भुगतना पड़ेगा ।'

(भिक्षु दृष्टान्त १२२)

२१०. रोगादिक ~~होने~~ होने पर मनुष्य को दुःखान्तरण करने चाहिए पर विचारान नहीं करना चाहिए ।

कहा—उमको इस प्रकार सोचना चाहिए—
'किसी आदमी के गिरने पर वह देना नहीं चाहता था पर मेने बने ने जबरदस्ती उमसे ले कर देता है और चतुर मनुष्य ही, वह पहने ही संभट मिट बना

और सिर का बोझ भी उतर गया। इसी तरह रोगादिक उत्पन्न होने पर समझदार को—बधे हुए कमों से छुटकारा हो गया—ऐसा चिन्तन कर विलापत नहीं करना चाहिए।'

(भिक्षु दृष्टान्त २७८)

२११. पुर से बिहार कर भीलवाड़ा जाते समय रास्ते में हेमराजजी स्वामी को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने चन्द्रमाण चौधरी से कहा—'आज तो धिन्नता बहुत हुई।' चन्द्रमाणजी ने कहा—'महाराज! स्वामी भीष्मजी कहते थे कि प्रदेशों में बलामना (हलचल) हुए बिना कमों की निजंरा नहीं होनी।

(भिक्षु दृष्टान्त १२०)

२१२. कैलाश में एक बहूत बार-बार कहती कि स्वामीजी यहां पधारे तो मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। समयान्तर से स्वामीजी वहां पधारे तब उस बहूत को घबराहट में बुझा आ गया। सन्ध्या के समय स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आई और घरघराती आवाज में बोली—'स्वामीजी आप तो यहां पधारे और मुझे बुझा आ गया।' स्वामीजी को उसकी दीक्षा की घोषणा का पता था, अतः उसकी भावना को भापते हुए पूछा—'कहीं दीक्षा के भय से तो तुम्हें बुझा नहीं आ गया?' उसने कहा—'मन में कुछ घबराहट तो हुई थी।' स्वामीजी बोले—'इस प्रकार दीक्षा का प्रमग आते ही घबराहट हो जाती है तो आजीवन दीक्षा का काम तो बहुत ही कठिन है।'

दुर्बल दिल वाला व्यक्ति साधु-व्रत ग्रहण नहीं कर सकता।

(भिक्षु दृष्टान्त ३६)

२१३. खेरवा निवामी चकुरीजी शाह ने स्वामीजी से विनति की—'मेरे मन में सयम लेने की भावना उठती है।' स्वामीजी ने कहा—'तुम्हारा दिल कमजोर है। दीक्षा के समय मोहवश तुम्हारे पुत्रादिक रोने लगे तब साथ-साथ तुम भी रोने लग जाओ तो?'

वह बोला—'हा परिवार वालों से बिछुड़ने के समय स्नेहवश आमू नो मेरे भी आ सकते हैं।'

स्वामीजी ने तत्काल उदाहरण देते हुए कहा—'जवाई 'गौना' कराने के लिए समुदाय जाता है। वापस आते समय उसकी पत्नी अपने माता-पिता से बिछुड़ने के दुःख में रोने लगती है पर उसके साथ-साथ जवाई भी रोने लगे तो लोगों में उसका उपहास हो जाता है। इसी तरह जो साधु बनता है उसके परिवार वाले तो

१. विवाह के बाद भी एक रस्म, जिसमें बर-बधू को प्रथम बार अपने घर-साता है।

की साईं देकर अपने घर पर साया और छोड़ा छोला। अन्दर में खाद निाली तब वह रोने लगा, देखादेखा लोग भी उसके साथ रोने लगे। कहने लगे—‘देखो मित्रों के गेहूँ की खाद हो गई।’ इतने में एक समझदार व्यक्ति ने उसमें पूछा—‘अरे भाई! तुमने अन्दर क्या डाला था?’ वह रोता हुआ बोला—‘झीने ती डाला यही था।’ तब वह बोला—‘जब खाद डाली तो गेहूँ कहाँ से निकले?’

इसलिए प्राणी जैसे पुण्य-पाप का बंध करना है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। बिनापाप से कुछ नहीं होना, प्रत्युत अशुभ कर्म का बंध होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त २१४)

२०७. गिरियारी में एक भाई-जो गोत्र में बोहरा खीरगरा था—ने स्वामीजी से पूछा—‘जीव तरक में कैसे जाता है?’ स्वामीजी ने कहा—‘जिस प्रकार पत्थर भारी होने से कुण्ड में जाता है उसी प्रकार कर्म भार से जीव दुर्गति में जाता है।’

गिरियारी में फिर उसी भाई ने पूछा—‘जीव स्वर्ग में कैसे जाता है?’ स्वामीजी ने कहा—‘जिस प्रकार काष्ठ का पाटिया हल्का होने से पानी में तैरता है, उसी प्रकार कर्म से हल्का होने पर जीव स्वर्ग में जाता है।’

(भिक्षु दृष्टान्त १४२)

२०८. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—‘जीव हल्का कैसे होता है?’ स्वामीजी बोले—‘पैसे को पानी में डालने से वह डूब जाता है, पर उस पैसे को ससाकर कूट-कूटकर कटोरी बना लिया जाये तो वह तैरने लग जाती है और उसमें रखा हुआ पैसा भी तर जाता है। उसी प्रकार तप सधम के द्वारा आत्मा हल्की होती है और ससार-मगमुद्र को तरती है।’

(भिक्षु दृष्टान्त १४३)

२०९. किसी भाई ने पूछा—‘महाराज! माधुओं के असाना क्यों होती है?’ स्वामीजी बोले—‘कोई व्यक्ति आकाश में पत्थर फेंककर नीचे गिर माड कर खा हो गया और पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो पहले फेंका हुआ पत्थर तो गिर पर घोट लगावेगा ही, पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो घोट नहीं लगेगी। ठीक उसी प्रकार पहले पाप कर्म का बंध किया उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, पीछे मावय कर्म का त्याग कर दिया तो दुःख नहीं भुगतना पड़ेगा।’

(भिक्षु दृष्टान्त १२२)

२१०. रोगादिक उत्पन्न होने पर मनुष्य को द्रव्य रक्षनी चाहिए पर बिनापाप नहीं करना चाहिए। स्वामीजी ने कहा—‘उसको इस प्रकार सोचना चाहिए—‘हिमी आदमी के गिर पर कर्ज था और वह देना नहीं चाहता था पर लेने वाले ने जबरदस्ती उसमें ले लिया। तब मूर्ख तो बिनापाप करता है और चतुर मनुष्य सोचना है कि बचता हुआ बाद में देना तो पड़ता ही, वह पहले ही हासट मिट गया

की भाई देकर अपने घर पर साया और खोदा खोता। अन्दर में खाद निगाली तब वह रोने लगा, देखादेखा लोग भी उमके साथ रोने लगे। गहने लगे—‘देखो बिकारे के गेहूँ की खाद हो गई।’ इनमें में एक समझदार व्यक्ति ने उससे पूछा—‘अरे भाई! तुमने अन्दर क्या खाया था?’ वह रोता हुआ बोला—‘मैंने तो हाता यही खा।’ तब वह बोला—‘जब खाद हावी तो गेहूँ वहाँ में निगलेंगे?’

इसलिए प्राणी जैसे पुण्य-पाप का बंध करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। बिनापाप से कुछ नहीं होता, प्रत्युत अनुभवंतों का बंध होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त २६४)

२०७ मिरियारी में एक भाई-बो गोत्र में बोहरा सीमरारा था—ने स्वामीजी से पूछा—‘जीव नरक में कैसे जाता है?’ स्वामीजी ने कहा—‘त्रिम प्रकार पत्थर भारी होने से कुएं में जाता है उमी प्रकार कर्म भार से जीव दुर्गति में जाता है।’

मिरियारी में फिर उमी भाई ने पूछा—‘जीव स्वर्ग में कैसे जाता है?’ स्वामीजी ने कहा—‘त्रिम प्रकार बाण्ड का पाटिया हुन्ना होने से पानी में तैरता है, उसी प्रकार कर्म से हल्का होने पर जीव स्वर्ग में जाता है।’

(भिक्षु दृष्टान्त १४२)

२०८ किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—‘जीव हल्का कैसे होता है?’ स्वामीजी बोले—‘पैने को पानी में डालने से वह डूब जाता है, पर उस पैने को तपाकर कूट-कूटकर कटोरी बना लिया जाये तो वह तैरने लग जाती है और उसमें रखा हुआ पैना भी तैर जाता है। उमी प्रकार तप सपम के द्वारा आत्मा हल्की होती है और ससार-ममुद्र को तरती है।’

(भिक्षु दृष्टान्त १४३)

२०९ किसी भाई ने पूछा—‘महाराज! साधुओं के असाता क्यों होती है?’ स्वामीजी बोले—‘कोई व्यक्ति आकाश में पत्थर फेंककर नीचे गिर भांड कर खा हो गया और पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो पहले फेंका हुआ पत्थर तो गिर पर थोड़ा लगायेगा ही, पीछे पत्थर फेंकने का त्याग कर दिया तो थोड़ा नहीं लगेगी। ठीक उमी प्रकार पहले पाप कर्म का बंध किया उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, पीछे सावध कर्म का त्याग कर दिया तो दुःख नहीं भोगना पड़ेगा।’

(भिक्षु दृष्टान्त १२३)

२१०. रोगादिक उत्पन्न होने पर मनुष्य को दुःखता रखनी चाहिए पर बिनापाप नहीं करना चाहिए। स्वामीजी ने कहा—‘उसको इस प्रकार सोचना चाहिए—‘किसी आदमी के सिर पर कर्ज था और वह देना नहीं चाहता था पर लेने वाले ने अबरदानी उससे ले लिया। तब मूर्ख तो बिलापात करता है और बनुर मनुष्य सोचना है कि अच्छा हुआ बाद में देना तो पड़ता ही, वह पहले ही झगड़ मिट गया

और सिर का बोझ भी उतर गया। इसी तरह रोगादिक उत्पन्न होने पर समझदार को—बड़े हुए कर्मों से छुटकारा हो गया—ऐसा चिन्तन कर विलापन नहीं करना चाहिए।'

(भिवखु दृष्टान्त २७८)

२११. पुर से बिहार कर भीलवाड़ा जाने समय रास्ते में हेमराजजी स्वामी को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने चन्द्रभाण चौधरी से कहा—'आज तो विनम्रता बहुत हुई।' चन्द्रभाणजी ने कहा—'महाराज! स्वामी भीखणजी कहते थे कि प्रदेशों में बलामना (हलचल) हुए बिना कर्मों की निर्जरा नहीं होती।

(भिवखु दृष्टान्त १२०)

२१२. कैलाश में एक बहन बार-बार कहती कि स्वामीजी यहाँ पधारे तो मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। समयान्तर से स्वामीजी वहाँ पधारे तब उस बहन की घबराहट में बुझार आ गया। सन्ध्या के समय स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आई और घरघराती आवाज में बोली—'स्वामीजी आप तो यहाँ पधारे और मुझे बुझार आ गया।' स्वामीजी को उसकी दीक्षा की घोषणा का पता था, अतः उसकी भावना को भापते हुए पूछा—'कहीं दीक्षा के भय से तो तुम्हें बुझार नहीं आ गया?' उसने कहा—'मन में कुछ घबराहट तो हुई थी।' स्वामीजी बोले—'इस प्रकार दीक्षा का प्रसंग आते ही घबराहट हो जाती है तो आजीवन दीक्षा का काम तो बहुत ही कठिन है।'

दुर्बल दिल वाला व्यक्ति साधु-व्रत ग्रहण नहीं कर सकता।

(भिवखु दृष्टान्त ३६)

२१३. खैरवा निवासी चतुरोजी शाह ने स्वामीजी से विनम्रता की—'मेरे मन में समय लेने की भावना उठती है।' स्वामीजी ने कहा—'तुम्हारा दिल कमजोर है। दीक्षा के समय मोहवश तुम्हारे पुत्रादिक रोने लगे तब साथ-साथ तुम भी रोने लग जाओ तो?'

वह बोला—'हम परिवार वाले से बिछुड़ने के समय मोहवश आसू तो मेरे भी आ सकते हैं।'

स्वामीजी ने तत्काल उदाहरण देने हुए कहा—'जवाई 'गौना' कराने के लिए समुदाय जाता है। वापस आते समय उसकी पत्नी अपने माता-पिता से बिछुड़ने के दुःख में रोने लगती है पर उसके साथ-साथ जवाई भी रोने लगे तो सोगों में उसका उपहास हो जाता है। इसी तरह जो साधु बनता है उसके परिवार वाले तो

१. विवाह के बाद की एक रस्म, जिसमें घर-बधू को प्रथम बार अपने घर-साता है।

मरण प्राप्त करना अच्छा है पर स्वच्छन्द रूप में विहरण करना अच्छा नहीं है।' तब चन्द्रभाणजी बोले—'मैं और भारीमासजी स्वामी दोनों कर लें।' स्वामीजी बोले—'हम और तुम दोनों कर लें।' वे बोले—'आपके साथ तो नहीं करूंगा।'।

आखिर अहंकार बस वे साथ से अलग हो गये। उनका विस्तृत वर्णन स्वामीजी कृत 'अविनीत रास' में पढ़ें।

(भिक्षु दृष्टान्त १६५)

२१८. बेंगला में परियद् के बीच ठाकुर भोद्यमर्तिहजी ने स्वामीजी से पूछा—'महाराज ! आपको गांव-गांव के लोग अपने यहाँ पधारने की विनयि करते हैं, भाई बहिनो को आप प्रिय लगते हैं, आपको देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, इसका क्या कारण है?' स्वामीजी ने कहा—'किसी साहूकार ने प्रदेश से अपने घर समाचार कहलाने के लिए घर छर्च के रुपये देकर एक कासीद को भेजा। वह मेठ के घर पर पहुँचा तब मेठानी उसे देखकर बहुत खुश हुई। गर्म पानी से उसके पैर धुलवाये। अच्छी तरह मनुहारें कर-कर उसे भोजन करवाया और पास में बैठकर सेठजी के समाचार पूछने लगी—'सेठजी का शरीर कैसा है, स्वास्थ्य कैसा है? सेठजी कहाँ सोते हैं? कहाँ बैठते हैं?' इत्यादिक विविध समाचार कासीद के मुँह से ज्यों-ज्यों सुनती, स्यों-स्यों सेठानी बहुत प्रसन्न होती पर कासीद को देखकर प्रसन्न होने का कारण पति के समाचार सुनना ही है। इसी तरह हम भगवान् की वाणी का प्रचार-प्रसार करते हैं, उनके गुणगान गाते हैं, इसलिए नर-नारी हमारे से खुश रहते हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त ८७)

२१९. दूडाड के एक गांव में स्वामीजी पधारे, तब वहाँ के ठाकुर साहब ने अघेली (रुपये का आधा हिस्सा) के टक्के स्वामीजी के चरणों में भेंट किये। स्वामीजी बोले—'हम तो पैसे टक्के नहीं लेते।' ठाकुर बोले—'महाराज ! आप तो मोहर के लायक हैं पर मेरा सामर्थ्य अभी इतना ही है फिर कभी पधारेंगे तब रुपया नजर करूंगा।' स्वामीजी ने कहा—'हम रुपये पैसे मोहर आदि कुछ भी धन-सम्पत्ति नहीं रखते। ठाकुर सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और गुणगान करते हुए बोले—'धन्य है आपकी क्रिया को।'।

(भिक्षु दृष्टान्त ८९)

२२०. एक बार स्वामीजी पुर और भीलवाड़ा के बीच में विहार करके जा रहे थे, रास्ते में दूडाड की तरफ एक भाई मिला। उसने पूछा—'आपका नाम क्या है?' स्वामीजी बोले—'मेरा नाम भीखण है।' वह भाई विस्मित होकर बोला—'वाह ! मैंने आपकी बहुत महिमा सुनी थी पर आप तो अकेले ही वृक्ष के नीचे बैठे हैं। मैं तो जानता था कि आपके साथ में हाथी, भोडे, रथ, पालकी आदि विविध आडम्बर होगा।' स्वामीजी ने कहा—'हम इस प्रकार आडम्बर नहीं रखते हैं

मन्त्री इसकी मंजूर है। मन्त्र के माहौल में जीवन होना देना है। मन्त्र
मन्त्र होकर मन्त्री की मन्त्रों में मन्त्र मन्त्र।

(सिन्धु प्रदेश १२५)

२२१. मायु के मायवर्तों को बरी बरों की माया और पाया के मायवर्तों को छोटी बरों की माया से उचित किया है। मायवर्त के विभाग यह है उसे अन्त और विभाग अन्त है उसे विभाग के अन्त बरों है। बर-परा की गुणवर्तों के विभाग विभाग विभाग वय ..

माय ने आरक १३११ की माया, एक छोटी दूध की माँ की रे।

मृत मुखा व्याध पीने ना, इति एतद् बहु मद् कांति रे ॥

(विशेष प्रतिपादन की आवश्यकता १ या २)

द्विरे सुतत्रो बभूव सुतत्रि भावक रत्न। गो शीत ।

यां कर जागबोए, उवही मन तागबोए ॥

ਕੇਵਲ ਇਸ ਭਾਗ ਮੇਂ ਹੋਵ, ਆਰ ਧਰੁਰਾ ਹੋਵ ।

वयं मही मासिन्वा ए० कर्मो गारिन्वा ए॥

સાંભળ નૂ નિશ માવ, સીધે ધનુરો આમ ।

आगा मन अनि घनी ए, मव मेरा तनी ए ॥

दिन भाग गयो कुमपाय, धनूरो रक्षयो इहिधान ।

ਭਾਧ ਸ ਭੀੜੋਂ ਭਰੇ ਏ, ਨੌਜਾਂ ਸੀਰ ਭਰੇ ਏ ॥

इयं दिष्टं ज्ञानं, आदिकं ग्रन्थं अत्र समाप्तम् ।

अविरत भयभी रही ए, धनुरा सम कहो ए ॥

સેવારે અધિરત થોડ, ઘનતી મામો જોડ

ते भूता अम मे ए, दिमा धमं मे ए॥

अविरत स्यु बधे कर्म, निश मे नही निबधे धर्म ।

तीनू करण सारिछा ए, ते विरसा पारिछा ए ॥

(विरल इविरल री घोरई दा० ५ गा० ५ में ११)

२२२ श्रावक जब सामायिक और पौष करता है तब भी उसकी आत्मा को 'अधिकरण' कहा है अर्थात् उस समय अन्न आदि की जो धुलावट है उसमें पाप कर्म का बंध होता है। प्रजिमा और पादोषगमन अनगन के समय भी वह गूढस्थ है। उसमें चारित्र को छोड़कर सात आत्माएँ पाई जाती हैं।

(पढ़िए आचार्यें भिन्न रचित बारह वृतों की चौपद डा० १०।)

करण (करना, करवाना, अनुमोदन करना) योग (मन, वचन, वाया) को जानकारी किये बिना व्यक्ति मौलिक तत्त्व को नहीं समझ पाता ।'

१. करण जोशा तगी खबर पढ़िया मफा, साम भीखु तणी छाप लागै ।

(श्रावक महेशदासजी वृत्त डा० १ गा० ११):

२२३ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'पौष करने वाले को किसी ने अपना मकान दिया उसको क्या हुआ?' स्वामीजी ने कहा—'मेरे मकान में पौष करो, इस तरह आज्ञा देने वाले को धर्म हुआ।' दूसरी बार उसने फिर पूछा—'उसको मकान दिया उसमें क्या हुआ?' स्वामीजी बोले—'यहां मकान समूचा दे दिया है? मकान में सामायिक पौष करने की आज्ञा दी यह धर्म है, मकान तो परिशुद्ध है उसका भवन करना तथा करवाना धर्म नहीं है।

(भिक्षु दृष्टान्त २२३)

२२४. कई व्यक्तिगो ने स्वामीजी से कहा—'सामायिक में प्रमार्जन करके छात्र करने में श्रावक को धर्म होता है प्रमार्जन किए बिना छात्र करने में पाप लगता है।' स्वामीजी बोले—'कोई मच्छर आदि सामायिक में घटका लगाने है वह क्या ब्रह्मा के लगाने है या सामायिक के?' यह बोला—'घटका तो ब्रह्मा के लगाने है।'।

स्वामीजी 'प्रमार्जन करके छात्र करता है उसमें यह सामायिक की रक्षा करता है या शरीर की?' यह बुतकें बुझि से बोला—'रक्षा सामायिक की करता है। स्वामीजी—'छात्र न करने में तो प्रत्युत सामायिक की रक्षा ज्यादा होती है, क्योंकि सामायिक में प्रमार्जन किये बिना छात्र करने के तो उसमें तपाय होते हैं। और प्रमार्जन न करे तो छात्र कर मरता नहीं, छात्र न करे तो मच्छरादिक डक सहने से अधिक कर्म-निजंरा होती है, उसमें तो सामायिक की विशेष पुष्टि होती है, इसलिए वह सामायिक की रक्षा के लिये नहीं शरीर की रक्षा के लिए प्रमार्जन करता है।'।

अर्थात् हीन (जम्बू, घातकी छद्म और अर्धपुष्कर) के बाहर तिर्यच श्रावक सामायिक पौष करते हैं, क्या वे प्रमार्जनी रखते हैं? सामायिक की सुरक्षा तो वे ही करते हैं।

वास्तव में अथवा न करना ही सामायिक की रक्षा है।

(भिक्षु दृष्टान्त २२५)

२२५. किसी ने कहा—'पौष में कुछ श्रावक तो वस्त्र अधिक और कुछ थोड़े रखते हैं। थोड़े रखने वाले को अथवा थोड़ी, अधिक रखने वाले को अथवा अधिक लगती है यह मान्यता तो ठीक है पर पौष में प्रतिलेखन न करने वाले को प्रायश्चित्त क्यों आता है?' स्वामीजी बोले—'पौष में प्रतिलेखन किये बिना वस्त्र भोगने का त्याग होता है, इसलिए प्रतिलेखन किये बिना वस्त्रों को काम में लेता है तो उसके नियम का भंग होता है।'।

पौष में शरीर भी उसका अवलम्ब है, शरीर की सुख-सुविधा के लिए ही वह वस्त्रादिक का उपयोग करता है, अतः वह सावध-प्रवृत्ति है। जो वस्त्रादिक पौष में रखे, उनका प्रतिलेखन न करे तथा उन्हें काम में न ले, कष्ट

तभी हमारी महिमा है। साधु को सादगीमय जीवन शोभा देने वाला है।' वह बहुत प्रसन्न होकर स्वामीजी के चरणों में झुक गया।

(मिवरू दृष्टान्त १२५)

२२१. साधु के महाव्रतों की बड़ी रत्नों की माला और श्रावक के अंगुष्ठों की छोटी रत्नों की माला से उपमित किया है। श्रावक के जिनना व्रत है उसे अमृता और जिनना अव्रत है उसे विष के समान कहा है। व्रत-अव्रत की पृथक्ता के लिए पढ़िये निम्नोक्त पद्य...

साधु में श्रावक रत्नों की माला, एक मोटी दूजी नानी रे।

गुण गुण्या क्याहू तीर्थ ना, इविरत रह गद कानी रे॥

(विरत इविरत की चौपई दा० १ गा० १)

हिंवे सुणजो चतुर मुत्रान श्रावक रत्ना की छांण।

व्रता कर जाणजो ए, उलटी मत तोणजो ए॥

केई रूप बाग में होय, आव धनूरा दोय।

फल नहीं सारिया ए, करजो पारिया ए॥

आवा सु लिख लाय, सीचें धनूरो आय।

आमा मन अति घणी ए, अब सेवा तणी ए॥

पिण आव गयो कुमलाय, धनूरो रह्यो डहिडाय।

आय न जोवैं जरें ए, नैणा नीर शरें ए॥

इण दिष्टत जाण, श्रावक व्रत अब समाण।

अविरत अलगी रही ए, धनूरा सम कही ए॥

सेवारें अविरत कोय, व्रता सामो जोय।

ते भूला धर्म में ए, हिमा धर्म में ए॥

अविरत स्यू वधैं कर्म, तिण न नहीं निश्चैं धर्म।

तीनू करण सारिया ए, ते डिरला पारिया ए॥

(विरत इविरत की चौपई दा० ५ गा० ५ में ११)

२२२ श्रावक जब सामायिक और पौष्य करता है तब भी उसकी आत्मा को 'अधिकरण' कहा है अर्थात् उस समय अव्रत आदि की जो खुलावट है उसमें पाप कर्म का बंध होना है। प्रतिमा और पादोपसमन अनशन के समय भी वह गृह्य है। उसमें पारित को छोड़कर सान आत्माएँ पाई जाती है।

(पढ़िए आचार्य भिक्षु रचित बारह व्रतों की चौपई दा० १०।)

वरण (करना, करवाना, अनुमोदन करना) योग (मन, वचन, काया) की आचारों विये बिना व्यक्ति मौक्तिक तत्व को नहीं समझ पाता।^१

१. करण योगा तणी खबर पढ़िय। धरुं, साय भीखू तणी छाय सारें।

(श्रावक महेशदासजी व्रत दा० १ गा० ११)

नहीं करवाते तो फिर पूर्ण करने की विधि क्यों सिखाते हैं ?' स्वामीजी ने कहा—
'एक मुहूर्त (४८ मिनट) समय पर सामायिक तो पूर्ण हो गई। पूर्ण करने हैं वे तो दोष की आलोचना करते हैं। आलोचना करना भगवान् की आज्ञा में है। इसलिए दोष की आलोचना करवाने में तथा पूर्ण करवाने की विधि सिखाने में दोष नहीं। वर्तमान में सामायिक पूर्ण होने पर वह उठ कर चला जाता है इसलिए साधु पूर्ण नहीं करवाते।'

(भिक्षु दृष्टान्त २८६)

२३०. किसी भाई ने स्वामीजी से कहा—'छुने मुह बोलता हुआ गृहस्थ साधु को बहराता (देता) है तब तो साधु ले लेते हैं पर एक धान के दाने पर पैर लग जाए तो उसके हाथ से भिक्षा नहीं लेने, घर भी 'असूझता' (उसके घर की समस्त वस्तुएं अव्यक्त-अप्राप्त हो जाती हैं) गिनते हैं, इसका क्या कारण है ?'

स्वामीजी ने कहा—'बहराने में काय-योग की प्रमुखता है इसलिए उठते-बैठते, हलते-चलते अयत्ना करता हुआ बहराये, अथवा मुह से कूक दे दे और साधु भिक्षा के लिए तत्पर हो जाये तो घर असूझता करते हैं। साधु भिक्षा के लिए उद्यत न हो तो वह व्यक्ति ही असूझता होता है। छुने मुह बोलना वचन का योग है, इसलिए बोलने से अयत्ना होती है। उसका घर तथा बोलने वाला असूझता नहीं होता।'

'उपवास' सूत्र में कहा है—'कोई व्यक्ति निन्दा करता हुआ दे तो साधु ले सकता है, जब निन्दा करता हुआ गाली देता हुआ बोलता है तब वह कौन-सी यत्ना करता है ? इसलिये बोलने की अयत्ना में घर असूझता नहीं होता तथा उसके हाथ से भी लेने में दोष नहीं है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २६०)

२३१. किसी दाता ने हर्ष सहित साधु को भी बहराया। साधु की असावधानी में उसमें पड़कर अनेक चीटियां मर गईं तो उसका पाप साधु को लगेगा घृत दाता को नहीं। यदि साधु ने वह भी स्वयं न खाकर हर्ष सहित तपस्वी मुनि को दे दिया तो उसका मुनाफा (तीर्थंकर मोक्ष उपार्जन आदि) उसको ही हुआ। मुनाफा और नुकसान अपने-अपने शुभाशुभ भावानुसार ही होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १३७)

२३२. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'आप किसी को नियम दिलाते हैं, वह बाद में नियम भंग करेगा तो उसका पाप आपको लगेगा।'

स्वामीजी ने कहा—'जिस प्रकार किसी साहूकार ने सो रुपये का कपड़ा बेचा उसमें उसको काफी मुनाफा हुआ। अब यदि वह लेने वाला उसमें कुछना नाम उड़ाना है तो वह मुनाफा साहूकार को नहीं मिलेगा, अगर वह उस मोल को आप में जला देता है तो उसका नुकसान साहूकार के घर में नहीं पड़ेगा। उसी तरह

उत्पन्न होता है, उसमें तो पीपय को अधिक पुष्टि होती है पर इतना कष्ट सहने की क्षमता नहीं जिसमें वह वस्त्रादिक का प्रतिलेखन करना है और उनको काम में लेता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के अनछाना पानी पीने का त्याग है, अब वह जो पानी छानता है वह पीने के लिये छानता है पर दया के लिए नहीं। यदि वह न छाने तो दया का तो अच्छा पालन होता है क्योंकि नहीं छानेगा तो वह पी भी नहीं सकेगा, इसलिए वह पीने के लिए छानता है वह धर्म नहीं है।

(भिक्षु दृष्टान्त २२६)

२२६ कई लोग कहते हैं—‘साधु का धर्म और श्रावक का धर्म भिन्न-भिन्न है।’ स्वामीजी ने कहा—‘चौथे, पाचवें, छठे गुणस्थान की ओर तेरहवें गुणस्थान की धृष्टा तो एक है पर स्पर्शना अलग-अलग है। जैसे पानी में अक्काय के अमक्य जीव है, और ‘नीलज’ (कई) के अनन्त जीव है, इनकी हिंसा करने में पाप कर्म का बन्ध होता है, यह धृष्टा तो सबकी समान है लेकिन चौथे, पाचवें गुणस्थान वाले तो पानी का आरम्भ समारम्भ करते हैं और साधु के हिंसा का त्याग होता है इसलिए स्पर्शना भिन्न भिन्न है। अगर धृष्टा में अन्तर पड़ जाये तो चौथे पाचवें गुणस्थान वाला पहले गुणस्थान में आ जाये।’ आत्मा की क्रमिक विगुडि को गुणस्थान कहा जाता है।

(भिक्षु दृष्टान्त २२६)

२२७ साधु का गृहस्थ के साथ केवल धार्मिक कामों में ही सम्बन्ध है। इन पर स्वामीजी ने कहा—‘जैसे मरा हुआ व्यक्ति काम में नहीं आता, वैसे ही साधु गृहस्थ के सामाजिक कामों में सहयोगी नहीं बन सकते। साधु के पास में कोई व्यक्ति पाव रुपये भूल गया, उन्हें दूसरा व्यक्ति उठाकर ले गया, साधु जानते हैं फिर भी वह वाक्य पुष्टिगा तो साधु नहीं बनाएंगे। साधु तो एक धर्मोपदेश और धार्मिक सहयोग देने के ही अधिकारी हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२७)

२२८ एक बार पानी में बहुत सोंग समझकर तेरापयी श्रावक बने। तब विरोधियों ने प्रचार करना प्रारम्भ किया कि विजयचन्द्रजी पटवा रुपये देकर इन को तेरापयी बना रहा है।

स्वामीजी ने जब किसी विपक्षी भाई ने उक्त बात पूछी तब उन्होंने कहा—‘जब तुम्हारे श्रावक रुपये के लिये तेरापयी बन जाते हैं तो समझना चाहिये कि उन्होंने तुम्हारी मान्यता को समझा ही नहीं था। यदि वे सब रुपये लेकर ही समझे हैं तो अवशिष्ट श्रावकों की भी आज्ञा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वे भी रुपये विपक्ष पर आ सकते हैं अर्थात् दूसरों के अनुयायी बन सकते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२८)

२२९ कई व्यक्तियों ने स्वामीजी से पूछा—‘साधु गृहस्थ को सामाजिक पूर्ण

नहीं करवाने तो फिर पूर्ण करने की विधि क्यों निग्याने है ?' स्वामीजी ने कहा—
'एक मूटल (४८ मिनेट) समय पर सामाजिक तो पूर्ण हो गई। पूर्ण करने है वे तो
दोष की आलोचना करने हैं। आलोचना करना भगवान् की आज्ञा में है। इसलिए
दोष की आलोचना करवाने में तथा पूर्ण करवाने की विधि निग्याने में दोष नहीं।
वर्तमान में सामाजिक पूर्ण होने पर वह उठ कर चला जाता है इसलिए साधु पूर्ण
नहीं करवाने।' (भिवरु दृष्टान्त २८६)

२१०. किसी भाई ने स्वामीजी से कहा—'मूने मूह बोलना हुआ गृहस्थ साधु
को बहुराजा (देता) है तब तो साधु से लेने है पर एक घान के दाने पर पैर लग
जाए तो उसके हाथ से बिछा नहीं लेते, पर भी 'अगुमता' (उसके घर की समस्त
वस्तु अचान्तनीय-अच्छा हो जाती है) गिनते हैं, इसका क्या कारण है ?'

स्वामीजी ने कहा—'बहुराजे में बाप-योग की प्रमुखता है इसलिए उठने-
बैठने, हमने-बलने अचाना करना हुआ बहुराजे, अपका मूह से फूक दे दे और साधु
मिछा के लिए तनार हो जाये तो घर अगुमता करने है। साधु मिछा के लिए
उपय न हो तो वह व्यक्ति ही अपुमता होता है। मूने मूह बोलना वचन का योग
है, इसलिए बोलने से अचाना होती है। उसका घर तथा बोलने वाला अगुमता
नहीं होता।' (भिवरु दृष्टान्त २८७)

'उबवाई' मूने में कहा है—'कोई व्यक्ति निन्दा करना हुआ दे तो साधु से
सकता है, अब निन्दा करना हुआ वाली देता हुआ बोलना है तब वह कोन-भी मरना
करता है ? इसलिए बोलने की मरना से घर अगुमता नहीं होता तथा उसके हाथ
में भी लेने में दोष नहीं है।' (भिवरु दृष्टान्त २८८)

२११. किसी दाता ने हर्ष सहित साधु को भी बहुराजा। साधु की अगावधानी
में उसमें पड़कर अनेक चीटियाँ मर गईं तो उसका पाप साधु को लगेगा पत दाता
को नहीं। यदि साधु ने वह भी स्वयं न खाकर हर्ष सहित तपस्वी मुनि को दे दिया
तो उसका मुनाफा (सीपकर गोत्र उपार्जन आदि) उसको ही हुआ। मुनाफा और
नुकसान अपने-अपने शुभागुण भावानुसार ही होता है। (भिवरु दृष्टान्त २८९)

२१२. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'आप किसी को नियम दिलाते
हैं, यह बाद में नियम भंग करेगा तो उसका पाप आपको लगेगा।' (भिवरु दृष्टान्त २९०)

स्वामीजी ने कहा—'जिस प्रकार किसी साहूकार ने गौ रुपयों का कपड़ा बेचा
उसमें उसको काफी मुनाफा हुआ। अब यदि वस्त्र लेने वाला उससे दुगुना लाभ
उठाना है तो वह मुनाफा साहूकार को नहीं मिलेगा, अगर वह उस माल को आग
में जला देता है तो उसका नुकसान साहूकार के घर में नहीं पड़ेगा। उसी तरह

हमने किसी व्यक्ति को त्याग दिया था तो उमरा लाभ हमें तो मिल चुका। बाद में लेने वाला नियम का सम्मग्य पालन न करेगा तो क्षेप उमें ही लगेगा पर हमारे नहीं लगेगा।'

(भिक्षु दृष्टान्त १३६)

२३३ कई विरोधी लोग कहते हैं—'भीषणजी की ऐसी श्रद्धा है कि वरने के बचाने के बाद में वह कूपने खायेगा। अच्छा पानी पियेगा, इत्यादिक अनेक आरम्भ-समारम्भ करेगा उसका पाप बचाने वाले को लगेगा।' स्वामीजी ने कहा—'हमारी मान्यता तो इस प्रकार है—असयनी जीव को बचाने के बाद वह अनेक आरम्भ-समारम्भ करेगा उसकी अनुमोदना का पाप उमी समय भगवान ने देखा उनका उसको लग चुका। लेकिन तुम लोग किसी को तपस्या की धारणा करवाने हो कि आगे होने वाली तपस्या का धर्म इस होगा। ऐसा सोचकर तुम उमें धारणा करवाने हो, तुम्हारी इस मान्यता के अनुसार असयनी जीव को बचाने के बाद वह आरम्भ समारम्भ करेगा उसका पाप तुम लोगों को लगेगा क्योंकि जब आगामी काल का पीछे में धर्म होता है तो पाप भी लगेगा।' भगवान ने कहा—'प्राणी को धर्म और पाप शुभाशुभ भावनानुसार वर्तमान में ही होता है पर पहले पीछे नहीं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त १३४)

२३४ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—'वर्तमान में जो साधु-माधविया हैं उनमें अनेक प्रकार के अवगुण दिखाई दे रहे हैं। कई ईर्ष्या, भाषा एवं एषणादिक समिति में स्थलना करते हैं, बहसों में शोध, मान, भाषा और लोभ की विवेक मात्रा है, इत्यादिक...'। स्वामीजी ने उसे दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कहा—'एक साहूकार ने हजारों रुपये लगाकर एक नई हवेली बनवाई। उमें जाली झरोखों और विशादिक से इतना गुशोभित किया कि उसकी महिमा सुनकर हजारों लोग उमें देखने के लिए आने और मुक्त-कटों से उसकी प्रशंसा करते। वहा एक भरी आवा और पाखाना देखकर बोला—'सैठजी ! हवेली में जो पाखाना (शौचालय) बना है, वह अच्छा नहीं है। सैठजी ने कहा—'पाखाना तो मल-मूत्र के निर्वहन के लिए बनाया गया है उसमें अच्छी वस्तु बँसे होगी। तुम्हारा ध्यान हवेली के अन्य रमणीय स्थानों पर न जाकर इसकी तरफ हो गया, क्योंकि तुम्हारा दृष्टि-कोण ऐसा ही है।'।

स्वामीजी ने उक्त उदाहरण को घटित करते हुए कहा—'साधु के सदन और घर तो हवेली के समान है। छद्मस्थाना के कारण यतिक्रिय स्थलनाए होती हैं

१. उपवास आदि तपस्या के पहले दिन जो विशेष भोजनादिक किया या कर-वाया जाता है, उसे धारणा कहते हैं।

वे पादना के तुल्य हैं। जो गुणवाही व्यक्ति हैं वे तो सयम तर आदि गुणों को देखते हैं और उनकी गरिमा मानते हैं, जो छिद्रान्वेही होते हैं उनकी दृष्टि एकमात्र अवगुण की तरफ हो जाती है।

(भिक्षु जश० रसायण टा० ३६ गा० १ से १८ के आधार से)

२३५ कोई माधु उपयोग न रहने में बार-बार गुटि कर लेता है पर उसकी नीति अच्छी है तो साधु ही है। इस विषय में स्वामीजी ने कहा—उपाश्रय में अनाज का दाना पड़ा था उसे देखकर गुरुजी ने एक साधु को कहा—‘गिण्य’ यह धान्य का दाना पड़ा हुआ है इस पर पैर मत देना।’ उसने कहा—‘हा गुरुदेव मैं नहीं दूँगा।’ थोड़ी देर बाद आते जाते समय उसने उस पर पैर दे दिया।

गुरु—तुमको मना किया था फिर पैर क्यों दे दिया?

गिण्य—स्वामीनाथ! उपयोग न रहने में भूल हो गई। दूसरी बार फिर पैर लगने में गुरु ने उसे सजग किया। वह फिर बोला—‘गुरुदेव भूल हो गई मैं फिर ध्यान न रख सका।’ गुरुजी ने कहा—सावधान रहना, अब की बार पैर लग गया तो वन छह विषय का परित्याग करना होगा, उसने गुरुवाणी को स्वीकार किया पर तीसरी बार फिर अमावस्यानी से पैर लग गया।

इस तरह उपयोग न रहने में उसकी अनेक बार गलती हो गई पर उसकी नीति शुद्ध है, दोषों की रक्षा नहीं, इसलिए वह अमाधु नहीं है। पर जो मोहनीय बर्म के उदय में जान-बूझकर बार-बार दोषों का सेवन करता है, दोषों की रक्षा करना है और दोषों का प्रावृत्ति भी नहीं करता, वह अमाधु होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त २१४)

२३६ भगवान् महावीर ने भगवती मूत्र के २५ वै शतक में कहा है—‘साधु साधियों के चरित्र-पर्याय में अनन्त गुणा अन्तर रहता है। कईयों के चरित्र की निर्मलता कम और कईयों के अधिक होती है। फिर भी वे नगमी हैं और उनमें छटा गुणस्थान है। ज्ञाता अष्टपद १० में एक-एक साधु को कृष्णपत्र में एकम के चाद की पात्र एक-एक को पूनम के चन्द्रमा की उमा दी है।’ पड़िये स्वामीजी द्वारा रचित पद्य—

लीन वृद्धि पञ्चवा में होय ए, प्रगट शतक पञ्चीसमो जोय ए।

फेर जनन गुणो पञ्चवा भाय ए, तो पिण चान्त्रि गुण मुखदाय ए॥

दशमे धेन शाना में दयाल ए, कह्यो चन्द दृष्टान्त कृपाल ए।

एकम आदि पूनम चद पैत्र ए, बलि विद पत्र चद विशेष ए॥

(भिक्षु जश० रसायण टा० ३६ गा० ३५, ३६)

२३७. किसी व्यक्ति ने आवेश में आकर स्वामीजी से कहा—‘तुम्हारी श्रद्धा और आचार में प्रसन्न बहुत है।’ स्वामीजी बोले—‘हमारी श्रद्धा तथा आचार तो शुद्ध हैं, पर तुम्हें ऐसा ही दिखाई देता है। जिस प्रकार आँखों में पीलिये का रोग

होने से सब चीजें पीली-पीली ही दिखाई देती हैं, उसी प्रकार स्वयं की थड़ा कण्ट पुक्त होने से दूसरे की थड़ा बुरी लगती है।'

(भिक्षु दृष्टान्त ३००)

२३८. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'आज जहाँ जाते हैं वहाँ लोगों में घसके क्यों पड़ जाते हैं?' स्वामीजी बोले—'जिम प्रकार गांव में गारडी (मन्त्र-वादी) आकर कहता है कि कन सुबह डाकनियो को नीचे बाँटे में जनाऊगा तब डाकनियो के तथा उनके जानिजनो में घसके पड़ते हैं पर दूसरे लोग तो खुश होते हैं। उसी तरह साधु गांव में आने से गिथिलाचारी साधुओं के तथा उनके अनुयायी श्रावको के दिलों में घसके पड़ते हैं परन्तु हनुकर्मों प्राणी तो बहुत प्रसन्न होते हैं और अपने भाग्य को मराहते हैं कि हम साधुओं का व्याख्यान सुनेंगे, सेवा करेंगे, ज्ञान का अभ्यास करेंगे तथा पात्रदान का लाभ लेंगे।'

(भिक्षु दृष्टान्त २६६)

२३९ जो मिथ्या पक्षपात करते हैं उन्हें साधु अच्छे नहीं लगने। इस पर स्वामीजी ने कहा—'एक ज्वर वाला आदमी जीमनवार में भोजन करने के लिए गया।' वह दूसरे लोगों को कहने लगा—'पकवान तो सारे कड़वे हैं।' लोग बोले—'हमें तो पकवान भीठे लगते हैं पर तुम्हारे शरीर में ज्वर है इसलिए तुम्हें कड़वे लगते हैं। इसी तरह साधु प्रिय नहीं लगने का कारण है कि वे मिथ्यात्व रोग की पीड़ा से ग्रस्त हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त ३०३)

२४०. स्वामीजी के साथ चर्चा करते समय एक व्यक्ति न्याय सगत वान को भी स्वीकार नहीं करने लगा तब स्वामीजी बोले—'बैद्य ने एक रोगी को पीने के लिए औषध दी और कहा—इसे आख भीच कर पी जाओ। तुम्हारा रोग मिट जायेगा।' रोगी बोला—'मैं इसे मुँह में तो नहीं लूंगा मेरी पीठ पर डाल दो, अगर आपकी दवा अच्छी है तो पीठ पर डालने से असर दिखा देगी।' वैद्यराज ने कहा—'मूर्ख।' इसको पिये बिना तो रोग नहीं मिट सकता।' उसी प्रकार आगम तथा साधुओं के वचनों को हृदयगत करने से ही मिथ्यात्व रूप रोग दूर हो सकता है परन्तु केवल गुनने से ही नहीं।

(भिक्षु दृष्टान्त २६६)

२४१. पीठाड में भीष्मजी स्वामी ने एक गाथा कही—

अवित्त वस्तु न भोल मरावे, मुमन गुण हूँ यह जी।

महात्रय पाबूई भागा, सोमासी मो दह जी॥

(माठवाचार री चौपई का० १ गा० ५)

मोत्रीरामजी बोहरा ने यह गाथा सुनकर एक व्यक्ति को बुलाकर कहा—'अरे जगु! (जमराज) इधर आ इधर मा। जैसे किसी राजा ने किसी का समझा

घर ही लूट लिया और उस पर दण्ड फिर कर दिया। वैसे भीष्मजी पंच महाव्रत का भग हुआ भी कहते हैं और ऊपर चार मास का दण्ड भी।' स्वामीजी ने कहा—'पांच महाव्रत भग होने पर चार मास का दण्ड आये ऐसा हम गाथा में नहीं कहा है। पांच महाव्रतों का चार मास का प्रायश्चित्त आये इतना भग हुआ ऐसा कहा है। श्रत्येक गाथा के शब्दों को न पकड़ कर उनके हार्द को समझना चाहिए।' इस तरह स्वामीजी ने उनको समझा दिया।

(भिक्षु दृष्टान्त २८४)

२४२. कुछ नामधारी साधु लोगों को सच्चे साधुओं से बहकाते हैं। इस पर स्वामीजी ने कहा—'भृगु पुरोहित ने अपने बेटों को पहले बहकाया था। उसने उन्हें कहा कि साधुओं का कभी विश्वास मत करना, उनसे हमेशा दूर ही रहना। पिता की बात मानकर बेटे साधुओं से भय खाने लगे। एक बार जब साधुओं का सम्पर्क हुआ तो उनको यथार्थ ज्ञान हुआ और वे वाप की बात को मिथ्या मानकर दीक्षित हुए। उसी तरह सच्चे साधुओं को जो बुरे बताते हैं उनकी बात सुनकर उत्तम प्राणी सच्चे साधुओं का सम्पर्क कर सही तत्व की पहचान कर लेते हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त २०४)

२४३. कच्छ देश वासी टोकम डोमी के अनेक बोलों में शका पड़ी। वे २६ पन्ने शकाओं के लिखकर लाये। स्वामीजी से चर्चा-बात करते-करते लगभग २६ पन्ने की शकाएँ तो मिट गईं। स्वामीजी के चरणों में झुककर वे गर्गद् स्वर में बोले—'भगवन् ! आप न होने तो मेरी क्या गति होनी ? आप तो तीर्थंकर के समान हैं, मेरे प्रश्नों का आपने बहुत सुन्दर ढंग से समाधान किया है, इस प्रकार उन्होंने बहुत गुणगान किया।'

स्वामीजी की बनाई हुई जोड़े (रचनाएँ) सुनकर वे अत्यन्त प्रभावित हुए और बोले—'ये जोड़ें तो आगमों की निर्युक्तियाँ ही हैं।' बहुत दिन स्वामीजी की सेवा करके वापस कच्छ देश में गये।

(भिक्षु दृष्टान्त १६८)

२४४. सध से बहिष्कृत मुनि वीरभाणजी ने दुदाड के एक भाई को शकाशील बना दिया। समयान्तर से स्वामीजी वहाँ पधारे तब वह आया तो सही, पर नमस्कार नहीं किया। स्वामीजी ने उसे सामायिक करने के लिए कहा। तब वह बोला—'सामायिक तो नहीं करूँगा, क्योंकि सामायिक में कदाचित् मेरे भूढ़ से आपके लिए 'स्वामीजी महाराज' शब्द निकल जाये तो मुझे दोष लग जाये।'

स्वामीजी ने कहा—'एक भूढ़त्वे का संवर कर लो।'

तब उसने सबर किया। स्वामीजी ने एक शका का समाधान कर उसे निशक बना दिया। वह अपने अविनय के लिए क्षमा मांगता हुआ पैरों में शिर पड़ा।

(भिक्षु दृष्टान्त १४५)

२४५ केलवा में अवधु और मंद-बुद्धि एक नगजी नाम का भाई था। वीरभाणजी ने स्वामीजी से कहा—'मैंने नगजी को सम्पत्ति-दृष्टि बना दिया है।' स्वामीजी बोले—'सम्पत्ति-दृष्टि बने बैसी तो उसकी बुद्धि भी नहीं थी तो उसे कैसे सम्पत्ति बनाया और क्या तत्त्वज्ञान सिखाया? वीरभाणजी बोले—'ओषधियों दोरी भव जीवा' यह ढाल तथा 'नन्दन मणिपारे' का व्याकरण सिखाया।'

कुछ समय बाद स्वामीजी केवल पधारे तब नगजी को पूछा—'तुमने नन्दन मणिपारे का व्याकरण सीखा है, अब बताओ वह 'मणिपारे' सही का है, मोने का है या कड़ाभी माया का?' नगजी बोले—'मणिपारे तो मोने का ही होना चाहिए क्योंकि उसका वर्णन शास्त्रों में बतलाया गया है। फिर स्वामीजी ने पूछा—'ओषधियों की ढाल में आया है—'माधविषी ने जड़ों चालों' यहाँ में धविषी (धमनी) कौन-सी है? गाड़ी मुहारो वाली छोटी है अथवा स्थानीय मुहारो वाली बड़ी?' नगजी ने कहा—'ये तो बड़ी धविषी ही होनी चाहिए क्योंकि शास्त्रों में बताया गई है।'

स्वामीजी ने मन में समस्त विचारों को वीरभाणजी ने नगजी को सम्पत्ति बनाने की बात कही थी वह मान ले। जिस प्रकार कोरडू (अ-प्रतिक्रियाशील मूल, मात्र) धाम्य नहीं सीखता उसी तरह बुद्धि के बिना मनुष्य सम्पत्ति नहीं बन सकता।

(भित्तु दृष्टान्त २२०)

२४६ पुर में गुवार ऋषि को चर्चा के प्रसंग में स्वामीजी ने पूछा—'सम्पत्ति को पाप लगता है या नहीं?' गुवार ऋषि ने कहा—'सम्पत्ति को पाप नहीं लगता।' स्वामीजी—'सम्पत्ति-की भित्तु का भेदन करे तो?' गुवारजी—'पाप ला नहीं लगता पर एव में मोक्षनीय नहीं है।' स्वामीजी ने तीसरी बार पूछा—'विषय पर विचार (चर्चा) बाधकर लेता तो?' इत्यादिक विविध प्रश्न पूछे पर वे पधारे उत्तर देते ही प्रसन्न रहते। कोषाग्र में आकर अकरक बोले हुए, बोले गए। जिससे सब शक्ति न मान्यमान करने में ही शांति का समाधान हो सकता है।

(भित्तु दृष्टान्त २२०)

२४७ स्वामीजी ने मोने ने कहा—'इस अल्प बुद्धि वाले भाई को सम्पत्ति।' स्वामीजी बोले—'दात, मूल, मोड़ और मोने की होती है पर मोड़ की नहीं होती। ईश्वर ही दृष्टिमान् मनुष्य ही धर्म के समर्थ को सम्पत्ति बना है पर मंद-बुद्धि नहीं।'

(भित्तु दृष्टान्त २२३)

२४८ और सम्पत्ति के व्याकरण में स्वामीजी ने कहा—'आप इस बात का ज्ञान (विचार) कि (हो) है।' स्वामीजी बोले—'जिन्हें ज्ञान भी नहीं दिया है वे तो ज्ञान सिखा कर लेने सिखाए? अब व्याकरणों आदि बड़े दोषों का भी क्या नहीं

चलता तब छोटे दोप तो समझ में ही कैसे आये ?

(भिक्षु दृष्टान्त १७४)

२४९. जिनका अज्ञाचार टीक नहीं वे कहते हैं—‘भीषणजी हमें साधु नहीं मानते ।’ स्वामीजी ने कहा—‘काली तो राव काले वर्तन में बनाई, अमावस की काली रात, ज़ोमने वाला सधा परोमने वाला अघा । भोजन करने वाला कहता है—ध्यान रखना, वही ककड़, सरुडी, जीव-जन्तु आदि भोजन में न आ जायें । परन्तु सब काले ही काले मिले वहा क्या टाला रह सकता है, जिनके शुद्ध आचार एवं विचार नहीं वे वस्तुन साधु व श्रावक कैसे हो सकते हैं ?’

(भिक्षु जग० रगायन डा० ३४ गा० ११ से १५ के आधार में)

२५०. जहा तेज हवा चलनी हो वहा पर आटा पीसने की घटी रखी हुई है । एक बहिन पीसती जाती है और आटा उड़ना जाता है । रात भर पीसने के बाद जब वह धाँसे को झट्टा करने लगती है तो उसको कुछ नहीं मिलता । वह तो ‘रात भर पीसा और हकनी में उसेरा’ वाली कहावत को चरितार्थ करती है । जो साधु-जन सधा श्रावक धन को स्वीकार कर जान-बूझकर शोष लगाने हैं उनका प्रायश्चित्त नहीं करते तथा दोषों की स्थानना करते हैं उनके पास में विशेष कुछ नहीं रह पाता ।

(भिक्षु दृष्टान्त १७५)

२५१. एक वन में एक सिंह रहता था । एक दिन उसे भय के लिए घूमने-घूमने एक सियार मिला । शेर उसे खाने लगा तब वह मियार बोला—‘महाराज ! मेरे छोटे से शरीर में तो आपके कलेश भी नहीं हो सकेगा, अतः मैं आपके लिए कोई मोटा-झाड़ा शिकार ले आता हूँ, कुछ देर आप गुफा में विराजें ।’ सिंह ने उसकी बात मान ली । मियार को फिरते-फिरते एक घघा मिला । उसने उससे कहा—‘हमारे जंगल में दादगाह (सिंह) का मंत्री मर गया है, उसे प्रधान की आवश्यकता है इसलिए तुम मेरे साथ चलो, तुम्हें वह मंत्री का पद दिया जाएगा । पद का नाम नुनते ही गधे का मन ललचा गया और वह झटपट सियार के साथ हो गया । उधर सिंह भूखा तो बैठा ही था, गधे को आने देखकर घड़ूकना हुआ सामने आया कि घघा धवराकर भो-भों करता हुआ वापस दौड़ गया । मियार ने सिंह से कहा—‘मैं तो बड़ी भुक्तिल में शिकार लाया और आपने शीघ्रता की ज़िम्मे वह भागकर चला गया । अब दुवारा मैं फिर जाता हूँ, किन्तु आप जल्द-बाजी मन करना ।’

मियार वापस घूमता-घूमता गधे के पास आया और बोला—‘अरे भैया ! तुम तो भोले के भोले ही रहे, हमारा राजा तो भावी प्रधान समझकर तुम्हारा स्वागत करने के लिए सामने आया और तू मूर्खता कर इस प्रकार भाग खड़ा हुआ ।

आई थी ?

आगन्तुक—वह बाहर थी और अभी कोई एक पहर पहले ही त्रिम मार्ग में तुम आये हो, उगी मार्ग में वह लौटी थी ।

विनीत छात्र—वह किम बात पर खड़ा आई थी ?

आगन्तुक—द्विनी पर ।

विनीत छात्र—वह दोनों ही आशों में देखती होगी ?

आगन्तुक—सही, वह कानी है ।

विनीत छात्र की ही सब बात ठीक निकली तो अविनीत छात्र मन में बहुत दुःखित हुआ । दोनों वही साताव के किनारे वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे कि एक बुढ़िया पानी भरने के लिए वहां आई । वह आना पड़ा भर लौट रही थी । दोनों शास्त्र छात्रों को जब वहां बैठा देखा तो वह भी उनके पास चली आई । पहिल ममत्तर उमने नमस्कार किया । उसके दिल में एक बहुत बड़ी व्यथा थी । वह उनमें रहने लगी—'पहिलत्री ! मेरा लडका विदेश गया है । आज बारह वर्ष पूरे हो रहे हैं । उमका कोई भी समाचार नहीं है । आप पढ़े-लिखे हैं, अब बुढ़िया पर दया कर वह बताने की कृपा करें कि वह मनुज कब घर लौटेगा ?

अपनी वेदना की बात कहते हुए बुढ़िया की आशें टपटपा आईं । शरीर धुनने लगा । उमका परिणाम यह हुआ कि तिर पर रखा हुआ पानी में गिर पड़ा फिर पड़ा और वह कूट गया । अविनीत छात्र तत्काल ही बोल उठा—'बुढ़िया ! तेरा बेटा मर गया, वह अब घर नहीं लौट सकेगा ।' अविनीत छात्र के इस कथन ने बुढ़िया के धीमेज के वाद्य को तोड़ दिया । वह और अधिक व्यथित हो गई । वह कथन मरमुच ही आपात पट्टवाने वाला था । किन्तु दूसरे ही क्षण विनीत छात्र बोल पड़ा—'मातात्री ! बिना मन करो आपका लडका आनन्द में है और अभी आप जब घर जाओगी तब आपको यह घर पर बैठा मिलेगा ?' बुढ़िया को इस कथन में बहुत मन्गीर हुआ । उनका दुःख हटका हो गया । वह दोड़ती हुई घर गई । उधोंही अपने आगम में घुमनी है क्योंकि अपने इकलौते साल को बड़ा बैठा देखती है । वह तो यानो उछलने लगी । बेटा ! विधाम कर मैं अभी आई । यह कहती हुई उल्टे पैरों लौटी । साताव पर आई और विनीत छात्र के पैरों पड़ने लगी । बोली—'वाह पहिलत्री आप तो बल्लशानी हैं । मानों सारा ममार आपकी आशों के सामने ही नाथ रहा है । आपका कथन पूर्णतः सच निकला है । मेरा लडका आज जबकि मैं घर पट्टी, वहां बैठा मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था ।'

बुढ़िया का यह कहना अविनीत छात्र पर तमाचे का काम करने लगा । वह मन ही मन उबलने लगा । दोनों ही बार यह मक्का निकला और मैं झूठा । तुम ने अध्ययन कराने में मरमुच ही पदागत रखा है । बुढ़िया विनीत छात्र में जाने घर बचने के लिए आग्रह करने लगी । वह कहा गया भी । बुढ़िया ने अपने साइने

बेठे से सारी घटना कह सुनाई। बुढ़िया और उस लड़के ने उस छात्र का बहुत सम्मान किया।

अपने कार्य में निवृत्त होकर दोनों ही छात्र गुरु के पास लौटे। अविनीत छात्र पहुंचते ही गुरु पर बरसने लगा, पक्षपात का आरोप लगाने लगा। बहुत बुरा-भला बोलने लगा। गुरु ने उसे शांत करते हुए पूछा—आखिर घटना क्या है वह तो बनाम्रो ताकि उसका कुछ उपचार किया जा सके?

अविनीत छात्र ने दोनों घटनाएं सुनाई। वह बोला—‘आपने हमें ज्ञान अधिक दिया, अतः इसका कपन सत्य प्रमाणित हुआ और मुझे पूरा ज्ञान नहीं दिया, अतः अमत्य।’

गुरु ने दोनों ही छात्रों से पूछा—‘दोनों ही घटनाओं का फलित तुम दोनों ने किस आधार पर निकाला?’

अविनीत छात्र ने पहली घटना के बारे में कहा—‘अनीन पर बड़ा पाव बिह्वित था। वह हाथी के अतिरिक्त और किसका हो सकता था। मैंने तुरन्त कह दिया कि यह पाँच हाथी का है।’

विनीत छात्र से गुरु ने पूछा—‘तूने किस आधार पर कहा?’ विनीत शिष्य बोला—‘गुरुवर! उन बिह्वों में ईषद्व आर्द्रता (घोडा गोलापन) था। हाथी के पाँच में यह आर्द्रता नहीं होती, जब कि हथिनी के पाँच में होती है। हाथी पर राजा-महाराजा आदि बड़े ही ध्यानि सवारी किया करते हैं, अतः मैंने बड़ी आसानी से यह समझा दिया।’

गुरु ने विनीत छात्र से भीष ही से पूछा—‘रानी का गर्भवती होना तूने किस आधार पर कहा?’

विनीत छात्र—‘गुरुजी! मानूम पड़ता है, रानी एक जगह नीचे उतरी थी। वहाँ उमरी हथेली जमीन पर टिक गई थी, अतः हाथ की रेखाएं बानु में स्पष्ट दीखती थी। मैंने उन रेखाओं के आधार पर ही उसे सद्य-प्रसूता (शीघ्र मन्तान पैदा करने वाली) समझाया।’

गुरुजी—हथिनी के बानी होने का तुमने कैसे ज्ञान हुआ।

विनीत छात्र—मार्गवर्ती पौधे व लगाओं की वह खानी हुई गई, ऐसा उन पौधों से ही ज्ञान होता था किन्तु उसने एक ओर के ही छाये दोनों ओर के नहीं। यदि उनके दोनों आँखें होती तो दोनों ओर के पौधे पाली।

गुरु ने दूसरी घटना के आधार के बारे में दोनों छात्रों से पूछा तो अविनीत ने कहा—‘बुढ़िया के गिर पर पड़ा था। जान करने हुए वह पड़ पड़ा था, अतः उसका परिणाम तो मरी होना चाहिए था कि उसका सहका भी मर गया।’

गुरु का सवेन पाकर विनीत छात्र ने कहा—‘गुरुवर! यद्यपि यह सही है कि बड़ा पड़ पड़ा था, किन्तु उस समय की प्रवृत्ति कुछ भिन्न थी। मैंने बाएँ ओर

नकर डाली तो जात हुआ—आवाग आवाग में मिल रहा था, अर्थात् बहुत खिन्न था। उसमें त्रिनि मात्र भी मिलाता नहीं थी। बड़ी मुश्किली हुआ बन रही थी। पड़े के फूट जाने से पानी बहकर तानाब में आ मिला था और घरे की मिट्टी मिट्टी में। आ मुझे यह था प्रतिभाविन हुआ। क बुद्धिवा ना गहका भी उसे मोघ ही मिल जाना चाहिये।

गुरु ने वागमता के साथ वर्यन करने हुए अविनीत छात्र से पूछा—‘क्यों शिष्य ! मैंने ये बातें इमे सब बताई थीं। अविनीत छात्र का निर शुरु गया। गुरु ने कहा—‘निरभिमानता और वहाँ के प्रति समर्पण भावना ही मनुष्य को आगे बढ़ाती है।’ स्वामीजी ने उक्त घटना को निम्नोक्त पद्यों में व्यक्त किया है—
 बेइ चिनी अविनीत भगवा दोनू गुरु बनें, विन विन गहिन भणियो विनीत हो।
 निन में मूधोई मूरी ने मूधो अरथ करे, भण-भण ऊधो पड़े अविनीत हो॥
 ए दोनूई बोला में अविनीत मूधो पद्यो, साथ उत्तरियो विनीत हो।
 जब अविनीत घेय धर्यो गुरु ऊगरे, कहै मोनें न भणायो दही रीन हो॥
 (विनीत अविनीत री चौदई का० ३ गा० १५, २१)

२५५ एक बार एक योगी आसन पर बैठा साधना कर रहा था। उसके पास में ही एक चूहा इधर-उधर घूम रहा था। इतने में एक बिल्ली उसे शायटने के लिए आई। योगी ने अनुकंपा साकर मन पड़ा और चूहे को बिलाव बना दिया। बिलाव की धुपराहट को देखकर बिल्ली भाग खड़ी हुई। इतने में ही एक कुत्ता दौड़ा आया, ज्योही बिलाव पर शायटने लगा कि योगी ने उसे शिकारी कुत्ता बना दिया। शिकारी कुत्ते की उछल-कूद देखकर एक चीते ने उस पर ताक लगाई। योगी ने उसे सिंह बना दिया। शेर को देखकर चीता भी जान हथेली में रखकर भाग गया।

सिंह के पेट में जब चूहे दौड़ने लगे तब इधर-उधर शिकार की टोह में दृष्टि फैलाई। सामने माला हाथ में लिए बैठे योगी को देखकर सिंह छाने को दौड़ा। सिंह को दुष्टता पर योगी का मन तिलमिला उठा, दुष्ट ! मैंने ही तो तुझे चूहे से शेर बनाया और तू मुझे ही खाने को दौड़ता है ? योगी ने मन पड़ा—‘पुनर्मूर्धिको भय’ की ध्वनि निकलते ही सिंह गायब हो गया, वही चूहा योगी के आस-पास दौड़ने लग गया। चूहे को देखकर फिर बिल्ली आई और उसे चबाकर चसती बनी। योगी का मन अब ध्यान से हटकर उस घटना के मर्म पर आ पहुँचा—‘दुष्ट को क्लिना ही ऊँचा चढ़ाओ आखिर वह अपने उपकारी को ही खत्म करने के लिए दौड़ता है।’

(विनीत अविनीत री चौ० का० १७ गा० १ से ६ के आधार से)

२५६ यह उस समय की बात है जब जीवन की आधुनिक मुश्क-मुविधाओं का अभाव था। अच्छे-अच्छे घरों की स्त्रियों को पनघट पर जाकर पानी लाना पड़ता

था। इसलिए धनवान पिता अपनी बेटी की सुविद्या को ध्यान में रखकर पानी साने के लिए गदहा भी दहेज में दे दिया करते थे। एक महाजन की पुत्रवधू पीहर से एक गदहा साईं किन्तु वह गदहा बड़ा दुष्ट और कुटिल था। भार ढोने से बलराना था। वहां से आजाद होने के लिए उसने एक चाल खली। पानी के बर्तन लेकर घोड़ी ही दूर चलता कि किमी दीवार से टकराकर उन्हें फोड़ डालता। प्रतिदिन के इस ढंग से घर वाले लग आ गये। मिट्टी के घड़ों की जगह अब तावे और पीतल के कलश उस पर रखे जाने लगे, किन्तु फिर भी वह उल्टा-सीधा चल कर पानी गिरा देता, बर्तनों में मौज डाल देता। उसकी इस दुष्टता से सभी हैरान हो गये करें भी क्या? आखिर गदहे के कान कतर कर उसे खुला छोड़ दिया गया। गदहा अपनी चाल की सफलता पर भों भो अहसास करता हुआ जंगल की ओर दौड़ गया। हरी-हरी घास! तालाब सरनो का ठण्डा पानी, स्वन्न बातावरण, उन्मुक्त विहार, उमने तो जीवन का स्वर्ग पा लिया। थोड़े दिनों में खूब मोटा-साजा बन गया।

एक दिन कुछ ठुंकिए (बोहरे) गाड़ी में सामान लादे उधर से निकले। जंगल में ही उनका पड़ाव हुआ। गाड़ी से बैलों को खोलकर घरने के लिए छोड़ दिया गया। दोनों बैम जो परस्पर मामा-भानजा थे, उस गदहे के निकट जा पहुँचे। गदहे ने उन्हें देखा और अपना साथी बनाने के लिए बड़े मीठे शब्दों में उन्हें भड़काने लगा—'देखो! तुम रात-दिन इतना भार ढोते हो, उम पर भी भार खाते हो, तुम्हारी पीठ पर नील जम गई है कितना बण्ड शेलते हो और मे स्वन्न जीवन का आनन्द लेता हूँ। मस्ती से वन-विहार करता हूँ। बोनो तुम्हारी क्या दृष्टा है? मेरे साथी बनोगे?'

भानजे ने तो उसकी बात पर हँसान नहीं दिया। किन्तु मामा उसकी बात पर प्रसन्न हो गया। गदहे ने उसे अपने पजे में ले लिया। छूटने के लिए बदमाशी मिथलाई। भानजे ने मामा को बहुत ममझाया। मानिक हमारी सेवा लेता है तो करता भी है। हर प्रकार से हमारा ध्यान रखता है। मानिक के साथ इस प्रकार दुर्नीति नहीं करनी चाहिए, किन्तु मामा ने एक नहीं भानी, चूँकि उसे तो आजादी का मोम घोष रहा था।

बोहरा ने भोजन करने बैलों को गाड़ी में जोना। सामान लादकर चलने लगा तो एक बैल (मामा) ने जोम निजाल दी और जोर से सांस फुमाकर नीचे लुढ़क गया। आखिर बोहरों ने देखा बल भरने वाला है मरने के बाद नाम नहीं आएगा, इसलिए धुरी से मारकर गाड़ी में डाल दिया।

एक बैल से गाड़ी चले बीसे? दधर-दधर घोड़ा की गो, पास, ही, मे, बड़, गड, घूम रहा था, उसे पकड़कर गाड़ी में जोत दिया। राधे ने उस बैल की दृष्टा देखी थी, इसलिए चुपचाप सरपट दौड़ने लगा। सारी कुटिलता घूम गया। उसका बड़

स्वीकार कर लिया। शाबोन ने उसमें पाँच अक्षर लिखे—'बेटा न बेटी' और उसे दे दिया। बेटा, बेटी या कुछ भी न होने पर तीनों अवस्थाओं में उसकी काम चला सकती थी।

इस प्रकार जो अविनीत होता है वह गुरु के भक्त एवं थडाम्बू ध्यक्षियों के सम्मुख गुरु के गुणानुवाद करता है और जिसे अपने वश में हुआ जानता है उसके सामने गुरु के अवर्णवाद बोलता है। ऐसी दुर्गरभी बात करने वाले को हशामीजी ने धावरिया डाकोत की उपमा दी है।^१

२५८. दो अनाथ क्षत्रिय बालक भट्ठबते ठोकरें खाने किसी राज्य की शरण में जा पड़ते। राजा ने उनके चेहरे पर कुछ होनहार रेखाएँ देधी, उन्हें अपनी छाया में पाल-पोषकर पढ़ाया सिखाया। सयाने होने पर दोनों को सहमीलदार बना दिया फिर सूबेदार और आखिर में छोटे-छोटे राज्य देकर अपना सामन्त बना दिया। राजा को उनमें बड़ा स्नेह था। राज्य में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा और छाक थी। राजा जिसे बढ़ाना चाहे उसे कौन रोक सकता है।

एक बार दोनों से राजा का कोई अपराध हो गया। जिसमें राजा का मन खिच गया और दोनों सामन्तों का समस्त अधिकार छीनकर उन्हें निकाल दिया।

सामन्त अब इधर-उधर भी ठोकरें खाने लगे। एक के दिल में इस घटना से रोष का ज्वार उमड़ पड़ा। वह प्रतिशोध की भावना से अपना दल संगठित करने लगा। स्थान-स्थान पर डाका डालकर, मूट-खसोट करके राज्य भर में आतंक फैलाने लगा।

दूमरे के हृदय में क्षोभ का वेग उठा। उसने अपनी बलती पर परचात्ताप किया। अपनी उस अनाथ दशा को यादकर बारम्बार राजा के उपकार की गरिमा गाते-गाते गद्गद् हो उठता। उसने भी अपना संगठन किया। मोके पर राजा की सहायता करके प्रत्युपकार के लिए ऋण-मुक्त होने की प्रतीक्षा करने लगा।

डाकुओं का भयकर आतंक राज्य का सरदर्द बन गया। राजा ने अनेक प्रयत्न करके दसमुदल को पकड़वाया। उसी सामन्त को अपने सामने देखकर राजा कड़-कड़ा उठा। दुष्ट! कृतघ्न! एक दिने मैंने अनाथ को बढ़ाकर अपना सामन्त बनाया था, उस उपकार को भूलकर आज तू मेरे साथ ही नमकहरामी करता है? राजा ने उसे फामी का हुक्म दे दिया।

१. गर्भवती नें कहे शाकोतरो, धारे होसी पुत्र अनूप।

पड़ोसण न कहे होसी डोकरी, ते पिण अतत कुरूप ॥

गुर भयता थावक थावका कर्ने, गुर रा गुण बोले ताम।

आपो वश हुवो जाणै तिण कर्ने, ओगुण बोले तिण ठाम ॥

(विनीत अविनीत री चौपई डा० २ दो० २)

कुछ दिनों बाद किसी दूसरे राज्य की सेना इस राज्य पर बढ़कर आई। मार्ग में उसी निष्कासित सामंत से भिड़न्त हो गई। उसने सलकारा—'आओ अभी वह राज्य बहुत है। पहले तुम मेरे से ही भिड़ लो।' युद्ध ठन गया। घडाग्रद वीर लड़ने लगे, सेना का मुखिया रणक्षेत्र में रह गया। सेना में भगदड़ मच गई। सामंत ने अपने राजा के नाम की विजय पताका फहराई।

राजा को जब इस घटना की खबर लगी तो अपने सामंत की कृतज्ञता पर बाग-बाग हो गया। स्वयं उसके निकट आया और सम्मान देकर उसे अपने राज्य में ले गया। सर्वोच्च सामन्त के रूप में अब उसका प्रभाव समूचे राज्य पर छा गया।

सचमुच जो कृतघ्नी होते हैं वे किये उपकार को भुलाकर अगारे की तरह अपने आपकी जलाते हैं। वे अंत में दुखी होते हैं किन्तु जो कृतज्ञ होते हैं फूलों की तरह उनकी सौरभ सत्तार में फैलती है और सर्वत्र उनका सम्मान होता है।

(विनीत अविनीत री चौ० डा० १७ गा० १० से ३१ के आधार से)

२५६ एक नगर में किपी बदमाश आदमी ने अपनी कुटिल चाली से हंगामा मचा रखा था। एक बार वह कोतवाल की पकड़ में आ गया। गिडगिड़ाकर माफी मागने पर नाक काट के निकाल दिया गया। यह किमी दूसरे शहर में चला गया। इसकी नाक कटी देखकर लोग हंसते मजाक करते। इस प्रकार नकटा एकतमाशा-सा बन गया। उसने दो चार साथी बनाने के लिए एक ढोंग रचा, सुबह सूर्य के सामने घड़ा होकर आकाश की ओर सीध बाधकर हाथ जोड़ता। लोगो ने पूछा—'अरे नकटा क्या देखता है?' वह अकड़ कर बोला—'चुप रहो! मुझे भगवान् के दर्शन हो रहे हैं।' लोगो ने कहा—'कहां है हमें तो नहीं दीखता।' नकटा—'मेरी सीध में आकर देखो? लोगो ने सीध में घड़े होकर देखा तो कहीं भी भगवान् दिखाई नहीं दिया। नकटे ने कहा—'भगवान् दीखे भी कैसे! तुम्हारी नाक जो आड़ी आ रही है। लोग हस पड़े—'वेवकूफ! नाक भी कभी आंखों के आड़े आती है? नकटा—'सच कहता हूँ, तभी भगवान् नहीं दीख रहे हैं।

एक शराबी ने कहा—'अच्छा तो मैं अभी नाक बटवा कर आता हूँ, मुझे भगवान् के दर्शन करा दो।' वह नाक उतरवा कर आया, नकटे ने अपनी सीध में धरा करके कहा—'देख इस अगुली के इशारे पर वह भगवान् दीख रहा है।'

शराबी ने ना ना कहा तो नकटे ने पीठ पर घूसा जमाया, गधे! ऐसा मत बोल। अब तेरी नाक तो कट ही गई है। अब यूँ कह—'हाँ भगवान् के दर्शन हो रहे हैं तब दो-चार साथी और बनें।

शराबी नाचने लग गया—'हाँ हाँ! वह भगवान् दिखाई पड़ा, सबमुख ने नाक आड़ी आती थी। नाक बटवने से भगवान् दीखेगा। इसके देशारेख कुछ व्यक्ति पानी में आ गये और नाक कटवा कर भगवान् के दर्शन करने का ढोंग करने लगे।

इस प्रकार दूसरी को दोस्रो टहलाने के लिए जो स्थल छोड़ी बन जाने है और ओर व्यक्तिओं को अपने अंगुष्ठ में जंघा में है उनको स्वाधीनी के 'नकटा' की उम्मा दी है।

(गायनाचार की श्री० हा० १० गा० १६, २० के आधार से)

२६०. चार ब्राह्मण से जो बड़े स्वामी और भाव मजबूती से। किसी जमाने में उन चारों को एक साथ दक्षिणा में दी। चारों एक साथ तो साथ हुए नहीं गये थे, इसलिए एक-एक दिन जारी लगा दी। अन्त में साथ ही हुए हुए होने पर चारा नहीं दामने। वे यह सोचते थे आज जो चारा दामा जायेगा उसका दूध तो बन जाने को मिलेगा, फिर मैं क्यों दानु? इस प्रकार सोचकर चारों में ही साथ को कुछ भी जाने-सीने को नहीं दिया। धीरे-धीरे दूध सूख गया। साथ बनने लगी। बेचारी भूखी-भ्यामी साथ एक दिन खरी-खरी जमीन पर लुहक गई, उसके प्राण पनेक ठह गये। लोगों ने जब इसका भेद पाया तो उन्हें गुब धिक्कारा। इसी प्रकार जो अविनीत होते हैं वे दूसरों की परवाह न करने हुए अपने ही स्वार्थ की पूर्ति करने हैं। लेकिन अन्त में उनको बड़ी दुईमा होती है और वे निरतकार को पाते हैं।

(विनीत अविनीत की ओर हा० ४ गा० ११ से १६ के आधार से)

२६१. एक मोटा राजा बुला नहीं किसी 'मीनगर' के रंग की कुछ में जा गिरा। उसमें पड़ा-बड़ा गुनेरियां छावर बुझियां लगाने लगा। मीनगर ने उसे निशाना तो यह रंग-बिरंगा बड़ा बिबिध-सा जानवर दीखने लगा। गांव की ओर दीड़ा तो वहाँ के गारे कुत्ते इस अजीब जीव को देखकर घुर-घुर कर उसे घेर कर काटने लगे।

बड़ी मुसीबत से जान बचाकर दीड़ा और जंगल में जाकर एक ऊँचे टीले पर बैठे टाट में बैठ गया। जंगल के जानवरों को इस अजीब अंगुष्ठ को देखकर वह आश्चर्य हुआ। सब मिलकर उसके पास आये और पूछा—'आप क्यों हैं?' हुए अन्हकना से बोला—'मैं बुधकरधम हूँ, भगवान् ने मुझे जंगल में बीसों पर शास करने के लिए भेजा है। तुम सब लोग मेरा भागन मानो।'।

सभी उसके दबदबे में आ गये। रात-दिन उसकी सेवा करने लगे। सब तरफ कि वही राजा रष्ट हो गया तो भगवान् के दरबार में हमारी शिकायत कर देगा। बहुत दिनों तक बुधकरधम की पासबाओ चलती रही।

एक दिन वहीं से उसे कुत्तों के भीकने की आवाज सुनाई दी। बहुत देर तक मन मसोसकर दाँत काटता रहा पर आगिर रहा नहीं गया। जोर से भों-भ करती हुआ वहाँ से उछलकर गांव की ओर भागा।

उसका मौकना देखकर जानकर दग रह गये। यह बुला इतने दिन हम सब को उल्लू बनाता रहा। यह कहते हुए सभी मिलकर उसे काटने दीड़े और इध

वह गांव के कुत्तो की ओर दौड़ गया तो सभी इस नये जानवर पर दूट पड़े और उसका काम तमाम कर दिया।

बहुत दिनों तक अपना स्वभाव छिपाकर रखने पर भी उसका मूल स्वभाव छिप नहीं सका, वह प्रगट होकर ही रहा।

स्वामीजी ने कहा—'इसी तरह जो साधु के वेप में पुजाता है वह अग्निर पुक्कुरधम की दशा को प्राप्त होता है।'^१

२६२ प्याज को ती बार गगाजल से धोने पर भी उसकी बाम नहीं मिटती। उसी तरह अविनीत को गुरु द्वारा शिक्षा मिलने पर भी विचित्र मान नहीं लगती।

अनेक बार धोने से प्याज की बाम तो कुछ कम पड़ सकती है पर अविनीत को दी गई शिक्षा तो बेकार चली जाती है, वह तो कहने मात्र से ही उन्टा पड़ा है और क्लेश पैदा करता है।'

२६३ कई व्यक्ति स्वयं साधुओं की निन्दा भी करते हैं और कुटिलता करके अलग रहना भी चाहते हैं। इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—

किसी गांव में एक घुगलघोर रहता था। एक दिन फौजी लोग वहां बंरा डालने के लिए आए। उस विधुन ने पुरवासियों के धन-धान का पता आदि बां दिया। फौज वाले कुछ व्यक्ति तो धन सम्पत्ति लेकर चले गये और कुछ वही थे। गांव के लोग भय के मारे भाग गये थे। उनमें से कुछ धन की रक्षा के लिए बाग आये। उन्होंने सुना कि घुगलघोर सबका छिपा हुआ धन बता रहा है। वे कहने लगे—'दुष्ट! गांव वालों के साथ भी इतनी नीचना कर रहा है। घुगलघोर पेहरा बदसबर फौजवालों को सुनाते हुए बोला—'नहीं मैंने किसी का धन नहीं बनाया। अगर मैं बताता तो अमुक का धन अमुक जगह में है २, वह भी बता देगा। इस प्रकार कुबुद्धि करके उसने बचावका धन भी बता दिया। डारू लोग सब धन बटोरकर ले गये। लोग बेचारे उस दुष्ट की काली करतूत को देखने ही रह गये।

- १ वन मन में मगज न मार्व, साधु ज्यू सोका में पूजावै।
मगरवाई में होय रखो सैंडी, कुक्कुरधम राजा होय बेंडी॥

(धडा की बीरई का० २५ गा० २१)

- २ कांश ने ती बार पाणी मू धोवियां, तो ही न मिटे निगरी बाम हो।
ज्यू अविनीत ने गुर उगदग दीवै पगो, निग मून न लागै पास हो॥
कांश की तो बाम धोवां मुखरी परं, निरपन्न छै अविनीत में उगदग हो।
जो देखै तो अविनीत अवधो पई पगो, उग दे दिन-दिन अधिक क्लेश हो॥

(विनीत अविनीत की बीरई का० ३ गा० २६, ३०)

इस प्रकार दुष्ट आदमी दुष्टता भी करता है और जाने को दूध-धुला गा भी दिखाना चाहता है।

(भिवयु दुष्टात्मा १४४)

२६४. एक स्त्री पानी सेने के लिए पनपट पर गई। गिर पर हो पड़े रखकर घर जाने लगी तब रागते में उगकी गहेमी मिल गई। एक पक्षी एक उगके साथ बह हन-हन कर काते करती रही। फिर घर पहुँचने ही पक्षी को पहा उगारने के लिए आवाज लगाई। पक्षी बिनी काई में बरग्न था, उगे गमेट कर आया और पक्षी के गिर में दोनों पड़े उगारे। इनमें से उगकी स्त्री बोधादेश से आकर अट-अट बोल्ने लगी - 'मैं तो धड़ी-धड़ी भार में मर रही थी, तुम्हें अपनी आवाज लगाई तो भी बिनी केर में आवे हो मन में कुछ विचार हो नहीं आता।'

स्वामीजी ने कहा—'जैसे उग औरत को पक्षी भर तो भार नहीं लगा और तो बार छाँटों में बह भार में दब गई। वैसे ही अविनीत माधु अपने हठिष्ठ काय में तो पटों भर समय लगा देता है और शुद्ध आदि द्वारा बड़े गव बोड़े काय में भी काममदोस करता है और उसे भारभूत समझता है।'

(भिवयु जल० रसायन डा० ४१ पा० २ से १३ के आधार से)

२६५. मोरा मूह में डालने पर ठहा लगता है बिन्नु अग्नि में डालने पर भस्मक उठता है वैसे ही अविनीत व्यक्ति की स्वार्थ-युति होने में वे बड़े मोक्षम रहने हैं और पटवार दिये जाने पर भस्मक पड़ते हैं। मोरा स्वयं जलता है और दूसरों को जलाता है, बाद में राख (भस्म) होकर उड़ जाता है। उसी प्रकार अविनीत अपने व दूसरों के ज्ञानादिक गुणों का नाश करता है।'

२६६. अविनीत को अपने समान व्यक्ति की मर्त्यता मिल जाती है तो वह प्रमत्त होकर दुगुना बल बना लेता है। जैसे दायन को चढ़ाने के लिए जरख मिल जाने।'

१. मोर ठंडी सारी मुख में घालियो, अग्नि माँहे घास्यां हूँ तानो रे।

ज्यू अवनीत नैं मोर री ओरमा, मोर ज्यू असयो पड़े तानो रे॥

आहार पांणी वस्त्रादिक आरियो, तो उ खान ज्यू वृछ हलावे रे।

बरहो बह्यां उटे मोर अगन ज्यू गण छोड़ी एकल उठ जावे रे॥

मोर आप बने बाने और नैं पड़े राख पई उठ जावे रे।

ज्यू अवनीत आप नैं पर लणा, ज्ञानादिक गुण गमावे रे॥

(विनीत अविनीत री चौपई डा० २ गा० ३१ से ३३)

२. अविनीत नैं अविनीत थावक मिलै ए, ते पाम पणो मन हरख।

ज्यू आकाश शक्ती हूँ ए, बड़हा नैं मिलियो जरख॥

(विनीत अविनीत री चौपई डा० ४ गा० २८)

२६७. जो साग निगुरा होता है वह दूध मिथी पिलाने वाले व्यक्ति को माट छाता है और जो सगुरा होता है वह दूध मिथी पिलाने वाले व्यक्ति को घन देकर धनवान बना देता है और उसे देखकर प्रसन्न होता है ।

इसी प्रकार जो अविनीत शिष्य होता है वह सम्पत्त्य और धारित देने वाले गुरु के प्रति दुष्टता करता है और जो विनीत होता है वह गुरु के प्रति इज्जतता के भाव रखता है ।^१

२६८ विनयशील साधु द्वारा समझाये गये व्यक्ति चावल और दाल की तरह मिल सकते हैं लेकिन अविनीत साधु द्वारा समझाये गये साग में बोकना की तरह गृथक ही रहते हैं ।^२

२६९. अभिमानी शिष्य गुरु से भी बराबरी करता है क्योंकि उसमें अविन और अह का बड़ा दुर्गुण है । यह साध के लिए हितकारी नहीं होता । जैसे शिकुत हुआ एक पान भी दूसरे को विकृत कर देता है जैसे अविनीत दूगरों का भी विनाश कर देता है ।^३

२७०. किसी विनयशील साधु की वस्तुत्व कला एवं कठो की सरमत्ता से प्रभावित होकर लोग उसकी प्रशंसा करते हैं तब जो अविनीत और अभिमानी होता है उसका हृदय जल उठता है, उसकी खुशी घट जाती है, शोक बढ़ जाता है वह अपनी टांग ऊपर रखने के लिये लोगो से कहता है—'क्या घरा है उसमें केवल बिन्ताकर रिझाता है तब तो जानता ही नहीं । तात्त्विकज्ञान तो मैं ही अच्छी

१. सर्प ने मिथी दूध पाया पछे, इक देव से तो सर्प मेरी रे ।
ज्यू ओ समझिन चारित सीया पछे, हुओ साधां रो बेरी रे ॥
गुररा साग ने दूध पाया पको, तो उ करे पाछो उपगारो रे ।
निग ने घन देई ने घनवन करे, बले दीठां हुवं हरख अपारो रे ॥

(विनीत अविनीत री चौ० डा० ७ गा० २१, २१)

२. बनीन लणा समझाविया ए, सात दाल ज्यू भेसा होय जाय ।
अविनीत रा समझाविया ए, ते बोकसा * ज्यू बानी पाय के ॥
समझाया बनीन अविनीत रा ए र्था में फेर विनोयक होय ।
ग्यु तावरो में छाहरी ए, इनरो अग्लर जोन के ॥

(विनीत अविनीत री चौगई डा० १ गा० १५, १५)

* बिना छिपका उगारी हुई गुन्नी बकडी के छोटे-छोटे छड ।

३. बने करे अभिमानी गुर मूं बरोररी रे, निग ने प्रबन अरिनों में अभिमान रे ।
ओ जद तद टोना म आछो नही रे, ज्यू बिगड़यो विगाडे सहियो पान रे ॥

(विनीत अविनीत री चौगई डा० १ गा० २८)

तत्कालमात्रं ॥ १९

२७१. किमप्रकारेण मे भगवन् दुःखं दुःखं मदी विवर्तयति त्वमी प्रकाशं योग्यं (पाप) धर्मिणी को विना दुःखं मोक्षं विवर्तयति मदी होना ॥

२७२. भगवन् मदी ने विवर्तयति धर्मिणी को चतुर्वर्त्तु मे विवर्तयति धर्मिणी को अनेक हेतु, उत्तम व उत्तम धर्मिणी द्वारा मदी को विवर्तयति विना है । उक्तो आध्यात्मिक पक्ष मे धर्मिणी को हृदय पुने मदी अमृत मित्रात् मित्रिणी है ।

२७३. इतिहास धर्मिणी रात्रिगृह मगर उदयतिरि, विपुलतिरि, शत्रुतिरि, रत्नतिरि व वैभवतिरि इन पाँच पक्षों मे विवर्तयति वा । उक्त मगर मे एक धर्मिणी नामक मदीकाह रहता था । उक्तो पक्षी का नाम मदी था । उक्त पक्षी पुत्र पुत्र—१ धनराज २ धनदेव ३ धनमोह ४ धनमोह । मगरमगर मे उक्त विवाह कर दिया गया । पक्षी पुत्र मनुष्यों के नाम मे—१ उग्रिणी २ भोगिणी ३ रक्षिणी और ४ रोहिणी । मेट धन मरति एवं पारिवारिक ममृष्टि मे मरति था । मरति मे अन्ती प्रतिष्ठा थी । ममृष्टि ममृष्टि की गता गया । एक दिन मेट के मन मे विचार आया कि अभी सो घर मे मे प्रमुख हूँ और मृष्टि मरति का निर्वाह करना हूँ परन्तु बाद मे भी इस घर की मुख्यता रहे अतः मुझे अपने घर का भार मदीको मदीकर निश्चित हो जाना चाहिए ।

उक्त मदीको को एवमित्त कर प्रीतिमोक्ष दिया और सबके ममृष्टि मरति पक्षी पुत्र मनुष्यों को बुलाकर कहा—'मे मुझे पक्षी-पाँच पाँच के दाने दे रहा हूँ इनको मुरझात रहता और जब मे इन दानों को मांगू तब आपन मीन देना । पक्षी मनुष्य उम्हें लेकर अपने-अपने स्थान पर गई । पहली उग्रिणी के मन मे आया—'अपने कोष्टागार मे मणिकष पावल भरे हुए पड़े है, 'श्वमुरजी जब मांगे तब इनमें से निवास कर दे दूँगी' ऐसा विचार कर उक्त पाँचों पाँच के दाने एकत्र मे डाल दिये । दूसरी भोगिणी उक्त पिनन कर पाँचों दानों को खा गई । तीसरी रक्षिणी सोचने लगी कि जब श्वमुरजी ने ममृष्टि परिवार के बीच पावल के दाने दिये हैं तो इनमें कुछ-कुछ रहस्य होना चाहिए । ऐसा सोचकर उक्त पावल के

१. कोई उग्रारी कठ बला घर पाघ री रे, प्रजना जग कीरन बोने लीग रे ।
अविनीन अभिमानी गुण गुण परजने रे, उक्त ने हृदय घट में बंधी मोह रे ॥
जो कठ बला न हूँ अविनीन री रे, तो मोह आगे बोने विवरीत रे ।
या गाय गाय रीझाया भोक में रे, बहूँ हूँ तनव औलछाऊँ रुझी रीग रे ॥
(विनीन अविनीन री चोपई डा० १ गा० २२, २३)

२. ममृष्टि उग्रवली थीकारी जी, पयधारी दोनू दीपता ।

मदीं बिगड़े दूध निगार ॥

(मिषल जग० रसायन डा० ४३ गा० ४)

पाँचों दानों को एक बहिष्ता करने में बाँधकर एक रात-दिना में रख कर देरी से बद कर दिया और मग्न उमकी संधान करती रही। चौथी रोहिणी नामक पुत्र-वधू ने लक्ष्मी में विचार कर मग्न निर्णय किया कि मुझे इस पाँचों दानों की कृति करनी चाहिये। उमने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर उन बाबत के दानों से अलग से मेरी करने के निम्न दिया और प्रतिक्रिया उसी कृति करने का निर्देश दे दिया। उन सोपों ने चतुर्थ पुत्र वधू के कपड़ों को स्वीकार किया और वस्त्र सीकरी मन बाबत पंदा कर कोटागार में भग्न दिने।

पाँच गान पूर्ण होने पर सेठ ने जातित्रियों को आमन्त्रित कर उनके सम्मुख पाँचों पुत्र वधूओं को बुलाया और पात्रनों के दाँने मागे। पत्नी उज्जिता ने लक्ष्मी कोटागार में बाबत के पाँच दाँने निहायकर सेठ के हाथ में दे दिने। सेठ ने पूछा 'क्या ये दाँने वही हैं?' उज्जिता—'नहीं, उनको तो मैंने पेंच दिया अभी कोटागार में निहायकर लाई हूँ।' सेठ ने अग्रगण्य होकर उम पर की मर्यादा आदि का कार्य गीता। भोगवती ने मागे तो वधू बोली—'मैं तो उन दाँनों का खा गई।' सेठ ने उमको रमोई आदि करने का निर्देश दिया। रोहिणी ने मागने पर भूमभूत पाँचों दाँने लाकर गामने रख दिने। सेठ ने शुभ हाकर उम पर की सारी मर्यादा सम्पत्ता दी। रोहिणी में दाँने बाबत गीतने का कहा—'तो उमने बाबतों में भरी हुई बर्द गादिया मगवाकर सेठजी के सम्मुख रखी बाबा दी। सेठ उसको बुद्धिमत्ता पर अत्यधिक प्रमत्त हुआ। उमने गृहस्वामीनी बनाकर ममत्र परिवार का उत्तरदायित्व उमने सौंप दिया।

(जाता० अ० ९ में यह वर्णन विस्तार पूर्वक है।)

स्वामीजी ने कहा—'त्रिम प्रकार सेठ ने परीक्षा कर रोहिणी व रोहिणी को घर की सुरक्षा व संचालन का कार्य सौंपा पर उज्जिता व रोहिणी को नहीं। उसी तरह शुभ सुविनीत शिष्य का रोहिणी रोहिणी की तरह समुंभ मग्न की त्रिमेदारी सौंपते हैं। पर जो अविनीत होता है उमने उज्जिता व भोगवती की तरह मग्न का भार नहीं सौंपा जाता।

(विनीत-अविनीत की चोर्द दा० ४ पा० १ में ६ के आधार में)

२७८. कृतज्ञ व्यक्ति किसी द्वारा किया गया उपकार याद रखता है और समय आने पर उसमें उच्छ्रण होने का प्रयत्न करता है। भगवान महावीर ने स्वामाग मृत्र में तीन प्रकार के प्रमुख उपहार बनायाये हैं। आचार्य मिश्र ने भी अपनी लेखिनी द्वारा उमका प्रतिपादन किया है। वे इस प्रकार हैं—

१ माता-पिता का पुत्र पर।

२ सेठ का गुमानने पर।

३ शुभ का शिष्य पर।

भगवान महावीर के शरणों में

अपमान में कहा—आपमान धर्मको ! तीन घर दुःखनिवार है—उपमे उच्छल होता दुःखन है १. माता-पिता २. बन्धी—तामन पोषण करने वाला ३. धर्माचार्य ।

१. कोई पुत्र अपने माता-पिता का प्राण प्राण में साधना, गहनसाध, तपो में बर्धन कर, सुदुर्लभ भूमि में उदयन कर, सघोरक, तीव्रतरक तथा उद्योदक से स्नान करवाकर, गर्भाशयों में उन्हें विष्णुपूजन कर, अष्टांग प्रकार के स्वास्तीनाम-मुद्रा मन्त्रों में मुख्य भोजन करवाकर, जीवन दर्शन की (बहरी) में उन का परिचय करे तो भी वह उनके उपकारों में उच्छल नहीं हो सकता ।

वह उनमें सभी उच्छल हो सकता है जबकि उन्हें समझा-बुझाकर, प्रबुद्ध कर विचार में बनाकर वैदनीप्रज्ञा धर्म में स्थापित करता है ।

२. कोई अर्धवर्ति किसी दरिद्र का घन आदि में समुत्थान करता है । सर्वोपवास कुछ समय बाद या बीम ही वह दरिद्र बिना भोग सामग्री में मुख्य हो जाता है और वह अर्धवर्ति किसी समय दरिद्र होकर सहयोग की कामना में उनके पास जाता है । उस समय वह भूमिपूर्व दरिद्र अपने स्वामी को सब कुछ अर्पण करके भी उनके उपकारों में उच्छल नहीं हो सकता ।

वह उसमें सभी उच्छल हो सकता है जबकि उसे समझा-बुझाकर प्रबुद्ध कर विचार में बनाकर वैदनीप्रज्ञा धर्म में स्थापित करता है ।

३. कोई व्यक्ति तपस्कर धर्म-माह्न के पास एक भी आर्ष तथा धार्मिक बचन सुनकर अवधारण कर, समुत्थान में मर कर किसी देवलोके में देवका में उत्पन्न होता है । किसी समय वह धर्माचार्य को अस्वाम्य परत देता तो मुग्धता देता में सहन कर देता है, जलन से बन्धी में ले जाता है या सभी बीमारी तथा आठक (सघोषाली रोग) में अभिभूत बने हुए को विमुक्त कर देता है, तो भी वह धर्माचार्य के उपकार में उच्छल नहीं हो सकता ।

वह उसमें सभी उच्छल हो सकता है जबकि कदाचित् उसके वैदनीप्रज्ञा धर्म में घट्ट हो जाने पर उसे समझा-बुझाकर प्रबुद्ध कर, विचार में बनाकर पुन वैदनीप्रज्ञा धर्म में स्थापित कर देता है ।

(स्वानां रथा० ३ उ० १ सूत्र ८५)

ग्यामीजी ने विनीत अविनीत की ओ० उरण की बात १२ में तीनों उपकारों का स्पष्टीकरण दिया है ।

२५५. चार व्यापारी परदेश जा रहे थे । रास्ते में एक 'राधन' (रगोईकरने वाली) के घर टहरे, जो आये गये बटोहियों को रगोई करके गिलाकर अपना गुजारा करता थी । व्यापारियों के राधन के एक रगोई करवाई । जिसके कुछ और मादा भोजन करके व्यापारी खूब तृप्त हुए । प्रसन्न होकर चारों ने एक-एक

रघुना राधण को दे दिया ।

व्यापारी पी फटने के पड़ने ही उठकर अगनी मजिन की ओर चढ़ने लगे तो राधण ने कहा—‘अरे भाईयो ! भूयें कैसे जा रहे हो ? अभी मैं बिलीना बगो हूँ, ताजी छाछ पीकर जाओ ।’

राधण के प्रेम भरे आग्रह ने बटाऊ टक गये । राधण ने बड़ी उतावले के साथ बिलीना किया और सभी को मान मनुहार करके छाछ पिलाई । बटोरी तून होकर राधण का आशीर्वाद लेकर आगे चल पड़े ।

गुब्रह होने होते जब राधण ने छाछ में मटरी लमाई और काने-काने बिपदे तैरते देखे तो वह अवाक् रह गई । हाय ! रे हाय ! जुन्म हो गया । इस पाणिने ने तो उन बेचारे अनजान बटोहियों को छाछ क्या, माप का जहर पिला दिया वही राह चलते-चलते मर गए होंगे । राधण का कनेजा काप उठा । अपने उतावलेन और अभावधानी पर उसका मन घुणा में भर गया ।

बहुत वर्ष गुजर गए । अनेक राहगीर आने और रोटी खाकर चले जाते । एक दिन वे ही घाट व्यापारी परदेश में मानोमान होकर अपने घर सीटने मन्न राधण के घर आ गए । महा धोने के बाद रोटी खाकर सभी एक जगह बैठे बैठे बने बर रहे थे कि व्यापारी ने पूछा—‘राधण हमें पहचानती हो ?’

मा भैया ! मेरे तो गाल में सँकड़ो बटोही आते हैं मैं किम-किम को पहचानूँ ? व्यापारी बोले—‘याद करो, आज मैं कई गाल पढ़ने हम यहाँ आए थे । मुझ् पी फटने के पड़ने ही जब चलने लगे तो तूने बड़ कैमी बड़िया छाछ पिलाई थी, याद है ?’

मदमा राधण को वह घटना याद आ गई । एक बार तो मारा शरीर मिट्टर कर पसीना-पसीना हो गया, मन को धीरज देनी हुई बोली—‘अरे भैया ! तुम हो ! बहुत अकड़ा हुआ, मुम आ गए । जीने रहो ।’ व्यापारियों ने राधण के बेहरे पर आगश और विम्वय के भाव देखकर पूछा—‘क्यों क्या बात है ?’ राधण ने बात की दबाने की बहुत बोगिन की पर व्यापारियों के अप्याग्रह ने उस दिन भी मारी घटना सुनाई । सुने ही व्यापारियों के शरीर में बिजली-सी कौट गई । ‘कहा माप बिलीन पिला गया था’ के माप ही चारों मुद्रक पड़े । माप का जहर शि पर कोई अमर नहीं बर मरा के उसकी समुति-माप में मृग्यु को प्राण हो गए ।

व्यापारी ने पूर्णतः काम-बीश को याद करने के मदर्भ में उक्त उपाकरण का उपयोग किया है—

बहुत महीन चाप (छाछ) पीने जानिया,

एवरो बाबोई न हुबो बाप दे ।

एवने पना बरमा पछे बहो,

निज म बरग पाव्या लखल दे ।

ए भूआ जहर पाद अणादिपा,
 पाभी अणचितवी अगमाध ।
 ग्युं भागै बल्लनारी शीन मू,
 काम भीम ने कीधा पाद रे ।

(शील की नववाड डा० ७ गा० ११, १३)

२७६. एक क्षत्रिय था । एक बार समुराल से गोता (आणा) लेकर लौट रहा था । रथ के भीतर पर्दे में पत्नी बैठी थी जो बड़ी सुन्दर और चतुर थी । वह बाहर बंठा रथ हाक रहा था । मार्ग में एक चोर भिन्न गया । उसने क्षत्रिय पर घावा बोल दिया । क्षत्रिय का पौष्य जाग उठा । उसने चोर पर धाणों की वर्षा शुरू कर दी । चोर भी शस्त्रों में लैस तैम था । जमकर लड़ाई हुई किन्तु कोई हारा नहीं । बाण फेंकते-फेंकते अब क्षत्रिय के पास केवल एक बाण शेष रह गया । उसका कलेजा कापने लगा ।

भीतर बड़ी क्षत्रियाणी पर्दे की जाली से दोनों की मोर्चाबन्दी देख रही थी । उसने पति को हारते देखकर अपने तीर चलाने शुरू किए । पर्दा उतार कर उसने चोर पर तीखे कटाक्ष फेंके । रूप की मदिरा ही ऐसी है कि देखते ही उसका नशा चढ़ जाता है । चोर के हाथ रुक गए । आखें फाड़कर वह उसके रूप-सौंदर्य को निहारने लगा और युद्ध करना भूल गया ।

क्षत्रिय ने अवसर पा लिया । बाण चलाकर घमाक से उसे मिरा दिया । क्षत्रिय अपनी विजय पर अहंकार करने लगा, देखा मेरा युद्ध बीशल ।

चोर ने कहा—'तुम किस बात का घमंड करते हो, मैं तुम्हारे बाणों में नहीं, इसके बाणों से घायल हुआ हूँ ।

स्त्री के रूप पर आसक्त होने वाले व्यक्तियों के लिए स्वामीजी ने इस दृष्टांत का प्रयोग किया है—

एक खत्री आणो लेजावता रे, मारग माहे मिलियो चोर ।
 तिण नें खत्री बाण बाया घणां रे, चोर फरमी मू न्हास्या तोड ॥
 हिवे एक बाण बाकी रह्यो रे, जब अस्त्री निज रूप दिखाय ।
 ते चोर तिण रे रूप बिलवियो रे, जब खत्री बाण मू दियो डाय ॥
 चोर पर्यो ते देखनें रे, खत्री करवा लागो माण ।
 चोर कहै गरबे किसू रे, म्हारे मारी नेणा रा लाग बाण ॥

(शील की नववाड डा० ५ गा० १५, १६, १७)

२७७ पर-पुरुष एवं पर-स्त्री का सगम करना व्यभिचार कहलाता है । इस व्यभिचार को गंध लहसन छाने के समान होती है । उसे कोई व्यक्ति एकांत में जाकर छाछा है तो भी अपने-आप ससार में प्रकट हो जाता है ।

स्वामीजी ने व्यभिचार के लिए लहसन की उपमा का प्रयोग किया है और

जिसकी मनुष्य को उमने बनने की प्रेरणा दी है।'

२३= गांव शमनों में 'जुआ' नाम का मत है। ग्रामीणी ने एक पीढ़ी के माध्यम से उम पर विमर्श विरोध किया है। जुआ की जुगाड़ों को बाँटने हुए जुआरी धर्म की बातें सुनता होता है उमरा सामाजिक विचार दिया है उमरा सामाजिक दम प्रकाश है—

एक माहूकार का पुत्र जुगो मर्गि के कारण जुआरी बन गया। पिता ने उसे प्रकटन रूप से बहुत समझाया पर बेडा जुग का ध्यान नहीं छोड़ सका। मेड ने मोचा - 'मैं इसे ज्यादा बड़गा तो यह बड़ी आत्मा करके मर जायेगा और जुग पर शावट नहीं होगी तो यह पीढ़ियों का कमाया हुआ धन तो खेड़ेगा। मेरी बात को यह बिल्कुल नहीं मानता। प्रभु कोश खाँस करता है। मेरे दाज का उदय है जिसमें जुगुन ने घर में जन्म लिया है। पिता मन मगोग कर रह जाता।'

कुछ समय परबाहू पिता भीमार हो गया। उमने गहरा बिलत किया और पुत्र को एकांत में मुलाकर अन्तिम शिक्षा देने हुए कहा—'बेटा! मेरा शरीर अब अधिक दिन टिकने वाला नहीं है। अब मेरी मृत्यु के बाद तुम मेरे कथनानुसार कार्य करोगे तो वह तुम्हारे लिए लाभप्रद होगा।' पुत्र ने कहा—'क्या?'

सेठ—मेरे मरने के बाद मेड की पदवी का निम्नक तुम्हारे गिर पर तिकनेवा ही। वह निम्नक तुम नगर के गमने बड़े जुआरी के हाथ में करवाना। पिता की बात सुनते ही उसकी कन्धी-कन्धी झिल गई।

थोड़े दिन बाद पिता की मृत्यु हो गई। दाह-संस्कार व प्रेम्पकार्य करने के पश्चात् नगर के जुआरियों को अपने घर आमन्त्रित किया।

पुत्र ने खड़े होकर अपने शान्तियों के सम्मुख पिता के निर्देश को सुनते हुए जुआरियों को संबोधित करते हुए कहा—'आपमें जो सबसे बड़ा जुआरी हो वह मेरे गिर पर सेठ की पदवी का निम्नक करे। इसके लिए आप पहले अपना-अपना परिचय दीजिये।'

एक जुआरी बोला—'मेरे घर में जितना भी धनमाल था उसे मैंने जुग के दाँव में लगा दिया, फिर भी सगे-सबन्धियों से उधार लेकर जुआ खेलने के लिए हर समय कटिबद्ध रहता हूँ।'

दूसरा—'मैं इनके बड़ा जुआरी हूँ। मैंने पूर्वजों की अजित समग्र संपत्ति के अतिरिक्त सत्सामभूषण तथा मकान आदि भी द्यूत महाराज के चरणों में समर्पित कर दिये तो भी मैदान में नहीं हटा।'

१. पर पुरप है बाई जाणी समत समान, तें छुने बेस छाये जणा।

जिहो जावे तिहो परगट हूवे जी॥

तीसरा—‘इन दोनों से मेरा स्थान तो बहुत आगे है। मैंने तो सब कुछ छोकर दिवाला भी निकाल दिया। मिर पर कर्जा होने पर भी आधी रात को तैयार रहता हूँ।’

इस प्रकार एक पर एक जुआरी आते गंगे और अपनी गरीबी का इतिहास बतलाकर अपना बड़प्पन दिखाते गये।

सेठ के पुत्र की आख खुली। जुए के प्रति उसका मन ग्लानि से भर गया। सब जुआरियों को विदा दी।

पिताजी द्वारा दी गई शिक्षा का हार्दिक उसके समक्ष में आ गया। साहूकार के हाथ से सेठ की पदवी का तिलक करवा कर परिवार में प्रमुख बना और पिता के नाम को उजागर किया।

(जुआ की ढाल के आधार से)

स्वामीजी ने स० १८५७ का चातुर्मास ‘पुर’ में किया। वहाँ के लोग जुआ बहुत खेलते थे। स्वामीजी ने उन्हें उद्बोधन देने के लिए उस चातुर्मास में सावन शुक्ला ५ शनिवार के दिन यह ढाल बनाई और जनता को समझा कर इस ध्यमन से मुक्त किया। ‘***वर्ष सत्तावन, जुआ छोड़ा जाय।’

(शिवशु जश डा० ६३ गा० १०)

२७६. एक बार किसी सेठानी ने ‘बदरवाई’ नामक प्रसिद्ध एवं सुन्दर चूड़ा पहना। घर के आगन में सज्जधर कर अच्छे आसन पर बैठ गई। उसे देखने के लिए नगर की स्त्रिया आने लगी। वे देख-देख कर फूँसी नहीं समाठी और सेठानी के गृहांग की तथा चूड़े की सराहना करके चली जाती।

एक होमिनी भी चूड़ा देखने के लिए आई। उसका मन ललचा गया। उसने सेठानी की तरह बाह-बाह पाने के लिए घर के थाली लोटा बेचकर बंसा ही चूड़ा भगवाया और पहनकर बैठ गई। दोपहर का समय आ गया पर देखने के लिए कोई नहीं आया।

लोगों को बुलाने के लिए उसने शोपडे में आग लगा दी और स्वयं बाहर आकर बैठ गई। धुआधार होने ही लोग दौड़े-दौड़े आए और आग बुझाते हुए बोले—‘देखो, क्या कुछ बचा है या नहीं।’

होमिनी ने दोनों हाथ ऊँचे करके कहा—‘और तो सब कुछ जल गया पर यह एक चूड़ा रहा है चूड़ा।’ उसे देखकर सभी ने पूछा—‘तूने यह चूड़ा कब पहन लिया।’

होमिनी रोती हुई बोली—‘अरे पहले ही पूछ लिया होता तो झोंपड़ा = जसता?’

लोग—क्या तुमने ही आग लगाई है?

होमिनी—हां।

लोग — क्यों ?

डोमिनी—तुम लोगों को बुलाकर चूड़ा दिवाने के लिए ।

सभी लोग उसकी मूर्खता पर उपहास करने लगे ।

(उपदेश कथा कोप भाग-१ प्रकरण ५ स० ।)

स्वामीजी ने कहा—‘जो व्यक्ति यह प्रतिष्ठा के लिए दूसरों की देखादेखी करता है वह डोमिनी की तरह मूर्ख शिरोमणि कहलाता है ।’

२८०. किसी व्यक्ति को अपना वैरी नहीं बनाना चाहिए । इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—‘ससार में तो किसी से कर्जा लेकर बापस न देने में बलबूझ बन जाता है । धर्म की दृष्टि से किसी को कठिन चर्चा पूछने पर जवाब नहीं आने से वह वैरी बन जाता है अथवा किसी की तुलना निकालने से वह गुस्से आकर उसका वैरी बन जाता है ।’

(भिक्षु दृष्टान्त ११।)

२८१. एक साहूकार में स्वयं की समझ तो थी नहीं । पड़ोसी के देखादेखी व्यापार करता था । पड़ोसी जो वस्तु खरीदता वह भी वही वस्तु खरीद लेता । एक बार पड़ोसी ने सोचा—‘यह केवल देखादेखी करता है या इसमें कुछ ज्ञान है, इसकी जाच करनी चाहिए । उसने अपने पुत्र से कहा—‘अभी पचाग के भाव बढ़ रहे हैं, जितने खरीद सको उतने खरीद लो, थोड़े ही दिनों में देखा भाव दुगुने हो जायेंगे ।’

साहूकार ने यह सुन लिया और तुरन्त स्थान-स्थान से नये-पुराने पचाग मगवाने शुरू कर दिये । पचागों का ढेर लग गया पर पुराने पचागों की खरीद कौन ! खरीददार कोई नहीं आया उसकी पूजी नष्ट हो गयी ।

स्वामीजी की शिक्षा है कि व्यक्ति को अपनी बुद्धि के बिना केवल देखादेखी करने से बहुत खतरा उठाना पड़ता है ।

(भिक्षु दृष्टान्त २८८)

२८२. किसी गांव में जीवोजी मुहता ने नगजी भलकट ने कहा—‘भाई साहब ! भोक्षणजी स्वामी कहते थे कि धान मिट्टी के समान लगे सब अल्प ज्ञान और यावज्जीवन का अनशन कर देना चाहिए ।’ आज मेरी भी वैसी स्थिति हो रही है, लेकिन मैं तो अनशन नहीं कर सकता । इस तरह कहते-कहते उसी रात्रि को उन्होंने आयुष्य पूर्ण कर दिया ।

(भिक्षु दृष्टान्त १२१)

२८३. ‘सोहवा’ ग्रामवासी दामोजी ने पाली के स्थानक में जाकर स्थान

बानी माधुको के साथ चर्चा की। उसमें बितने ही प्रश्नों के जवाब तो उन्होंने दिए और बितने ही प्रश्नों के जवाब वे नहीं दे सके। स्वामीजी के पास में जाकर उन्होंने इस बात की चर्चा की तब स्वामीजी बोले—‘दामासाह ! बोरी धूभी (भील-भील) धुन) और दो तीर मेकर सपाम करने में बिजय प्राप्त बं मे हो सक्ती है ? तीरों का खनफा (चमड़े आदि का पैसा) पीठ में बंधे होने में मुझ में बिजय प्राप्त हो सक्ती है।’

स्वामी के साथ चर्चा करने में पढ़ने वालों का जवाब अच्छी तरह सीख लेना चाहिए। बिना ज्ञानकारी के चर्चा नहीं करनी चाहिए।

(मिक्कु दुष्टान् १२४)

२८८. एक अंधा आदमी आंध की उमंग न होने के कारण जंगल में हथेर-उधर भटक रहा था। दूरछा पंगु व्यक्ति नहीं चल सकने के कारण बैठा था। दोनों बहुत दुःख का अनुभव कर रहे थे। सयोगवा अंधा पंगु के पास पहुंचा। परस्पर बातचीत हुई। पंगु बोला—‘मैं चल नहीं सकता।’ अंधे ने कहा—‘मैं देख नहीं सकता।’ पंगु ने कहा—‘तुम मुझे जगहों पर बिठा सो, मैं मार्ग बताता जाऊंगा और तुम चलने आना।’ इस प्रकार दोनों समझौता कर सहजान अपने गांव पहुंच गये।

स्वामीजी ने कहा—‘अंधे और पंगु की तरह व्यक्ति को मोक्ष मार्ग में पहुंचने के लिए ज्ञान और क्रिया की अपेक्षा रहती है।’

२८९. कुछ महात्मियों की मान्यता है कि शत्रुजय, गिरतार, अष्टावद, समेत शिखर, आशु, ये पांच तीर्थ हैं। वही अनेक माधु अनशन कर यात्रा के बलमान प्राप्त कर मोक्ष पहुंचे अतः वह स्थान बदनीय है। वहां यात्रा करने से तथा वहां के द्रव्य कुओं के स्वच्छ पानी द्वारा स्नान करने से आत्म शुद्धि-परक धर्म होता है।

स्वामीजी ने इसका समाधान करते हुए कहा—‘अगर शत्रुजय आदि क्षेत्रों में गिरा होने से वह स्थान बदनीय होता है तो ४५ लाख योजन प्रमाण अक्षाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र) भी बदनीय होना चाहिए। क्योंकि ऐसा कोई स्थान नहीं कि जिस स्थान में सिद्ध न हुये हों। वास्तव में जील रूप तीर्थ, ज्ञान-दर्शन चारित्र्य-तप और सयम रूप यात्रा तथा जिनभाषित धर्म रूप द्रव्यकृद् एव शुभ ध्यान, योग व लेश्या रूप सलिल है। इनके द्वारा ही आत्मा की शुद्धि होती है। भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन अध्ययन १२ और ज्ञाता मूल अध्ययन ५ आदि अनेक स्थलों में ऐसा प्रतिपादन किया है।’

१. मिलियां आंधो ने पागलों दोष, मुझे नगर पोहता भोय।

ज्यु ज्ञान क्रिया नों सयोग धाय, तो जीव मुगल माहे जाय ॥

(उपदेश की चौपई-सात्त्विक डा० ३ गा०)

स्वामीजी ने इस सबध में शत्रुंजय विषयक गीतिका (थड़ा की चौई डा० २०) में विस्तृत प्रकाश डाला है।

२८६ एक व्यापारी की प्रामाणिकता और मिसन-सारिता के कारण ज्ञान-पास के गाँवों में अच्छी धाक जमी हुई थी। छोटे-बड़े सभी उसकी दुकान पर आते। सबको एक दाम और एक भाव से एक जैसा भास दिया जाता। उन्हीं के पड़ोस में एक दुकानदार रहता था। बेईमानी के कारण उसका समूचा व्यापार घोट हो गया। उसका स्वभाव बड़ा ईर्ष्यालु था। वह सेठ की दुकान पर इतनी भीड़ देखकर खूब जलता था। आखिर उसे एक उपाय सूझा।

एक दिन वह नगा होकर पागल की तरह नाचने लगा। तमाशा देखने के लिए लोग इकट्ठे हो गये। भीड़ को देखकर सेठ बहुत खुश हुआ।

स्वामीजी ने उक्त दृष्टान्त का हार्दिक मतलाते हुए कहा—‘इसी तरह साधुओं के व्याख्यान में परिपक्व देखकर विपक्षी लोग अप्रसन्न होते हैं और कदाग्रह के द्वारा मनुष्यों को इकट्ठा करके खुशी मनाते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त २१२)

२८७ अपनी महिमा बढ़ाने के लिए जो कपट से बोलते हैं, उनकी पहचान के लिए स्वामीजी ने कहा—‘किमी ने बेला—दो दिन का तप किया। वह अपने बेले की प्रसिद्धि के लिए उपवास वाले की प्रशंसा करता है—‘तुमको धन्य है जो तुमने गर्मी की कठोर ऋतु में उपवास किया है।’ तब उपवास करने वाला कहता है—‘धन्य तो तुमको है जो तुमने बेले का तप किया है, मैंने तो उपवास ही किया है।’ इस तरह छल पूर्वक अपने बेले की प्रसिद्धि करता है वह यश का आकांक्षी और अभिमानी कहलाता है।’

(भिक्षु दृष्टान्त २४१)

२८८. स्वामीजी ने कहा—‘वैराग्यवान सत पुरुषों की वैराग्य भरी बाणी सुनने में हृदय में वैराग्य भावना जागृत होती है, अन्यथा नहीं। जिस तरह कमूरा स्वयं गलना है तब वस्त्र पर रंग चढ़ता है, पर स्वयं न गलने से कमूरा की गाँठ बांधे तो भी रंग नहीं चढ़ता।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२४)

२८९. (क) एक बार स्वामीजी सिरियारी से विहार करने सगे तब सामग्री भण्डारी स्वामीजी के चरणों में पगड़ी रखकर बोले—‘स्वामीनाथ! आज तो विहार न करें।’ स्वामीजी ने कहा—‘आज तो यहाँ रहने हैं पर आगे कभी इस प्रकार की विनयी मन करना।’

गुरु के चरणों में उबिन विनयी भी धावक को अवसर देखकर करनी चाहिए।

(भिक्षु दृष्टान्त ८१)

(घ) एक बार स्वामीजी 'आगरिया' से बिहार करने लगे तब भाईयो ने वहाँ ठहरने के लिए बहुत आग्रह किया, लेकिन स्वामीजी ने उनकी बात नहीं मानकर बिहार कर दिया। गांव के बाहर कुछ दूर तक गये तब भारीमालजी स्वामी ने कहा—'आज बिनती स्वीकार न करने से लोग बहुत नाराज हो गये।' स्वामी बोले—'चलो, आज तो वापस चलो, पर आगे कभी भी इस प्रकार की प्रार्थना मन करना।'।

(भिक्षु दृष्टान्त ८५)

२६०. स्वामीजी ने सूखे पत्ते की तरह ज़िन्दगी की अस्थिरता बतलाते हुए समझदार व्यक्ति को शीघ्रातिशीघ्र धर्म-क्रिया करने के लिए प्रेरित किया तथा जीवन की नश्वरता के लिए 'उपदेश चौ० गणधर सिंघावणी' ढाल १ में २३ उदाहरण दिये हैं—

- | | |
|----------------------------------|---------------------------|
| १. वृक्ष का सूखा पत्ता | १२. नारी की प्रीति |
| २. शप के अग्र भाग का जल त्रिन्दु | १३. तूफान की अग्नि का ताप |
| ३. स्वप्न की माया | १४. उष्णकाल का मेघ |
| ४. मंदिर की छवजा | १५. कन्या रूप धन |
| ५. पानी में बतासा | १६. पतंग का रंग |
| ६. बाज़ीगर का तमाशा | १७. आँख का फुरकना |
| ७. नदी का वेग | १८. इन्द्र-छवज |
| ८. बादल की छाया | १९. हाथी के कान |
| ९. जुआरी का धन | २०. सध्या का रंग |
| १०. कापुरुष का वचन | २१. पानी का बुदबुदा |
| ११. अविनीत को दी गई शिक्षा | २२. झालर की झकार |

२३. बिजली का प्रकाश।

२६१. एक वणिक् के धो और तम्बाकू इन दो ही वस्तुओं का व्यापार था। धो तो आसपास के गांवों से ही काफी आ जाता था, किन्तु तम्बाकू बाहर से मगानी होती थी, इसलिए कभी-कभी धो और तम्बाकू के भाव समान हो जाते थे। व्यवसाय में प्रामाणिकता रखने से उसकी शहर में प्रतिष्ठा थी।

उसके एक भोला-भाला लड़का था। एक दिन सेठ को किसी कार्यवश बाहर जाना पड़ा। उसने अपने बेटे को दुकान पर बिठा दिया और उसे धो और तम्बाकू

१ वृक्ष तर्णो ज्यु पाको पानहो. ते पड़तां काय न लागे वार रे।

ज्यू टूटे आउछो मरतां मिनख मो रे, जब कोई न सकै राखणहार ॥

दील मत करज्यो चतुरा धर्म मो रे ॥

(उपदेश चौ० वैराग्य री ढाल १ पा० १)

सात्यं यह है कि समझदार व्यक्तियों को सौविक एवं लोकोत्तर उपकार को अलग-अलग समझना चाहिए।

२६२. सौविक उपकार तथा आध्यात्मिक उपकार पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—'किमी व्यक्ति को सर्प खा गया। मन्त्रवादी ने 'शाड़ा' देकर उसको रसा की तब वह उसके पैरों में गिरकर बोला—'इतने दिन तो माँ बाप ने मुझे जीवनदान दिया और आज से आपने। उनके माता-पिता बोले—'आपने हमें पुत्र दिया। वहन बोली—'आपने मुझे भाई दिया। पत्नी ने प्रसन्न होकर कहा—'आपने मुझे अमर मुहाग दिया। सब सगे-अम्बन्धी खुश होकर बोले—'आपने बहुत काम किया, किमी को साथ रुपये दे उससे भी यह उपकार बड़ा है, लेकिन सांसारिक उपकार ही है।'।

जंगल में किमी व्यक्ति के सर्प ने डक लगा दिया। अकरमात् साधु आ गये। वह बोला—'मुझे साँप ने काट लिया इसलिए आप शाड़ा देकर मुझे बचाइये।' साधु बोले—'हम शादा जानते हैं पर देने की हमारे विधि (मर्यादा) नहीं है।' वह बोला—'मुझे कोई दवा बताओ?' साधु ने कहा—'हम औषध जानते तो हैं पर बता नहीं सकते।' तब वह जोश में आकर बोला—'क्या केवल मुह को बांध कर ही फिरने हो या कुछ करामात है?' साधु बोले—'हमारे पास एक ऐसी करामात है कि जो व्यक्ति हमारी बात को मान लेता है उसे जन्म-जन्मान्तर में साथ खाता ही नहीं। वह बोला—'वही बताओ।' साधुओं ने कहा—'सागरी (अर्वाधि सहित) अनशन करो, जैसे इस उपद्रव से बच जाओ तो ठीक करना चार प्रकार का आहार नहीं करूया।

इस प्रकार उसे सागरी अनशन करवा कर नमस्कार महामय सिखाया, चार शरण दिलाये और उसके भाव चढ़ाये, जिससे वह आनुष्य पूर्ण करके स्वर्ग में गया एवं मोक्षगामी हुआ। यह आध्यात्मिक उपकार है।

(भिक्षु दृष्टान्त १२६)

२६३. एक साहूकार के दो स्त्रिया थी। एक धर्म-परायण और दूसरी धर्म से अनभिज्ञ। पहली ने कर्म बध का हेतु समझ कर रोने का त्याग कर दिया। समयानुसार उसका पति विदेश में मृत्यु को प्राप्त हो गया। समाचार सुनकर पहली ने तो विधि का योग समझकर समता धार ली और दूसरी ने बहुत जोरो से बिलापात करना प्रारम्भ कर दिया। सोम-लुण्ठिया बहा पर इकट्ठे हुए। वे सभी रोने वाली की सराहना करते—'यह धन्य है सच्ची पतिव्रता है और जो नहीं रोती है उसकी निन्दा करते—यह तो पापिनी है, पति को मारना ही चाहती थी, इसलिए इसके आँसू तक नहीं आये।'।

स्वामीजी ने कहा—'साधु तो न रोने वाली की धर्मता व समता की सराहना करेंगे न कि रोने वाली के मोह एवं दुर्बलता की, क्योंकि द्रष्ट वस्तु का वियोग

होने पर रोता आत्म-ध्यान है ।

इस दृष्टान्त से मोक्ष एवं संसार के मार्ग को असंग्रस्यत समझना चाहिए ।

(भित्तु दृष्टान्त १३०)

२६४. एक नगर में चोरो का बड़ा आलेख रहा करता था । राजा ने जन-धन की सुरक्षा के लिए इनाम घोषित करके चोरों को पकड़वाया । इस चोर राजा के सामने लाकर पड़े गये थे । राजा ने उन्हें धिक्कार देकर फाँसी का हुनम दे दिया । एक छतवान सेठ ने दयासे होकर राजा से उन चोरों को प्रायश्चित्त देने की प्रार्थना की । राजा ने कहा — 'ये बड़े दुष्ट हैं । इन्हें जीवित छोड़ना देश के लिए खतरा मोल लेना है ।'

सेठ—'महाराज ! एक-एक के पाँव तो रुपये सीजिए पर इन्हें मुक्त कर दीजिए । यदि इस को नहीं तो नौ को ही छोड़ दीजिए ।'

राजा ने स्वीकार नहीं किया । आखिर सेठ के अति आग्रह से राजा ने पाँव तो रुपये लेकर एक चोर को छोड़ दिया ।

नगर के लोग सेठ की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'धन्य है सेठजी को, जिन्होंने एक बंदी को छुड़ाकर बड़ा उपकार किया है ।' वह चोर भी बहुत धूम हुआ और बोला—'सेठ साहब ने मुझे जीवनदान देकर बड़ा उपकार किया है, मैं इसे जिन्दगी भर नहीं भूल सकूँगा ।'

चोर अपने घर गया । उन सौबो चोरों के घर वालों को सब हकीकत कही । वे द्वेष से आग-बबूला हो गये । वह चोर अन्य सुटेरों को साथ लेकर उसी नगर में आया । दरवाजे पर सूचना-पत्र लगा दिया कि साहूकार तथा उसके सम्बन्धी जनो के अतिरिक्त शहर के निम्नाणवे मनुष्यों को मारकर ती चोरी का बदला लिया जायेगा । लोगों ने जब यह खबर सुनी तो उनका कलेजा धक्-धक् करने लग गया, होश उड़ गये । तस्कर-दल हत्या पर हत्या करने लगा । किसी का बेटा, किसी का भाई और किसी का बाप मार दिया गया । नगर में हाहाकार मच गया । लोग सेठ को गालियाँ देने लगे, उसके घर पर रदन मचाते हुए कहने लगे—'हाम रे पापी ! तुम्हारे पाम में धन ज्यादा था तो कुछ में डाल दिया होता । अगर तू एक चोर को न बचाता तो इतने मनुष्य क्यों मारे जाते और क्यों सैकड़ों नर-मारियों को आसूँ बहाने पड़ते ।'

सबकी दुष्कार से सेठ क्षुब्ध हो गया और शहर को छोड़कर एक दूसरे गाँव में जाकर रहन लगा । दुःखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

शामोजी ने सारांश की भाषा में कहा—'सांसारिक उपकार इस प्रकार का है । जिस सेठ की लोग एक दिन प्रशंसा करते थे, वे ही बाद में उसकी निन्दा करने लग गये । मोक्ष के उपकार में किसी प्रकार का खतरा नहीं है ।'

(भित्तु दृष्टान्त १४०)

२६५ किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—‘असंख्य जीवों के पोषण करने में आप पाप कहते हैं उसका क्या दृष्टिकोण है?’ स्वामीजी ने कहा—‘एक साहूकार रुपयों को नीची कमर में बांधकर जा रहा था। रास्ते में धीरे उसके पीछे पड़ गया। साहूकार तो आगे और धीरे उसके पीछे दौड़ा जा रहा था। दौड़ते-दौड़ते आकस्मिक टोकर लगने से धीरे नीचे गिर पड़ा और आगे चलने में असमर्थ हो गया। उस समय धीरे को किसी ने अफीम धिनाकर तथा पानी पिताकर स्वस्थ कर दिया तो वह अफीम धिलाने वाला साहूकार का शत्रु बन गया, क्योंकि उसने साहूकार के बैरी को सहयोग दिया।

इस प्रकार छद्म प्रकार के जीवों का बंध करने वालों का पोषण करने से वह छद्मकाय के जीवों का बैरी बन जाता है क्योंकि वह छद्मकाय की हिंसा करने वाले को सहयोग देता है।

(भिवखु दृष्टान्त १३८)

२६६ एक किसान ने खेती की। फल अच्छी निपजी और सफुल खेती पक गई। उस समय खेत के मालिक के पैर में ‘बाला’ (नेहरुवा नामक रोग व इसका कोड़ा) निकल गया जिसके कारण वह धान्य नहीं काट सका। किसी व्यक्ति ने उसे औषध देकर स्वस्थ कर दिया और उसने अच्छी तरह फल को काट लिया इससे सहयोग देने वाला भी खेती काटने में जो हिंसा हुई उसका भागी बन गया क्योंकि उसने किसान को सहायता दी।

इसी तरह जो अध्यात्मिक प्राणी हैं उसको शारीरिक सुख-सुविधा देने से धर्म कैसे हो सकता है।

(भिवखु दृष्टान्त १३९)

२६७ सत्तार में दया-दया तो सभी पुकारते हैं पर यथार्थ स्वरूप समझकर पालन करने से ही आत्मव्यथा होता है। स्वामीजी ने लौकिक और अध्यात्मिक दया का पार्यंक्य बतनाते हुए कहा है—

दया दया सहु को कहे, ते दया धर्म छँठीक।

दया ओलख नें पालमी, त्यागें मुगन नजीक ॥

(अनुकम्पा री चौपई डा० ८ दो० १)

गाय भेस आक धोहरनो, ए प्यारुई दूध।

तिम अनुकम्पा जाणजो, रासे मन में मूछ ॥

आक दूध पीघा यका, जुदा करे जीवि काय।

ज्यू सावज्ज अनुकपा किया, पाप कर्म बघाय ॥

भोनेइ मत भूलजो, अनुकपा रे नाम।

बीजो अतरंग पारखा, ज्यू सीझें आत्म काम ॥

(अनुकम्पा री चौपई डा० १ दो० २, ३,

२६८. स्वामीजी ने निम्न पद्य में वास्तविक दया का निरूपण किया है—
 जीव जीवें ते दया नहीं, मरें ते हो हिंसा मत जाण।
 मारण वाला मैं हिंसा कहो, नहीं मारे होते तो दया गुण खोण ॥

(अनुकम्पा की चौलाई का० ५ गा० ११)

२६९. शुद्ध दया के 'जैन सिद्धान्त दीपिका' में तीन साधन बताये हैं—
 १. समुपदेण २. विपाक-(कर्म-फल) चिन्तन ३. प्रत्याख्यान।

३००. (क) भगवान् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के खचेरे भाई थे। एक दिन अरिष्टनेमि धूमते-धूमते श्रीकृष्ण की आपुधशांता की ओर आ निकले। वहाँ जा कर उन्होंने श्रीकृष्ण का पाञ्चजन्य नामक शब्द बजाया तो द्वारिका का उठी। श्रीकृष्ण बलभद्र आदि दीड़े दीड़े वहाँ पहुँचे। वहाँ अरिष्टनेमि को देखकर सब शांत हो गये। श्रीकृष्ण की दृष्टि में वे अतुल बली और अजेय हो गए। अतएव श्रीकृष्ण ने उनका विवाह करना चाहा किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। आखिर बहुत लम्बी चर्चा होने के बाद अनिश्चित होते हुए भी उन्हें विवाह सबी अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। यूँव सत्रयज्ञ के साथ उनकी वर-प्राप्ति महाराज अप्रमेय की नगरी मधुरा की ओर चल पड़ी। राजकुमारी राजीमती के साथ उनका विवाह होना निश्चित हुआ था जो महाराज अप्रमेय की पुरी थी। नगरी के बासपात बाडो में बंधे हुए भूक-पशुओं की कुरण कराह और बिजरे में बरी बने व्याकुल पशियों की बहबहाहट ने राजकुमार का मुकुमार हृदय भीषण था। सहसा राजकुमार ने सारथि से पूछा—'यह इतना कुरण-वन्दन क्यों हो रहा है? ये इतने पशु-पक्षी बाडो और बिजरो में क्यों भरे गये हैं? इसका क्या कारण है?' सारथि बोला—'प्रभो! यह सब आपके लिए है। यह वर-प्राप्तियों के लिए भोजन-मासमी है।' यह सुनते ही राजकुमार सहम उठा और बोला—'मेरे लिए इतना व्यर्थ! इतना अरपाचार! मैं ऐसा विवाह कभी नहीं कर सका। जिनमें मेरे लिए इतने अवोध प्राणियों का वध हो, यह मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा।'।

इस प्रकार बिचार कर राजकुमार विवाह के लिए इन्कार हो गये और जलान रथ चर की ओर मोड़ लिया।

(उत्तराख्यपन अध्यायन २२ के आधार से)

भगवान् अरिष्टनेमि ने जो उक्त अनुकम्पा की वह आत्म-मुक्तिरूप होने से पारमात्मिक है।

१. यह बड़ा कारण है, हितमित्रिनि बन्धु प्रिया।

न मे एव तु निरनेन, परमोके अधिगर्ह ॥

(उत्तराख्यपन अ० २२ गा० ११)

(ख) चम्पा नगरी में माकन्दी सार्यवाह के जिनपाल और जिनरक्ष दो पुत्र थे। उन दोनों भाइयों ने प्यारह बार लवण-समुद्र की यात्रा की थी और अपने व्यापार से बहुत सारा धन एकत्रित किया था। बारहवों बार वे फिर लवण-समुद्र की यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए। माता-पिता ने निषेध किया पर उन्होंने वह नही माना और यात्रा के लिए चल पड़े। जब जहाज समुद्र के बीच पहुँचा तो बड़े जोर का तूफान आया। समुद्र की उत्तुंग सहरी से टकराकर जहाज नष्ट-भ्रष्ट हो गया। टूटा हुआ एक काष्ठ-खंड डूबते हुए दोनों भाइयों के हाथ लगा। उस पर बैठकर दोनों भाई सहज गति से तैरते हुए रत्नद्वीप नामक स्थल पर जा पहुँचे। उस द्वीप की स्वामिनी का नाम रमणादेवी था। उसने उन दोनों को देखा और उन्हें अपने आश्रय में ले लिया। तब से वे दोनों भाई उस कामातुर देवी के साथ भोग-विलास करते हुए वहीं रहने लगे।

एक दिन लवण-समुद्र के अधिष्ठापक मुख्यत नामक देव की आज्ञा से वह रमणादेवी लवण-समुद्र की सफाई करने के लिए गई। जाते समय उन दोनों भाइयों को उसने कहा—'दक्षिण दिशा के वन-खण्ड को छोड़कर और किसी भी दिशा के वन-खण्ड में भ्रमण कर सकते हो।' पीछे से दोनों भाइयों ने इच्छानुसार भ्रमण किया। सहसा मन में आया, दक्षिण दिशा के लिए देवी ने निषेध क्यों किया? वहाँ अवश्य कोई रहस्य है। हमें चलकर देखना चाहिए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, सैकड़ों मनुष्यों की हड्डियों के ढेर लगे हुए हैं और एक जीवित पुरुष शूली में पिरोया पड़ा है। यह स्थिति देखकर वे बहुत घबराये और उस मरणासन्न पुरुष से कुछ जानना चाहा। उसने कहा—'जहाज के टूट जाने से मैं यहाँ आ पहुँचा था। मैं माकन्दी नगरी का रहने वाला घोड़ों का व्यापारी हूँ। बहुत दिनों तक यह देवी मेरे साथ काम-भोग भोगती रही। मेरे द्वारा एक छोटा-सा अपराध हो जाने पर उसने यह दण्ड मुझको दिया है। तुम दोनों की भी किसी दिन यही स्थिति होने वाली है। पहले भी इसने कितने लोगों को मारा है, ये हड्डियों के ढेर स्वयं बता रहे हैं।' यह सुनकर दोनों भाई बहुत भयभीत हुए और वहाँ से भाग निकलने का उपाय उसने पूछने लगे। उसने बताया—'पूर्व दिशा के वन-खण्ड में शैलक नामक एक यक्ष रहता है। उसकी आराधना करने से वह तुम्हें इस देवी के प्रपंच से छुड़ा सकता है।' दोनों भाई पूर्व दिशा के वन-खण्ड में आये और उन्होंने शैलक यक्ष की आराधना की। प्रसन्न भूदा में यक्ष प्रकट हुआ और कहने लगा—'मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छित स्थान पर पहुँचा दूँगा, किन्तु वह देवी मार्ग में ही आकर तुम्हारे से अनुनय-विनय करेगी और अपने हाव-भाव से तुम्हें मोहित क पाहेगी। यदि तुम मन से भी उसकी ओर विचलित हुए तो मैं तुम्हें बीच ही छोड़ दूँगा।' दोनों भाइयों ने कहा—'हम ऐसा नहीं होने देंगे। किसी भी प्रकार हमें ले चलिए।' यक्ष ने घोड़े का रूप बनाया और दोनों भाइयों को अ

पीठ पर बैठ जाने को कहा। दोनों भाई पीठ पर बैठे और मोक्ष पत्रन वेग में आकाश मार्ग में उड़ने लगा। देरी आने स्थान पर लौरी और दोनों भाइयों को नहीं देखा तो उगे बहुत शोक हुआ। उगने आगे दय-मयवगी जान में सम्मान यह पता लगा त्रिस्तिकी शक्ति यश की पीठ पर बैठ कर दोनों भाई आकाश मार्ग में जा रहे हैं। यह सम्मान यश पदुरी और उन्हें मोहित करने के लिए अनेक हावभाव दिखाने लगी। आगे तिरहु की अगस्त्य देवता अभिषेक करने लगी। त्रिनयाम दृढ़ रहा, त्रिगुणित नहीं हुआ। त्रिनरस को उगरी अभ्यर्चना पर अनुकम्पा आई और यह रागपूर्वक उगरी और देखने लगा। यश ने उगे त्रिगुणित हुआ समझकर पीठ में नीचे गिरा दिया। भीचे गिरने हुए त्रिनरस को देरी ने ग्रहण में गिरो लिया और उगने दृढ़ दृढ़ कर दिये। त्रिनयाम गुरुणा सम्मानगरी में पहुँचा। अपने माता-पिता से मिला। कुछ समय तक सामारिक गुण भोग कर उगने दीक्षा ग्रहण की। आयु शेष कर सोयमें देवलोके में पहुँचा। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

(ज्ञाना गूढ अध्ययन ६ के आधार में)

त्रिनरसिन ने रचनादेवी पर जो अनुकम्पा की वह मोक्षपरक होने में सावध है।

२०१ दया का स्वरूप समझने के लिए रसामोत्री ने तीन दृष्टान्त दिये—

(क) एक माद्वैतवरी की दुकान में साधु टहरे हुए थे। रात को चोर आये। ताने लोहकर धन की धैलियाँ लेकर चले गये। इनमें से साधुओं की नींद खुल गई, उन्होंने चोरो को उपदेश दिया, चोरो की बुराई बतलाई, समझ कर चोरी का परित्याग कर दिया।

गुबह होते ही सेठ दुकान पर आया। एक बार तो वह दृश्य देखकर बबराया फिर चोरी द्वारा सारी स्थिति जानने पर पूरा न समझा और साधुओं के चरणों में झुककर उनका गुणगान करने लगा।

यहाँ दो कार्य हुए—‘एक तो चोरो ने चोरी छोड़ी और दूसरा सेठ का धन बचा। पहला धर्म है और दूसरा अनुसांगिक फल। साधुओं ने चोरो की चोरी छुड़ाने के लिए उपदेश दिया पर धन बचाने की भावना न साधुओं की थी और न चोरो की’—।’

(ख) कसाई बकरो को लेकर बघ-भूमि की ओर जा रहा था। रास्ते में उसे मुनि मिल गये। उन्होंने हिंसा का दुष्परिणाम बतलाकर उसे समझाया। वह धर्म को समझ गया और उसने उसी समय आजीवन बकरो को मारने का त्याग कर दिया।

यह दूसरा दृष्टान्त है इसमें भी दो कार्य हुए —‘एक तो कसाई हिंसा से बचा और दूसरा उसके साथ-साथ बकरो के प्राण बच गये। इनमें पहला धर्म और

दूसरा उमरा प्रासंगिक पत्र है। मुनियों का प्रपाम हिमा लुप्तवाने के लिए पा पर वरों के विषय में न मुनियों का विगन था और न बगई का।

चोर चोरी के पाप में बने और बगई बरों की हिमा में। यही उनकी आत्ममुक्ति हुई वह नि सन्देह धर्म है पर उनके साध-साध धन और बरों बने, उन्हें यदि धर्म के साध में जोड़ दिया जाये तो तीसरे दृष्टान्त पर ध्यान देना होगा।

(ग) रात्रि के समय एक दूकान में बैठे बैठे साधु स्वाध्याय कर रहे थे। सामने में तीन व्यक्ति निबने, जो वेश्या के पास जा रहे थे। साधुओं ने उन्हें सम्बोधित कर पूछा तो उन्होंने गुरुविर होने हुए भी अपनी कुरी आसन को मुनियों के सम्मुख साफ-साफ बरों में रख दी। मुनि ने व्यभिचार का भयकर दोष धननाते हुए उन्हें सशकारी बनने की प्रेरणा दी। उनका दिम मूला से भर गया और उन्होंने उम जपन्य कृति को निमोत्रि दे दी।

जब बहुत देर तक वे नहीं आये तब वेश्या उनके पास आई और आकुल-आकुल होकर बोली—‘तुम लोग जल्दी चलो, नहीं तो मैं कुए में गिरकर आत्म-हत्या कर लूगी।’ वे बोले—‘बहन ! हमने पर-स्त्री गमन का परित्याग कर दिया है इसलिए हम तुम्हारे पास नहीं आयेगे। तुमको भी हमारा यही कहना कि तुम भी मुनियों के समान इस निरुद्ध पाप को छोड़ दो, लेकिन वह नहीं मानी और कुए में गिरकर मर गई।’

यह तीसरा दृष्टान्त है यहाँ पर भी दो बातें हुई—‘एक तो साधु के उपदेश से व्यभिचारियों का व्यभिचार छूटा और दूसरी उनके कारण वह वेश्या कुए में गिरकर मर गई।’

अब हमें यह मोचना है कि यदि चोरी-रयाग के प्रसंग में बचने वाले बरों ने साधुओं को धर्म हुआ माना जाये तो व्यभिचार त्याग के प्रसंग में वेश्या के मरने के कारण साधुओं को पाप हुआ भी मानना पड़ेगा।

(मित्रमु दृष्टान्त १४८)

उन सदर्म में आचार्य मिश्र द्वारा रचित पद्य—

चोर हिसक ने कुमीलिया, यारे लाई हो दीघो साधो उपदेश।
 रथानें सावग्न रा निरवद-विद्या, एहको छे हो जिन दया धर्म रेत ॥
 ग्यान दर्शन चारित तीनू सगों, साधो कीघो हो जिन थी उपहार।
 ते तो तिरण तारण हुआ तेहना, उतारया हो त्यागें समार थी पार।
 ए तो चोर तीनू समझया बका, धन रहयो हो धणी में कुसले खेम।
 ईहसक तीनू प्रतिबोधिया, जीव बजिया हो कीघो मारण रो नेम ॥
 संभ आदरियो तेहनी, स्त्री हो पढी कूआ माहें जाय।
 यारो पाप धर्म नही साध नें, रहया मूआ हो तीनू इविरत माय ॥

घन रो घणी राजी हवो घन रह्यो, जीव बचिया हो ते पिण हरपत पाय ।
 साधु तिरण तारण नहीं तेहना, नारी नै पिण हो नहीं कबीई आप ॥
 कोई मूढ़ मिथ्याति हम कहै, जीव बचिया हो घन रह्यो ते घमं ।
 तो उण री धडा रे लेखें, अस्तरी हो मूई तिण रा सागै कमं ॥
 नोब सावादिक विरख नो, किण ही कीघो हो वाकण रो नेम ।
 इविरन घटी तिण जीव नी, विरख उभो हो तिण रो घमं केम ॥
 सर द्रह तलाव फोडण तणों, सूस लेद हो मेठया आवना कमं ।
 सर द्रह तलाव भरया रहै, तिण माहि हो नहीं जिणजी रो घमं ॥
 साडू घेवर आदि पक्वान नै, खाणा छोडया हो आतम आणी तिण ठाय ।
 बैराग बध्यों तिण जीव रें, लाडू रह्या हो तिण रो घमं न पाय ॥
 दव देवो गाम जनामवों, इत्यादिक हो सावज्ज कार्य अनेक ।
 ए सर्व छोडावै समझाय नै, सगला री हो विघ जाणों तुमे एक ॥

(अनुकम्पा री चोपई का० ५ गा० ५ से १० तथा १२ से १५)

३०२ पुन दया का मर्म भयमाने के लिए स्वामीजी द्वारा दिये गये साठ दृष्टान्त—

(१) भैंस—नाडे (छोटी तलाई) में जा रही है जिसमें मेड़क, मछनियां, फूलन, सट, फुहारे आदि अनेक प्रस स्यावर जीव हैं ।

(२) बकरे—पुराने घात के दिगने पर जा रहे हैं जिसमें सटें, घुन आदि जीव निमग्न रहे हैं ।

(३) बंस—जमींद (मूली गाजर आदि) से भरे हुए गांठे की तरफ गमन कर रहा है ।

(४) गाय—कच्चे जल से भरे मटके पर आकर खड़ी हो गई ।

(५) पक्षी—घात से भीगी हुई अकबुरड़ी पर किलबिल करते हुए जन्तुओं को धुंलने के लिए दफट्टे हो रहे हैं ।

(६) बिस्फी—झूठे पर झपट मचा रही है ।

(७) मस्जिदा—गुरु, बीनी आदि मोटे द्रव्यों पर बैठी मस्जिदों की बड़ी मस्जिदा पकट रही है ।

इन्में यदि झूठे पर झपटनी हुई बिस्फी को दूर करने में धर्म हो तो भय आदि को हटाने में धर्म होना चाहिए पर अज्ञ अमंदा भी प्राणी की प्राण रक्षा में अनयम का पोषण, अनययोग आदि होता है वहां कभी भी धर्म नहीं हो सकता । साधु कभी बीबी के प्रति समता धार रखने है अन हिंसी को भी बच हो ऐसा कार्य नहीं कर सकते ।

इन सब में स्वामीजी द्वारा निमित्त पद्य—

नाही बचियो छै बेदक मःछर्या, माहे नीमन कुमन रो गुरहो । मस्जिद ७

यह बोला—'बीड़ी को बीड़ी जानना जान है।' स्वामीजी—बीड़ी को बीड़ी भ्रष्टना सम्भव है या बीड़ी सम्भव है? वह व्यक्ति—बीड़ी को बीड़ी भ्रष्टना सम्भव है। स्वामीजी—'बिभी ने बीड़ी मारने का त्याग किया वह दया है या बीड़ी रही वह दया है?' वह व्यक्ति—बीड़ी रही वह दया है। स्वामीजी—बीड़ी वायु में उड़ गई तो क्या दया उड़ गई? जब उसने मोक्ष-विचार कर कहा—बीड़ी को मारने का त्याग किया वह दया है पर बीड़ी रही वह दया नहीं है। स्वामीजी—'यन् दया का करना चाहिए या बीड़ी का?' वह व्यक्ति—'यन् दया का करना चाहिए।' जो व्यक्ति तटस्थता में विनम्र करता है वह तन्त्र को मनन लेता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १८)

३०५. पीपल में अन्य मत्प्रदाय के अनुयायी आचार्य 'मालत्री' को चर्चा के प्रसंग में स्वामीजी ने पूछा—'छहकाय के जीवों को मारने में क्या दुष्सा?' वे बोले—'पाप हुआ।' स्वामी ने पुनः पूछा—'मिटाने में क्या दुष्सा?' उन्होंने कहा—'पाप ही हुआ।' स्वामीजी ने भारीमालत्री स्वामी को संबोधित करते कहा—'तुम एक पत्र में लिख लो—मालत्री पानी पिलाने में पाप करते हैं।' वह मुनते ही मालत्री खींच कर बोले—'मैंने पानी पीने में पाप कर कहा था।' स्वामीजी बोले—'पानी छहकाय में आया या नहीं?' वे बोले—'है-है-है पर लिखना मत, लिखना मत, लिखना मत।' ऐसा कहते हुए उठकर चले गये।

(भिक्षु दृष्टान्त २००)

३०६. किसी ने कहा जैनागमों में कहा है—'मायु को जीवों को रखना (रखा करनी) चाहिए।' स्वामीजी बोले—'वह ठीक है, उसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार जीव है उन्हें उसी प्रकार रखना पर किसी को दुःख नहीं देना।'

(भिक्षु दृष्टान्त १५०)

३०७. कुछ लोगों की मान्यता है कि आग बुझाने में अल्प पाप और बहुत निर्जरा होती है। लेकिन आचार्य भिक्षु की यह मान्यता नहीं है। वे कहते हैं कि अगर आग बुझाने में अल्प पाप और बहुत निर्जरा होती तो—१. सिंह जो मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी आदि को मारता है। २. कुमाई जो प्रतिदिन पाच मी भैंस मारता है। ३. साँप जो ऊदरों को खाता है। ४. मनुष्य—जो पिता की सुख मनुष्य के पीछे बैठे, ग्राम, नगर आदि जलाता है। ५. सेनाधिकारी—जो ग्राम, नगरवामी प्राणियों को मारता है। उस समय कोई व्यक्ति उन मारने वाले विहा-दिक प्राणियों को मार देता है तो उसे भी अल्प पाप और बहुत निर्जरा होती चाहिए जो सम्भव नहीं है। यदि उन प्राणियों को मारने में अल्प पाप और बहुत निर्जरा नहीं है तो आग बुझाने में भी नहीं है क्योंकि एक कार्य में पुण्य पाप दो

नही हो सकते ।

(भिक्षु दण्डवत् प्रणाम डा० २० गा० १ से १३ के आधार में)

१०८. बिभी ने कहा—‘एवेन्द्रिय को मार कर पंचेन्द्रिय का पोषण करने में धर्म होता है ।’ स्वामीजी ने कहा—‘एक धर्मात्मा ने मुहुरास अठोछा छीनकर एक कण्ठ्य को दे दिया, क्या उसमें धर्म है ?’ अथवा बिभी का ‘गोरा’ (धान आदि का कोरा) अन्नदानी में कर जोलों को भुटा दिया तो क्या उसमें धर्म है ?’ वह बोला—‘इसमें तो धर्म नहीं, क्योंकि उसने पार्श्व को इच्छा बिना देना किया है ।’ तब स्वामीजी बोले—‘एवेन्द्रिय ने कहा कहा था कि हमारे प्राण मृतकर हमारे जीवों का पोषण करना ?’ पोषण करने का तो एवेन्द्रिय जीवों की जारी सद्यो है इसलिए धर्म नहीं होता ।

(भिक्षु दण्डवत् २६४)

निर्वन् जीवों को पारस्परिक प्रणियों के पोषण करने की बात व्यावहारिक दृष्टि में भी दर्शावत् है फिर जो उस कार्य में धर्म ब्रह्माना है वह उन गरीब जीवों का मृत्यु होता है । ऐसा स्वामीजी का अभिमत है ।

१०९. कुछ धर्मात्माओं का कहना है कि हिमा के बिना धर्म नहीं होता, इस पर वे उदाहरण देते हुए कहते हैं—‘दो थावक थे । उनमें एक ने अग्निबाण के आरम्भ-समारम्भ का त्याग कर दिया और एक ने त्याग नहीं किया । दोनों में एक-एक पैसे के चने छरीदे । जिनने नियम नहीं किया था उगने लो चनों को लेक कर भुगड़े कर मिने और जिनने नियम किया था वह बोरे चनों को धाने लगा । इनमें से एक साधु भान ता के पारलों के दिन बड़ी मिठा के लिए आ गया । जिनने आरम्भ-समारम्भ का त्याग नहीं किया था उसने लो भुगड़े बहराकर तीर्थंकर गोत्र का उपासने कर लिया और जिनने त्याग किया था वह देखता ही रह गया । इसलिए हिमा के द्वारा ही धर्म होता है लेकिन बिना हिमा के धर्म नहीं होता ।’

स्वामीजी ने उनकी कुतर्क का समाधान करते हुए कहा—‘दो थावक थे, उनमें एक ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया । एक ने कुशीन का त्याग न करके शादी की । कालान्तर में उनके बीच बेटे हुए । बड़े होने पर धर्म के मर्म को समझे, वैराग्य भावना जाग उठी । माता-पिता ने प्रसन्न होकर दो बेटों को दीक्षा दिलाई, भावों की उत्कर्षणा से उन्होंने तीर्थंकर गोत्र का उपासने कर लिया ।’

स्वामी ने उन्हें आश्वासन करते हुए कहा—‘अगर तुम लोग हिमा में धर्म कहने

१. रांका ने मार धींगा में पोछा, ए लो बाग दीने धणी मेरी ।

त्रिज माहि दुष्टी धर्म बनावै, ते रांक जीवां रा उट्वा बेरी ॥

(पद्मावत चउपई डा० ७ गा० ४)

हो तो कुशील में भी तुम्हें धर्म कहना पड़ेगा, जो सिद्धान्त के विपक्ष है। क्योंकि तुम्हारे दृष्टिकोण में हिमा के बिना धर्म नहीं होता तो कुशील के बिना भी धर्म नहीं हो सकेगा।' ये वाक्य जवाब देने में अगम्य होकर चले गये।

हिमा और दया की करणी (प्रिया) में धूप और छायाकी तरह भिन्नता है। जिस प्रकार पूर्व और पश्चिम का मार्ग नहीं मिल सकता उसी तरह दया में हिमा और हिमा में दया का मिलान नहीं हो सकता।

(भिक्षु दृष्टान्त २१०)

२१०. कई व्यक्ति कहते हैं कि एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा पंचेन्द्रिय जीवों की पुण्यवानी अधिक है, इसलिए एकेन्द्रिय जीवों को मारकर पंचेन्द्रिय जीवों को बचा लिया जाये तो जगमें धर्म होता है।

स्वामीजी ने उन व्यक्तियों से पूछा—'एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय की तथा द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय प्राणी को थोड़ी-सी सटें थिंसाकर बचा लेता है तो जगें धर्म हुआ या पाप?'

ये दृग्का कोई भी जवाब नहीं दे सके क्योंकि द्वीन्द्रिय को मारकर पंचेन्द्रिय को बचाने में भी धर्म नहीं मानते थे। स्वामीजी बोले—'जैसे द्वीन्द्रिय को मारकर पंचेन्द्रिय को बचाने में धर्म नहीं होता वैसे एकेन्द्रिय को मारकर पंचेन्द्रिय को बचाने में भी धर्म नहीं हो सकता।'

(भिक्षु दृष्टान्त २४८)

भगवान् ने अहिमा में धर्म कहा है न कि हिमा में। यदि हिमा में धर्म हो तो जल-मन्यन में भी धर्म निश्चय सकता है, पर ऐसा कभी नहीं हो सकता।'

२११. स्वामीजी ने कहा—'धर्म दया में है।' एक हिमा-धर्मी बोला—'दया-दया बया कर रहे हो, दया रोह पड़ी अकचुरही पर सोट रही है।' स्वामीजी बोले—'दया की तो जैनागमों में माता के तुल्य कहा गया है। जिस प्रकार सेठ के मरने के बाद घर में सेठानी रही। अगर जगका बेठा सपूत है तो वह अपनी माता की सेवा-गुधूरा करता है और सपूत बेठा है तो उम्दा-मीठा बोलता है माता को मरिया देता है। उसी प्रकार दया धर्म बनाने वाले भगवान् तो मोक्ष में पथार

१. हिमा की करणी में दया नहीं छै, दया की करणी में हिमा नाही छै।
दया में हिमा की करणी छै ग्यारी, गुनू तावहो में छाही छै॥
ओर बस में भेज हूँ गिन, दया में मही हिमा की भेजो छै।
गुनू हूँ नै गिणन को मारन, गिन बिध खायेँ मेजो छै॥

(अनुकम्पा की चौदई शा० २ भा० ७०, ७१)

२. जिस मारन की नीव दया पर, छोड़ी हूँ तो पाई छै।
जो हिमा मरूँ धर्म हूँ तो, जल मरिया की आवै छै॥

गये। पीछे जो मृत्यु कावक तथा साधु होने हैं वे तो दया माता का यत्न करते हैं और तुम्हारे जैसे कपूत प्रकट हुए हैं जो दया को राँड-राँड कहकर पुकारते हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त २६७)

३१२. सं० १८५५ में पानी में एक बार हेमराजजी स्वामी 'टीकमजी' से चर्चा कर रहे थे। एक माहेश्वरी भाई ने बीच में ही प्रश्न पूछा—'कालबेलिए को चार पैसे देकर सर्प को छुड़ाया उसमें क्या हुआ?' टीकमजी बोले—'अच्छा धर्म हुआ।' माहेश्वरी—'वह सर्प सोपा चूहे के बिल में चला गया तो?' टीकमजी—'बिल में चूहा होना ही नहीं तो?'

यह बात हेमराजजी स्वामी ने स्वामीजी को कही तब स्वामीजी बोले—'किसी ने काग को मारने के लिए गोली चलाई। इतने में काग वहाँ से उड़ गया और आयुष्य सम्बा होने से वह बच गया पर गोली चलाने वाला तो पाप का भागी बन गया। ज्यों साँप को छुड़ाने पर वह साँप ऊदरे के बिल में चला गया, अन्दर चूहा न मिला तो उसकी निश्मत्त धी पर सर्प को छुड़ाने वाला तो हिंसा का भागी बन चुका।'

भोमराजजी स्वामी ने हेमराजजी स्वामी से कहा—'ऐसा जवाब देना चाहिए।'

(भिक्षु दृष्टान्त २७३)

३१३. किमी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'कोई हिंसक व्यक्ति बकरा मार रहा था। उसे बकरे की बचाने में क्या हुआ?' स्वामीजी बोले—'ज्ञान के द्वारा समझाकर हिंसा छुड़ाने में धर्म होता है। स्वामीजी ने दो अनुत्तियाँ ऊँची करके कहा—'एक तो राजपूत मारने वाला और एक बकरा मारने वाला दोनों में भव समुद्र में डूबने वाला और नरक निगोद में भ्रमण करने वाला कौन है?' वह बोला—'मारने वाला राजपूत।' तब स्वामीजी ने कहा—'साधु राजपूत को समझाकर उसे हिंसा से बचाते हैं वह मोक्ष का मार्ग है पर बकरे के जीने की वाछा नहीं करते। जिस प्रकार एक साहूकार के दो बेटे हैं उनमें से एक तो दूसरों से ऋण लेता है और एक उतारता है। पिता जो ऋण लेता है उसे मना करता है और जो उतारता है उसे मना नहीं करता। वैसे ही साधु तो पिता के समान है और राजपूत व बकरा दोनों पुत्र के समान हैं। बताओ इन दोनों में कर्म रूप ऋण कौन लेता है और कौन कर्म रूप ऋण को उतारता है? उचित उत्तर यही होगा कि राजपूत तो कर्म रूप कर्जा लेता है और बकरा अगले बंधे हुए कर्म रूप ऋण चुकाता है।'

साधु राजपूत को मना करते हैं—'तुम कर्म रूप कर्जा तिर पर मत करो। इससे ससार में भ्रमण करना पड़ेगा।' इस तरह उसे समझाकर हिंसा से

३१७ एक बृद्ध भिक्षुक जागना कर रहा था। किसी ने अनुकम्पा जाकर उसे एक सेर जल दे दिया। उगाँवा ने लेकर एक बहिन को कहा—'एक घमाँवा न मुझे पने तो दे दिन पर दान नहीं होने से उन्हें पचाना नहीं पड़ता अब आप अनुकम्पा करके उन बनों को रिगवा दीजिए।' तब दूसरी बहिन ने कहा भाव में उन बनों को पीनकर उन दे दिया। आगे जाकर उसी फिर एक बहिन ने कहा—'एक घमाँवा पुण्य न मुझे पने दिन, दूसरी बहिन ने पीनकर आटा बना दिया, अब तुम मुझे रोटी बना दो' तब तीसरी बहिन ने अनुकम्पा करके आटे में नमक-पानी मिलाकर रोटियाँ बना दी। वह रोटी खाकर तुष्ट हो गया। थोड़ी देर बाद अत्यधिक थकावत लगी तब एक घर में जाकर कहा—'अब है कोई घमाँवा जो मुझे पानी पिनाये?' तब चौथी बहिन ने दवा भाव से उसे कच्चा पानी पिलाया।

एक व्यक्ति ने भिक्षु को एक सेर जल दे दिया। दूसरी बहिन ने पीनकर आटा बना दिया। तीसरी ने रोटियाँ पका दी और चौथी ने पानी मिलाया। अब सावध दान में धर्म एवं पुण्य कहते हैं उनसे पूछना चाहिए कि अधिक धर्म किसको हुआ?

सावधान यह है कि जहाँ आरम्भ-अमारम्भ होता है वहाँ धर्म नहीं होता।

(भिक्षु दृष्टान्त ४५)

३१८. 'रीया' ग्राम में अमरसिंहजी की सम्प्रदाय के तिलोकचन्द्रजी नामक साधु ने भीषणजी स्वामी से पूछा—शास्त्रों में भगवान् ने अन्न, पुष्प, पात्र, पुष्प आदि नव प्रकार का पुण्य कहा है। पर अन्न पात्र आदि नहीं कहा तथा परदेशी राजा की दानशाला कही है पर पापशाला नहीं कहा, लेकिन तुमने तो दान दान को ही उठा दिया।

स्वामीजी बोले—'किसी व्यक्ति ने किसी को एक सेर बाजरी दी उसमें है तो पुण्य ही?' तिलोकजी बोले—'हम क्या जानें, हम तो जो पुस्तकों में लिखा है वह पढ़ते हैं। हमने आगरे का पानी पिया है, दिल्ली का पानी पिया है, इस तरह अनगँल बोलने लग गये।' स्वामीजी ने कहा—'दिल्ली, आगरे में तो गर्म भी कटती है, ऐसी फिजूल बातों में क्या है, अगर शास्त्रों का अध्ययन किया हो तो बताओ?' इतनी देर में सूँका गच्छानुयायी 'रतनजी' नामक जती आ गये। उन्होंने यह बात सुनकर तिलोकजी को डाटते हुए कहा—'हम शिथिल हो गये फिर भी एक धान के दाने में चार पर्याय और चार प्राण मानते हैं तो उसको खिलाने में पुण्य कैसे होगा? तुम मुहपटी बाधकर घराब क्यों हुए? तुम्हारी कितनी विरुद्ध मायता है कि एकेन्द्रिय खिलाने में पुण्य कह रहे हो? इस तरह कहने से वे वहाँ से चले गये।'।

सकता है, केवल जोश में आवर बोलने से नहीं।

(भिक्षु दृष्टान्त २४)

३१६. किसी ने कहा—‘अनुकम्पा साकर किसी को कच्चा पानी पिलाने में पुण्य होता है क्योंकि उसकी उस प्राणी के प्राण बचाने की भावना है पर पानी के जीवों को मारने की भावना नहीं है।’

स्वामीजी ने कहा—‘एक व्यक्ति हाथ में कटारी लेकर किसी को मारने लगा।’ तब वह बोला—‘तुम मुझे मत मारो।’ उस आदमी ने कहा—‘मेरी तुमको मारने की भावना नहीं है, मैं तो कटारी की परीक्षा करता हूँ और देखता हूँ कि धार कौसी है।’ वह बोला—‘रहने दो तुम्हारी परीक्षा, मेरी तो जिन्दगी जा रही है।’ इस तरह जो जीव छिलाने में भावना अच्छी बताते हैं उनकी धृष्टा ही विपरीत है।

(भिक्षु दृष्टान्त १०१)

३२०. कोई सावय दान में पुण्य कहते हैं, पर समझदार आदमी अपनी बुद्धि से उसकी परीक्षा करता है और उनसे पूछता है कि आप असयमी को देने में पुण्य तो कहते हैं लेकिन स्वयं असयमी को देते हैं या नहीं? वे कहते हैं—‘हमको तो देने में दोष लगता है क्योंकि हमारे कल्प में नहीं है।’ इसके लिए स्वामीजी ने दृष्टान्त दिया—‘एक पुरुष को किसी ने कहा—‘तुम्हारे वायु का रोग है इसलिए तुम सानघे मज्जिल वाले भकान की छत से नीचे गिरो तो तुम्हारा वायु का रोग मिट जायेगा। वह पुरुष बोला—‘भाई साहब! यह वायु की बीमारी तो आपके ही है, इसलिए पहले आप गिरकर बताइये। वह बोला—‘मेरे तो हाथ-पैर टूट जाएंगे अतः तुम ही गिरो। उस पुरुष ने तपाक से कहा—‘जब ऊपर से गिरने पर आपके हाथ-पैर टूट जाते हैं क्या मेरे हाथ-पैर नहीं टूटेंगे।’

इस प्रकार वे कहते हैं कि असयमी को देने से हमारी साधुता चली जाती है अतः तुम दो, तुम्हें पुण्य होगा पर चतुर मनुष्य तो उसे स्वीकार नहीं करता हुआ तत्काल उसका उत्तर दे देता है कि जिस दान से आपकी साधुता चली जाती है तो उस दान से हमें पुण्य कैसे होगा?

(भिक्षु दृष्टान्त ७२)

३२१. दो व्यक्तियों के परस्पर में बहुत समय से वैर-विरोध चल रहा था। कालान्तर से दोनों के आपस में प्रेम हो गया। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने घर पर भोजन के लिए ले गया। भोजन परोसकर वह कहता है—‘भाई साहब! भोजन कीजिए।’ तब वह दूसरा व्यक्ति कहता है—‘आप भी साथ में भोजन के लिए बैठिये।’ वह शामिल बैठना चाहता नहीं, तब उसने कहा—‘तुम्हारे बिना यह भोजन करने का त्याग है।’ उसने यह अन्दाज लगा लिया कि यदि भोजन में जहर मिलाया हुआ है तब तो वह शामिल भोजन करेगा नहीं और यदि जहर

मरी है तो मरण में घबरा कर नहीं ।

इस प्रकार जो भगवती शक्ति का पूजा करने के और इच्छा से लगी इस शक्ति को प्राप्त कर लिया तो मरण का भय भगवती शक्ति से लगी भी भयानक नहीं होता । भगवती शक्ति में पूजा हो तो मरण के डर से और भी पूजा को करने लगे वही शक्ति का लोभ हो जाता है ।

(भिरगु पुराण १३)

३२२ 'देवता में जो लोग 'विद्या' स्वाधीनी कर पाए हैं आकर भगवत को पूजे लगे—'तुम वादत को देवता पाइ करने हो और देवता को देवता भी जान कहते हो इतिहास पावन और देवता को एक समान कर दिया' । स्वाधीनी को को 'ओशी' । तुम्हारी शक्ति को कह रहा है कि लोग भगवती विद्या तो बगल हुआ' यह बताया—'याग हुआ । स्वाधीनी ने तुम्हारा पूजा' 'एक कर्म पानी का सीध देवता को विद्या में क्या हुआ' । वह भी है इत्यादि भी पाया हुआ । स्वाधीनी ने मुकुटा हुआ कहा—'ओशी' । जब तो तुम्हारे बगलानुसार तुम्हारी माँ और देवता को एक समान में मिला । ओशी शक्ति होकर बगल में घबराते लोग उपहास में कहना लग—'देखा ओशी ने माँ और देवता को बराबर कर दिया ।

(भिरगु पुराण २३)

प्रत्येक पदार्थ का अवस्था एक भिन्न भिन्न दृष्टि से परम्परा चाहिए । एक ही दृष्टिकोण से मनुष्य सत्य का नहीं पहचान सकता ।

३२३. स. १८५६ माघद्वारा में एक दादूधारी साधु स्वाधीनी के वन में आकर ध्यायमान सुनता और बहुत प्रसन्न होता । ध्यायमान सुनते सुनते एक दिन उसने स्वाधीनी से कहा—'आप अपनी शक्तियों को कहिये कि वे मुझे खिला पिला कर सुख शान्ति पहुँचाये । स्वाधीनी ने कहा—'आपको तो कहकर तुम्हें भोजन करवाये चाहे अपन पानी में निवास कर आहार पानी में एक ही बात है । अगर गृहस्थ को कहना हो तो स्वयं भिन्ना में लाकर तुम्हें रोटी दे सकते हैं ।

दादूधारी साधु ने फिर कहा—'बया आपकी मान्यता देने हुए को : गह करनी है ?' स्वाधीनी बोले—'देने हुए को मना करो चाहे किसी में छीन तो ही बात है । साधु अपने विधि विधानानुसार ही कार्य कर सकता है ।

(भिरगु पुराण २४)

३२४. किसी व्यक्ति ने स्वाधीनी से कहा—'तुम्हारे शक्ति किसी को दाद नहीं देती क्योंकि आपकी मान्यता ही ऐसी है ।' स्वाधीनी बोले—'एक शहर में चार बजाओ की चार बूझों थी । उनमें तीन बजाओ तो किसी सखी व्यक्ति के विवाह में चले गये । पीछे से कपड़े आदि के अनेक ग्राहक आते तब यह बहार

होना बड़ा मुन होना या सागन ?' कह बोला—'मुन ही होना क्योंकि उगना अधिक काम दिवने में पायदा होना ।'

स्वामीजी ने कहा—'मुन लोग कहते हो कि भोजनारी के धावन दान नहीं देने पर तो मेने बाते जिने पाचक है वे सभी मुहारे द्वार पर आवेंगे और मुहारे कपनानुसार वह धर्म मुहारे ही होना । इसलिए मुन सागन करो होते हो और साधुओं की निम्ना क्यों करने हो ?' बावन प्रचार देने में अगम्य होकर वह आगे गान पर चला गया ।

(भिक्षु दृष्टान्त १४६)

१२५. कई अगर साधुदाय के साधु गुरुद्वय लोगों से करते हैं—'बिगो को भजन आदि देने में पुण्य तथा मित्र (पुण्य पात्र) होना है ।' गुरुद्वय बोले—'आपने आहार अधिक हो गया तो भोजन देने है या नहीं ?' वे बोले—'हम तो नहीं दे सकते क्योंकि वह हमारी विधि (कर्म) के अनुकूल नहीं है अगर हम दें तो हमारी साधुता गड़बड़ होनी है । लेकिन मुन लोग भूखों को देने हो उगने मुहारे पुण्य तथा मित्र होना ।'

इसका स्पष्टीकरण करने के लिए स्वामीजी ने कहा—'जिग तरह जिग हवा में हाथी उड़ जाते हैं उग हवा में कई की पूछी क्यों नहीं उड़ सकती ? अर्थात् भक्षण ही उठेगी । उगी तरह साधु में दान व्यक्ति को दान देने में साधु के मन का भय होता है तो गुरुद्वय को पाप (दोष) क्यों नहीं समझा ?'

(भिक्षु दृष्टान्त २०६)

१२६. कई लोग आरोप लगाते हुए स्वामीजी से बोले—'आपने तो दया दान ही उठा दिया है, आप जमी माग्यता तो हमने वहीं नहीं देखी ।' स्वामीजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—'आप लोग भी वर्षापण के दिनों में 'आस्था' (दान के कर्म) तथा आटा आदि बिगो को नहीं देने । वर्षापण तो विशेष रूप में धर्म करने के दिन है, अगर इनमें दान देना धर्म हो तो दान देना क्यों नहीं किया ? यह परम्परा तो बहुत पहल में चली आ रही है । उस समय हम तो थे ही नहीं, फिर वर्षापण में नहीं देने की स्थापना किसने की ?'

(भिक्षु दृष्टान्त १४५)

१२७. कुछ साधु कहते हैं कि बिगो को रुपये देने से उगकी भगता उतरती (पड़ती) है, इसलिए उगे धर्म होता है । इस पर स्वामीजी ने कहा—'किसी के पास २० बीघा तथा २० हल की जमीन लेनी करने के लिए थी । उसने १० बीघा तथा १० हल की जमीन श्राद्धों को दे दी । इसमें भी उगकी माग्यनानुसार उगकी यह भगता भी उतर गई और उसे धर्म भी कहना चाहिए ।'

अन्न में रही हुई वस्तु का त्याग करने से ही भगता मिलती है पर असत्यता को देने से नहीं ।

(भिक्षु दृष्टान्त २२१)

दोनु भाषा साधु नहीं बोली, गुन छै अथवा गुन नहीं रे।

ते बग्न्यों बरगमान बान आभी, ये मोष देखों मन माहो रे॥

(बिरल रविरल की ओरई हा० ३ गा० १७ मे २१)

३१०. एक बार स्वामीजी 'कादरणा' पधारे। बड़ा मुनि-प्रतिष्ठा करवाने के लिए छतिविजयजी भी आये। एक दिन रातने में दोनों का मिलन हो गया। छतिविजयजी ने स्वामीजी से पूछा—गुम्हारा क्या नाम है? स्वामीजी ने कहा—मरा नाम भीषण है।

छतिविजयजी—क्या वे तेरापकी भीषणजी गुम्हीं हो?

स्वामीजी—हां मैं वही हूं।

छतिविजयजी—गुम्हारे साथ निशेपों के विषय में चर्चा करनी है। स्वामीजी ने चर्चा प्रारम्भ करने हुए पूछा—निशेप कितने हैं?

छतिविजयजी—निशेप चार हैं—१. नाम २. स्थापना ३. द्रव्य ४. भाव।

स्वामीजी—चारों में वन्दनीय कौन-सा है?

छतिविजयजी—चारों निशेप ही वन्दनीय हैं।

स्वामीजी—एक भाव निशेप को तो हम भी वन्दना करते हैं। शेष तीन निशेप वन्दनीय हैं। उनमें प्रथम नाम निशेप है। जैसे किसी कुम्हार का नाम भगवान् दे दिया तो क्या आप उसे वन्दना करते हैं या नहीं।

छतिविजयजी—उसे क्या वन्दना भी जाए, जबकि उसमें प्रभु के गुण ही नहीं हैं।

स्वामीजी—गुणयुक्त नाम को तो हम भी वन्दना करते हैं।

स्वामीजी—दुमरा निशेप स्थापना है यदि रत्नों में बनी हुई भगवान् की प्रतिमा हो तो आप उसे वन्दना करते हैं या नहीं।

छतिविजयजी—हां, रत्नों की, सोने की, चांदी की एक सर्व धातु की प्रतिमा हो तो भी हम उसे वन्दना करते हैं।

स्वामीजी—परपर की हो तो?

छतिविजयजी—हां वन्दना करते हैं।

स्वामीजी—उगो प्रकार गोबर की बनाई हुई हो तो?

यह सुनते ही छतिविजयजी गुस्से में आकर बोले—गुम्हारे साथ निशेपों की चर्चा नहीं करनी है क्योंकि तुम प्रभु की आशातन्त्रा करते हो जिसे हम सहन नहीं कर सकते। इस प्रकार कहकर वे अपने स्थान पर चले गये और स्वामीजी भी अपने स्थान पर आ गये।

कुछ दिन पश्चात् लोगों के कहने से छतिविजयजी पुनः चर्चा करने के लिए आये। उनके साथ अनेक भाई भी थे। लोगों द्वारा निवेदन करने पर स्वामीजी भी मुनि भारमलजी को साथ लेकर पधारे। निकटस्थ एक दूकान में चर्चा प्रारम्भ

हुई।

स्वामीजी बोले—आज आचारांग आदि ११ अंगों के गद्य में चर्चा करनी है। आचारांग गूत्र अध्ययन ४ उद्देश २ में इस प्रकार कहा है—सबसे पाषाण से भूया गंधे जीवा संधे सत्ता हुनवा, एतय वि जागह् मन्विष्य दोमो अगाव्य-वयणमेव। अर्थात् सर्व प्राण भूत जीव और सत्त्व का वध करना चाहिए क्योंकि धर्म के लिए प्राणियों की हिंसा करने में दोष नहीं है, यह अनार्य पुरुषों की वाणी है।

प्रतिविजयजी ने कहा—‘यह पाठ गत है।’ उन्होंने आने शिष्य द्वारा दूसरी प्रति मगाकर देखा तो उगमे भी वही पाठ निकला तब वे स्तब्ध से हो गये।

स्वामीजी बोले—इसे पढ़िये। पर वे परिपक्व में नहीं पहुँचे। जवान बन्द हो गई और हाथ कापने लगे। स्वामीजी फिर बोले कि आपके हाथ क्यों काप रहे हैं। हाथ धुजने के चार कारणों—१ कपन यामु २. मोघ ३. चर्चा में पराजित ४ मिथुन (कामोत्तेजना) में कौन-सा कारण है? यह मुन्ने ही वे आवेश में आकर बोले—‘साले की सिर छेद डालू।’ स्वामीजी—गसतार में जिनकी भी स्त्रियाँ हैं वे मेरे मा-बहिन के समान हैं तुम्हारे घर में यदि स्त्री हो तो वह मेरी बहन है। इस दृष्टि में आपने मुझे साला कहा तो ठीक है। अगर आपके घर में स्त्री न हो और मुझे साला कहा तो आपका कपन मिथ्या ठहरता है। फिर मन बाइए कि जब आप साधु बने थे तब आपने छह प्रकार के जीवों के हनन करने का राग किया था। उस समय क्या मुझे मारने का आभार (छूट) रखा था?

प्रतिविजयजी इसका कुछ उत्तर न दे सके और मन में अत्यधिक चिन्त हुए। उस समय उनके थायक गोनीराम चौधरी ने कहा—‘आप अनर्गल वपन बहकर हमें क्यों लज्जित कर रहे हैं, यहाँ से चलिए। इस प्रकार हाथ पकड़ कर वह उन्हें ले गया।

उसके बाद स्वामीजी और प्रतिविजयजी पीपाड़ गये पर वहाँ नहीं हुई। पीपाड़क पश्चात् पानी पढ़े तब एक दिन गहज ही चर्चा-प्रगन भन पड़ा।

स्वामीजी—यदि मिथा में भूल में मिथी के बच्चे नमक आ जाए तो बग करना चाहिए।

प्रतिविजयजी—मायु के पात्र में भ्रा गया अतः उसे खा लेना चाहिए।

स्वामीजी—तब तो कोई व्यक्ति गुड के बच्चे में अर्धम और मिथी के बच्चे में मित्रकारी बहुरा दे तो उसे भी खा लेना चाहिए। प्रतिविजयजी जवाब देने में असमर्थ हो गये।

(भिन्नु दृष्टान्त ६१)

३३१. स्वामीजी श्रीगुरुजी के शिष्य राजेश्वरी ने अपने गुरुजी से कहा—

‘मैं भीषणजी से चर्चा करना चाहता हूँ।’ गुमानजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—
‘उनमें चर्चा करते तो हमें भी भय लगना है, तब तू क्या चर्चा करेगा।’

रत्नजी ने भय लगने का कारण पूछा तो गुमानजी बोले—‘भीषणजी चर्चा का जो उत्तर देते हैं पीछे उसकी जोड़ कर देते हैं ग्राम-ग्राम में उसे भाइयों को दिया भी देते हैं। जिससे वे सब चर्चा के लिए खड़े हो जाते हैं तब चर्चा हमारे लिए महवी पड़ जाती है, इसलिए हम सकोच करते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त ६५)

३३२. पुर में स्वामीजी से चर्चा करते हुए गुलाब ऋषि जब निरुत्तर हो गये तो कहने लगे—‘मुझे निरुत्तर करने से कुछ नहीं होता। हमारे गोगुन्दा के थावक तूंगिया नगरी के थावको जैसे हैं, अकवरी मोहर के समान हैं, उनसे चर्चा करोगे तब तुम्हें पता चलेगा।’ स्वामीजी बोले—‘अवसर आने पर उनसे भी चर्चा करने का विचार है।’

कुछ समय पश्चात् स्वामीजी गोगुन्दा पधारे। वहाँ के थावकों को चर्चा करके समझाया। वे तत्त्व समझकर स्वामीजी के अनुयायी हो गये।

गुलाब ऋषि ने जब यह बात सुनी तो स्वयं बड़ा आये और स्वामीजी से चर्चा करने लगे।

थावको ने स्वामीजी को रोवते हुए कहा—‘ये हमारे पहले के गुरु हैं अतः हम भी इनमें चर्चा करेंगे।’ स्वामीजी ने उनकी बात मान ली। भाइयों ने गुलाब ऋषि से ऐसी चर्चा की कि उन्हें निरुत्तर हो जाना पड़ा। आगिर क्रुद्ध होकर कहने लगे—‘गोगुन्दा के भाई तो टीकरी’ (मिट्टी) के निक्के निकलें।’

(भिक्षु दृष्टान्त ६०)

३३३. पुर में ‘मेघजी’ भाट ने स्वामीजी के माथ चर्चा प्रारम्भ की। उन्होंने कहा—‘बालवादी ऐसा बहने है—भीषणजी ने एक माथा में तो ऐसा कहा है कि—

एकलक्ष जीव ग्रामी सीता, जद आवा नहीं आवै चेटा पोता।

नरक माहे छाता भारो, पायो धनुष जमारो मन हारो॥

पर नव पदार्थ में पाच जीव बहने हैं इसलिए उनको ‘पाचलक्ष जीव ग्रामी सीता’ इस प्रकार कहना चाहिए।’ स्वामीजी बोले—‘वे बालवादी मिठों में कि-नी आत्मा बहने हैं?’ मेघजी—‘चार आत्मा बहने हैं।’ स्वामीजी—‘उन चार आत्मा को बालवादी जीव बहने हैं या अजीव।’ मेघजी—‘चार आत्मा को जीव बहने हैं।’ स्वामीजी—‘सिद्धों में बालवादी चार आत्मा बहने हैं, चारों को जीव भी बहने हैं इसलिए उनके बधनानुसार ही चोखटा जीव तो मानित हो गया।

एक सही हमारी अधिष्ठ हो गई। इस प्रकार गदगाने में वे बहुत प्रदग्ने हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त ३०)

३३४ भाग्येश्वर ने शासक गुजरगन्धी गंगा के गुरामजी के चर्चा करने-बताने आरम्भ में विचारित हो गया। गुजरगन्धी का कहना था कि शासन में फ्राड आया है। यदि शासक में चास्त्रि आया है तो हरिदासी के त्याग करने का क्या प्रयोजन? और के गुरामजी कहते थे मान। इस पर शासक चर्चा करने शुरू हो गई। इनके में अचक्षमात स्वामीजी बड़ी गंवार मने। उनसे परस्पर में तनाव पैदा एक व्यक्ति ने आकर 'गुप्त रूप में मेरे साथीगत न कर मने इसलिये' दोनों तक बाजोंट रक्त दिये। फिर स्वामीजी ने त्याग और दुरित में दोनों को समझाया। स्वामीजी ने कहा—'शासक में योग पारित नहीं इस ओशा में मान आया ही कहनी चाहिए और त्याग की ओशा से देश पारित करना चाहिए।' (भिक्षु दुष्टान्त ११)

३३५ स्वामीजी में तत्त्व-चर्चा की अद्भुत क्षमता थी। वे कठिन-मे-कठिन गुल्मी को इतनी जल्दी मुक्तमाने कि प्रसन्नकर्णों को तर्क-वितर्क का अवकाश ही नहीं रहता। विशेषी ओग तो उनके साथ चर्चा करने में सदैव सकाराने थे। तत्त्व जिज्ञासु उनके द्वारा दिये गये, समाधान में इनके संशुद्ध होने कि उन्हें कभी झूठ नहीं मकने। जब कभी कठिन चर्चा का काम पड़ेगा तब भावी पीढ़ी उन्हें याद करती रहेगी। इस विषय में कहा है—

हिंसे मोक्षों तो पार्थ नहीं रे, भीष्म मरीया साध।

करलो काम परमी चरचा तर्कों रे, निग आवेला याद॥

(मुनि वेणी० वृत्त भिक्षु चरित द्वा० ११ गा० १३)

३३६ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'आपका यह कठोर भाव (तेरापथ) कितने वर्षों तक चलेगा? स्वामीजी ने कहा—'जब तक साधु-साध्वी श्रद्धा आधार में दृढ़ रहेंगे, वस्त्र-यात्रा उपकरण आदिक की मर्यादा का उत्पन्न नहीं करेंगे, साधु के निमित्त बना हुआ स्थान, भोजन-पानी आदि नहीं लेंगे, तब तक अच्छी तरह चलेगा, ऐसा विश्वास है।' (भिक्षु दुष्टान्त ३०३)

३३७. स्वामीजी को किसी ने नम्र निवेदन किया—'गुरुवर! आप बुद्धि हैं अवस्था प्राप्त हैं, इसलिए आपको तो बैठे-बैठे ही प्रतिभमण' करना चाहिए, क्योंकि छठे-छठे प्रतिभमण करने में आपको बहुत तकलीफ पड़ती है।' स्वामीजी ने तत्काल परमाया—'अगर हम बैठे-बैठे प्रतिभमण करेंगे तो आगे आने वाले साधु सोये-सोये प्रतिभमण करेंगे, ऐसी संभावना है। हम खड़े-खड़े करते हैं तो वे कम-से-कम बैठे-बैठे ही करेंगे।' स्वामीजी के दूरदर्शितापरक

वचन सुनकर प्रश्नकर्ता का मन आह्लाद से भर गया ।

(भिक्षु दृष्टान्त २१२)

३३८. बूढ़ी में सवाईरामजी ने स्वामीजी से पूछा—‘आप व्याख्यान समाप्ति के समय भाई-बहनों से नौने क्यों लेते हैं, अर्थात् सौगंध (नियम) क्यों दिलाते हैं ? जैसे किसी सेठ ने अपनी पुत्री का विवाह किया । उस समय समग्र जाति भाइयों को भोजन कराया । जीमनवार में खर्च अधिक लगने से वह उमकी पूति के लिए सम्बन्धी बनों में नौना लेता है । वैसे आपके भी क्या कुछ कमो है जिसकी पूति के लिए आप ऐसा करते हैं ?’

स्वामीजी ने एक दृष्टान्त के द्वारा उक्त प्रश्न का समाधान करते हुए फरमाया—‘एक सेठ ने अपनी बेटी का विवाह किया । अनेक गावों के सगे-सबधी एवं जाति-परिवार को बुलाया उन्हें बहुत दिनों तक बड़े प्रेम से भाना प्रकार के मनोज्ञ पकवान खिलाये । आखिर सम्मानपूर्वक विदा देते समय उनके साथ मिठाइयों से भरी थैलिया दे दी, क्योंकि रास्ते में जब-जब भूख लगे तब-तब वे खाते जाए और क्षेम-कुशल से अपने घर पहुँच जाए । ठीक इसी प्रकार हमने भाई-बहनों को अनेक दिन वैराग्यमय व शिक्षाप्रद व्याख्यान सुनाया । भव्यजनों ने सुन-सुन कर परम आनन्द का अनुभव किया और कर्म निजंरा कर आत्मा को उज्ज्वल बनाया । अब हम विहार कर रहे हैं अतः त्याग रूप पकवानों की थैलिया देते जा रहे हैं, जिससे वे मोक्ष मार्ग में सुखपूर्वक गमन कर सकें तथा पीछे से हमारे द्वारा दिये गये उपदेशों को याद कर-कर धर्म ध्यान में लगे रहें । इस प्रकार दूसरों की कभी पूर्ण करने के लिए नीते लेते हैं ।’

सवाईरामजी तथा अन्य श्रोतागण सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ।

(भिक्षु जश रसायण ढा० ४१ दो० १ से ६)

३३९. नाथद्वारा से ‘मोटागाव’ जाने समय वाटी की घाटी, भूताने का घाट, मोड़ी आदि ग्राम बीच में आते हैं जो कभश. दस, छह और तीन मील की दूरी पर हैं । एक बार वृद्धावस्था में स्वामीजी उम रास्ते से पधार रहे थे । चलते-चलते अधिक थकावट आने से स्वामीजी ने एककर एक गाथा फरमाई—

वाटी री घाटी हो चढ़ता दोहिली, दोहिलो भूताने रो घाट ।

मोड़ी सो पग पाछा मोडे घणा, पर आगे है चारत्तीर्य रा ठाट ।

त्रिनेश्वर देवा ! बुझापो आया हो चल्नपो दोहिलो ॥

वस्तुन बुझापो में चलना कितना कठिन होता है वह स्वामीजी ने इस गाथा से प्रकट कर दिया ।

(धृतानुधृत)

३४०. स्वामीजी का अधिकांश समय सिद्धान्तों के पठन-पाठन एवं चिंतन-मनन में व्यतीत होता था । रात-दिन वे स्वाध्याय ध्यान में तन्मय रहते हुए अनु-

६. मुनि मेतमीजी (२२)
७. मुनि बंणीरामजी (२८)
८. मुनि हेमराजजी (३६)
९. मुनि राधवन्दजी (४१) आदि।

श्रावक गेरुलालजी व्यास

३४६ गेरुलालजी व्यास जोधपुर के पुष्करणा ब्राह्मण थे। व्यासजी मप्रदाय से पृथक् होकर स्वामीजी जोधपुर पधारे। वहाँ व्यासजी आदि १३ भाईयों को ममज्ञाया। ये स्वामीजी के प्रथम अनुयायी (श्रावक) बने। व्यासजी स्वामीजी के शुद्ध आचार-विचार में बहुत प्रभावित हुए। दया दान आदि मूलमूल मिशनों को उन्होंने बड़ी बारीकी से ममज्ञा और दृढ़ ध्यान से बताने लगे।

व्यासजी के जैती बनने में ब्राह्मण लोग बहुत नाराज हुए। उन्होंने व्यासजी के साथ अपना व्यवहार बदल कर दिया। पर व्यासजी की थोड़ा अड़िग घी इसविषय से विरोध से घबराये नहीं। व्यासजी का पुत्र विवाह के योग्य हो गया पर वहाँ कोई अरती पुत्री देने के लिए तैयार नहीं हुआ। आगिर उन्हें अपने पुत्र का मवध किमी दूसरे ही गाँव में करना पड़ा।

विवाह के समय पुत्री के पिता ने दहेज में मुखवस्त्रिका, पूजनी और आसन भी (सामायिक के उपकरण) दिया। उन्हें देखकर लोगों ने व्यासजी से कहा— 'सम्बन्धी ने आपके साथ मजाक किया है।' व्यासजी गंभीर चित्त करके बोले— 'मेरे सम्बन्धी बड़े धनुर हैं, उन्होंने सोचा कि व्यासजी जैन धर्म को मानने वाले हैं, मेरी सटकी उनके घर पर जायेगी तो उसे वहाँ सामायिक, पौषध आदि के लिए आवश्यक सामग्री की अनेजा रहेगी। इसलिए उन्होंने ये वस्तुएं दी हैं।' उनका यह उत्तर सुनकर परस्पर में मिटाने वाले लोग चुप हो गए।

व्यासजी तैरापथ के प्रथम श्रावक होने के साथ-साथ दूर देशों में धर्म प्रचार करने वालों में भी प्रथम थे। वे एक सेठ के यहाँ नौकरी करते थे। वे जहाँ जाते वहाँ व्यापारिक धर्मा के साथ प्रसंग देखकर धार्मिक धर्मा भी बिपा करने थे। एक बार सन् १८५१ में वे माइवी बंदर (कच्छ) गए। वहाँ स्थानिकवासी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध श्रावक टीकमजी होगी के यहाँ ठहरे। होमीजी भी धर्म-प्रिय और धर्म विज्ञानु शक्तिर थे। भोजन आदि से निवृत्त होने के पश्चात् दोनों धार्मिक धर्मा करने लगे। होमीजी को यह जानकर बहुत आश्चर्य एवं प्रमन्नता हुई कि व्यासजी भी जैन धर्म को मानने वाले हैं।

टीकम होमी ब्राह्मणों की आटा, चावल, घी आदि देकर, 'सदायन' (हमेशा भूखों और बगीचों को भोजन देने का कार्य) किया करने थे। उसी प्रसंग को लेकर

व्यासजी के माथे दान विषयक चर्चा होती । व्यासजी ने सैद्धान्तिक प्रमाण^१ के माध्यम से व्यासजी के विचार उनके सम्मुख रने । सोमजी स्वयं समझदार थे अतः व्यासजी द्वारा कही गई बात उनके हृदय में बैठ गई । उन्होंने कहा—'आपने मेरी आँखें खोल दी हैं, मैं भी आपने इसी भंडा को और आचार्य भिक्षु को गुप्त रूप में स्वीकार करता हूँ ।'

व्यासजी टीकम सोमी के हृदय में गहरी छाप छोड़कर चले आये । पीछे से वे अन्य लोगों को साथ समझाने समय गेरुवालजी का नाम आगे रखते और अपने आपको 'गेरुपपी' कहते ।

सं० १८१३ में उन्होंने मारवाड़ में आकर स्वामीजी के प्रत्यक्ष दर्शन किए एवं गुप्त धारणा स्वीकार की । वापस आकर उन्होंने अनेक परिवारों को श्रद्धालु बनाया । कच्छ प्रदेश में तेरापय का जो सर्व प्रथम प्रचार हुआ वह टीकम सोमी के द्वारा ही हुआ । साधु समुदाय के न जाने पर भी उन्होंने तेरापय एवं स्वामी भिक्षुजी के नाम को प्रख्यात कर दिया^२ ।

कुछ वर्षों के बाद टीकम सोमी के मन में अनेक लोगों की शका पड़ गई तब सं० १८१६ में वे दूसरी बार मारवाड़ में आये । शकाओं के २६ 'ओलीयें' (पन्ने) लिखकर लाये । पाली पानुमांस में स्वामीजी के दर्शन किये और चर्चा करने लगे । स्वामीजी ने २६ 'पन्नों' में लिखे गए सदेहात्मक प्रश्नों का समाधान किया । वे

१. समणोवामगस्स ण भंते ! तद्वास्व अ मज्ज-विमय-पटिहय-पच्चवधाय य व-
कम्म पानुएण वा, अफोमुएण वा, एसज्जिण वा, अणेमणिज्जेण वा अमण-
पाणि-आदमध्माइमेण पटिलाभेमाणस्म किं कज्जई ?

गोपया ! एगत्तो से पावे कम्मे कज्जई, मत्थि से काइ निज्जराकज्जई ।

(भगवती शतक ८ उद्देश ६ सूत्र २४७)

२. गेरुवालजी व्यास रे, थावक तेरा माहिलो ।

ते कच्छ देजे गयो ताम रे, टीकम नै समझावियो ॥

(भिक्षु० ज० २० दा० ५३ सो० ३)

टीकम सोमी देश कच्छ थे, तिन नै व्यास गेरुवाल मिलिया रे ।

पूज दीदार देख्यां विण डाहे, जान सुणी गुरु करिया रे ॥

(ध्या० शोभजी कृत पूज गुणी दा० १४ गा० २८)

३. टीकम सोमी आम रे, देश कच्छ मे दीपतो ।

तेपने गृणसठे ताम रे, पुज्य बने आयो प्रकट ॥

प्रकट तेह प्रजोग रे, कच्छ देशे धर्म बाधियो ।

स्वामि सर्ग सजोग रे, जीव हजारों उद्धर्या ॥

(भिक्षु० ज० २० दा० ५३ सो० ४,५)

गदगद होकर आँखों में आँसू बरसाने हुए स्वामीजी के घरनों में मुहकुर बोले—
‘भाग न होने सो न जाने मेरी क्या रति होनी ? आग तो तीव्रकर एव केवलजी
के मुन्ध है । स्वामीजी द्वारा रचित ‘चोपाईयों’ मुनकर वे बोले—‘ये तो अगमों
की निर्मुक्तिदात्री है ।’ इस प्रकार स्वामीजी के मुताबक जो वे मुनवात रिते । ओक
दिनो तक सेवा कर वापस बचन देन में गए ।

बहुत काल बाद फिर शकाशील हो गये । स्वामीजी का सम्पर्क न होने से उनो
मदेहो का निराकरण नही हो सरा । अतः में उन्होंने चौविहार मयारा रिया और
कहा—‘मेरी शका सो सीमधर स्वामी ही मिटायेगे ।’ १५ दिन के सपारे में
आशुप्य पूर्ण रिया ।

(भित्तु दृष्टान्त १८० और १९१)

मुना जाता है कि अनशन में भयंकर तृप्ता परिणत उत्पन्न होने पर भी वे
अद्विग रहते । उन्होने उस समय कहा—‘मैं तो अनशन की पार पट्टवा दूंगा पर
चौविहार अनशन पूर्ण मोच-विचार के ही करना चाहिए ।’ दूसरी बात उन्होने
कही—‘योगी की चर्चा में अधिक नही उत्तशाना चाहिए ।’

धायक शोभजी

३४७ स्वामीजी के सुप्रसिद्ध, अनन्य भक्त धायक शोभजी का जन्म केरल
(मेवाड) के कोठारी (चोरडिया) परिवार में हुआ । स्वामीजी ने स० १८१७
का सर्वप्रथम चातुर्मास केवश में किया, तब उनके पिता नेतमीजी ने परिवार
सहित स्वामीजी से सम्पूर्ण श्रद्धा स्वीकार की थी । उस समय शोभजी गर्भ में थे ।

श्रद्धालु घर में जन्म लेने से शोभजी को सहज ही धार्मिक श्रद्धा के सस्वार
प्राप्त हो गये । बड़े होने पर तत्त्व समझकर वे दृढ़ श्रावक बन गए । स्वामीजी के
प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी । वे काव्य-रस के बड़े रसिक व कुशल कवि थे । उनकी
कविता में भक्ति-रस कूट-कूट कर भरा हुआ है । उनके द्वारा रचित गीतकारिक
को पढ़कर पाठक हर्ष विभोर हो जाता है । उनके मुललित पद्य व्यक्ति को हर्ष
बना देते हैं और सुषुप्त मानस का शकशोर देते हैं ।

उनकी समग्र रचना अनुमानतः अठतीस सो पद्यो में है । स्वामीजी ने ३६
हजार लगभग गायत्री की रचना की । उनको ध्यान में रखते हुए शोभजी ने सो-
सो पद्यो के पीछे दस-दस पद्य बनाये ।

शोभजी धार्मिक तथा सांसारिक दोनों ही क्षेत्रों में निपुण थे । युवावस्था प्राप्त

१ शोभो गर्भ माहे वर्ष सतरै, जद बादल जाशा शरिया ।

जनम विरहाण थी पूज केलके, साध कई सचरिया ॥

(पूज० गुणी० डा० १४ गा० १७)

करने के बाद उनकी घर का भार सभालने के साथ केलवा ठिकाने का प्रधान बनने का उत्तरदायित्व भी प्राप्त हुआ। कई वर्षों तक उन्होंने उस दायित्व को सफलतापूर्वक निभाया। परन्तु एक बार किसी बात को लेकर तत्कालीन ठाकुर साहब से मतभेद हो गया। धीरे-धीरे मतभेद के साथ मनोभेद भी बढ़ने लगा। शोभजी ने अपने प्रतिकूल वातावरण देखकर तत्काल अपनी व्यवस्था की और परिवार सहित गुप्त रूप से केलवा को छोड़कर नाथद्वारा में बस गये।

केलवा के ठाकुर शोभजी से दृष्ट तो ये ही जब उन्हें पता लगा कि वे भाग कर नाथद्वारा जा बसे हैं तो वे और अधिक उत्तेजित हो गये। उन्होंने उसका बदला लेने के लिए नाथद्वारा के बड़े जागीरदार गुमाईजी से सम्पर्क किया और शोभजी पर कल्पित आरोप लगाकर उन्हें बन्दी बनाकर कारागार में डलवा दिया।

स्वामी श्रीखणजी उस समय आसपास के गावों में विचर रहे थे। उनके पास जब ये समाचार पहुँचे तब वे शीघ्र ही अवसर देखकर नाथद्वारा पधारे और शोभजी को दर्शन देने के लिए कारागृह में गये। स्वामीजी जब उनकी कोठरी के सम्मुख पहुँचे तो देखा कि शोभजी एकाग्र होकर ग्रा रहे हैं—

मोटो फद इण जीव रे रे, कनक कामणी दोय।

निकल सकू नहीं उलझ रह्यो रे, तिण सू दरसण पर्यो रे विछोय।

पूजजी का दरसण किण दिन होय, स्वामी सू मिलणो किण दिन होय॥

कुटब रिध सहु विचरियै रे, अत रहै सब रोय।

मगलीक दरसण पूज रो रे, सेवग दीपक सोय॥

(पूज गुणी डा० ५ गा० १,२)

इत्यादिक पद्य बोलते हुए ढाल का अन्तिम पद बोला—

दरसण श्रीजीडुवार मे रे, सेवग दीपक सोय।

भाण भलो जदे उगसी रे, शोभो चरण मुकुमल लगोय॥

(पूज गुणी डा० ५ गा० १३)

स्वामीजी क्षण भर रुककर बोले—‘शोभजी ! हम तुम्हें दर्शन देने के लिए आ गये हैं (दरसण इण विधि होय)।’

स्वामीजी के शब्द सुनते ही शोभजी ने आँखें खोली और देखा कि साक्षात् स्वामीजी ही खड़े हैं तो उनके हृदय में प्रसन्नता का सागर उमड़ पड़ा। वे भाव-विह्वल होकर दर्शन करने के लिए आगे बढ़े कि तत्काल पैरों में बड़ी हुई बेडिया (लोह शृङ्खला) तडाक से टूट गई।

जैन के संरक्षक इस घटना को देखकर स्तब्ध हो गये। उन्होंने इसे दैवी घटना माना। शोभजी के बन्धन टूट जाने की सूचना शहर में पहुँची तो सम्जन लोग प्रसन्न हुए। गुमाईजी ने जब ये समाचार सुने तब एक बार तो दुविधा में पड़

गये पर आखिर जेल में रचना उचित न समझकर उन्हें ही शोमजी को छोड़ दिया।

शोमजी जैंग श्रद्धाशील थे वैसे ही कमेंठ थे। वे जहां कहीं जाने वहां सम्पदों में आने वाले व्यक्तियों को धर्म का सम समझाते। उदयपुर के सुप्रसिद्ध वेणगी महारी को उन्होंने ही समझाया था।

शोमजी द्वारा रचित 'पूज गुणी' नामक कृति है उसमें लगभग ३० गीतिकाएँ हैं वे गीतिकाएँ अत्यंत भाव-भरी व प्रेरणादायिनी हैं कि गाने-गाते श्रद्धा के प्रति महज ही श्रद्धा-रस उमड़ पड़ता है। कई-कई ढालों में तो इतनी सुन्दर उमारा और भावाभिव्यक्ति की है कि भक्ति रस से आप्लावित भक्त का हृदय ही बोल रहा हो।

उनकी प्रमुख गीतिकाओं के कुछ आक्यंठ एवं रोचक पद्य निम्नोक्त हैं—

पूज भीखणजी रों समरण कीजै, भव दुख जावै सबे भागजी।

वामो दसै तो देवलोक माहि, पामै मुक्ति पुरी नो राव जी॥

श्री पूज्य भीखणजी रों समरण कीजै॥

भो—बहुता भीखू व्रत लीधा, ख—बहुता धिम्या रम पीतजी।

न—बहुता सावज काम निदाराया, जी—बहुता इन्द्या ने जीत जी॥

ओ समरण चित्तामनि चार आखर रों हो, तिन माही गुण छै अदाग जी।

चन्नी निधान जू ओ समरण माधै, त्वारो धीर बहो कह्यो भाग जी॥

(पूज गुणी डा० १२ गा० १ मे ३)

देवलोक धर्म्यो हो धन ठग बार मू, यम मू ठहर्यो देवन भार हो।

जु भरत क्षेत्र में भक्ति लगे, धर्म रा यम पूज आगार हो॥

भोभो अरज करै दयंग तनी, ए तो यावक केनवे महर हो।

मै तो माना गुपी पूज गुन तनी, तुम्हें सो हिम्मा में पेहर हो॥

पूज महम मुख कक बंकरे, साये एक मख रमना रदान हो।

महम आऊ सग गुण कक, तो तिन पूरा कया न जान हो॥

(पूज गुणी डा० ११ गा० ३३ मे ४१)

कर हो जीव नू भगत भीखू तनी, मिहू तनी परे तेहू मूर्ख।

बखान बानी करै सोच सबदे करी, ते मुन पाखर भोज धूर्त॥

कर हो जीव नू भगत भीखू तनी॥

पूज भीखनजी ने भेटयो साव मू, तवा तनी मरगो नू जान मोटी॥

कमै कू बाटिने मोख कू मारिदैं, छोड़्यो पाखर छैत मोटी॥

पूज भीखनजी ने देविया देवन मेवना, बमन ना पूज जू तेहू पूरै॥

मन मज्जा एछै पूज जो दवाहीना, बेज कर तीरथ ध्यान मूर्ख॥

एग महकन बोवा में देवन मारिना, जलनी एहो पून जानो॥

बाव हो दुखर मे बलमुख सोवना, सोच बदे हीछे हाथ जानो॥

बोले दयालु दुःख में डूब रहा, मोक्ष बड़े जाल अदम्य हैगा ।
 धन धन मही कोई कुछ भी मागगा, मही जान लो दुःख बनावेगा ॥
 आग जलीला में एक साहस बूझ ली, रात्रि अकाल रात्रिगत राखी ।
 अनमल आल मही आग एकपुत्र ली, आ अर्धांग की कीर्ति गत मोक्ष भाखी ॥

(गुरु दुली की वा० १६ पा० १, ८, ९, १०, ११ और ४०)

भावक विजयचन्द्रजी

१४८. विजयचन्द्रजी पटना बामी (भारवाड़) के निज ली और जालि से
 दोरवान थे । वालो उम समय भारवाड़ के बड़े बूढ़ों के मित्रा जाला दा और
 व्यापार का भी एक प्रमुख बेंगल था । वही अनेक धनिष परिचार रहने थे । पटना-
 जी उन सबमें अग्रिम स्थानी में आने वाले थे । वे धार्मिक भावना से भी अवली थे ।
 उनके अविच्छिन्न कुछ सम्भरण निम्न प्रकार है—

१. एक बार स्वामी भीषणजी वालो पछारे । वही विजयचन्द्रजी पटना लया
 उनके एक मित्र बर्धमानजी श्री भीमान थे । वे दोनों स्वामिजवाली भावक थे ।
 उन्होंने मन-ही-मन यह सबल किया कि यदि भीषणजी हमारे प्रश्नों का समुचित
 समाधान कर देंगे तो हम उनके अनुयायी बन जाएंगे ।

साप्ताहिक प्रतिबन्ध होने के कारण वे दोनों दिन में स्वामीजी के पास आने
 का साहस नहीं कर सके । रात को भी जब एक प्रहर के लगभग रात्रि व्यतीत हो
 चुदी थी तब वे स्वामीजी के पास पहुँचे । लोग व्याख्यान सुनकर अपने-अपने घर
 चले गये थे । माधु सोने की लैयारी कर रहे थे । स्वामीजी ने जब इन दोनों गसा-
 गल्लुओं को देखा तो गलों से कहा—'तुम लोग मो जाओ, मैं अभी कुछ देर इन
 लोगों के बानधीन बर्णना ।' स्वामीजी दुबान में बाजोट पर बैठ गये और वे दोनों
 सीधे खड़े हो गए । किसी तार्किक विषय पर बर्षा प्रारम्भ हुई । स्वामीजी उनके
 प्रश्नों का मुक्तिपूर्वक उत्तर देने लगे । वे दक्षिण घाह बुद्धि से सुनने लगे । बर्षा
 में रस भरमने लगा और बर्षा जाली सम्बी होती गई । तब आगल्लु दोनों ही
 भाई बैठ कर बात करने लगे । आग्रि बानधीन करने-करने प्रतिवचन का समय
 (एक मुहुर्त रात्रि अवशेष रही) हो गया तब वही बर्षा समाप्त हुई । दोनों
 धनिषों ने करबद्ध धड़े होकर गुरुधारणा स्वीकार की । स्वामीजी के घरनों में
 इनका भाव से वदन कर वे अपने-अपने घर चले गये ।

स्वामीजी ने गलों को जगाने हुए कहा—'उठो, प्रतिवचन का समय हो गया
 है ।' तब उठे और स्वामीजी को पूछने लगे—'आपको जगें कितनी देर हो गई ?'
 स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा—'पहले यह तो पूछो कि सोया ही कौन था ?'
 तब आश्चर्यचकित होकर बोले—'तो क्या सारी रात आप चर्चा ही करते रहे ।'
 स्वामीजी ने सहज भाव से कहा—'जब उरकार हो तो रात्रि जागरण भी

काष्ठदायक न होकर आनन्ददायक हो जाता है।' बाद में विजयचन्द्रजी और वर्द्धमानजी की पत्नियाँ ने भी गुह-धारणा स्वीकार की। इस प्रकार शक्ति को समझाने के लिए स्वामीजी को अथक प्रयास करना पड़ा था।

(भिरयु दृष्टान्त ३३ तथा कुछ अग अनुभूति के आधार में)

२ एक बार आगकरणजी दांती में विजयचन्द्रजी पटवा में कहा—'भीषण-जी दूसरी की तो किबाइ खोलकर रट्टी में दोप बगनाते हैं और स्वयं अमुक जगह किबाइ खोलकर 'मेरी' में टाँके थे।'

पटवाजी ने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता।' आगकरणजी अपनी बात पर बस देते हुए बोले—'विजयचन्द्र तुम मेरा विश्वास तो करो, मैं त्रिभुवन माय कह रहा हूँ।' पटवाजी ने कहा—'मुझे तुम्हारा पूरा भरोसा है कि तुम इस विषय में कभी सत्य नहीं बोलते।'

इस तरह पटवाजी ने उन्हें निःशङ्कोच जवाब दे दिया पर साधुओं से आकर पूछा तक नहीं। स्वामीजी ने जब यह घटना सुनी तो कहा—'सगता है कि विजयचन्द्रजी पटवा शायक-मम्यकरवी हैं। लोग साधुओं में अनेक दोष बगनाते हैं और उन्हें मुताते हैं किन्तु ये वापस सत्तों को पूछते ही नहीं, ऐसी धर्म और साधुओं के प्रति उनकी दुर्गतम आस्था है।'

(भिरयु दृष्टान्त १५५)

३. एक बार पटवाजी किसी कार्यवश कचहरी में गये। अनेक लोग भी उपस्थित थे। उनके सम्मुख हाकिम साहब ने पटवाजी से पूछा—'आप बतसाइए कि पति, सवेगी, बार्डम टोला और तेरापणियों में किसका मार्ग अच्छा है?'

समयज पटवाजी ने कहा—'जिनमें अधिक गुण हों, वही मार्ग अच्छा है।'

(आवक दृष्टान्त ७)

४. एक व्यक्ति ने पटवाजी से कहा—'आपने यह क्या मत (धर्म) स्वीकार किया है जो समझ में भी नहीं आ सकता कि वह अच्छा है या बुरा। हम तो हमारे स्वीकृत धर्म को ही अच्छा समझते हैं।'

पटवाजी ने उन्हें समझाते हुए कहा—'घर में सघन अघोरा है, उसे कोई आदमी सौ बार लाठी से पीटे तो भी वह मिट नहीं सकता परन्तु वहाँ एक दीपक जला दिया जाये तो वह तुरन्त नष्ट हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार हृदय में ज्ञान-रूपी दीपक जलने से मिथ्यात्वमय घोर अन्धकार दूर हटेगा सभी धर्म का मर्म समझ में आ सकेगा।'

(आवक दृष्टान्त ८)

५. पटवाजी अपना मजाक करने वाले व्यक्तियों को उसी प्रकार उत्तर देने में बड़े निपुण थे। एक बार वे सोवाचार में गये थे। वहाँ से निवृत्त होकर वापस आते समय शारीरिक शुद्धि के लिए अन्य सभी लोगों के साथ वे भी तालाब पर

स्नान करने के लिए टहरे। अन्य लोगों ने प्रायः मूर्ति-गूँजक थे। वे सभी तालाब में घुमकर स्नान करने लगे। पटवाजी एक बड़ा सोटा भरकर सूखे स्थान पर स्नान करने लगे। उन्हें सबसे पृथक् स्नान करते देखकर एक बाबूचा जाति के भाई ने कहा—‘तुम बूढ़ियों की यह क्या पद्धति है? तालाब में घुमकर अच्छी तरह से स्नान न कर केवल लोटे भर पानी से शरीर को गीला कर लेते हो। पाप का भय क्या तुम्हें ही लगता है और किसी को नहीं?’

पटवाजी ने कहा—‘तुम लोग अपने आपको कितना ही बड़ा क्यों न समझते हो पर तुम्हारी दशा तो उन लड़कियों जैसी है जो होली के दिनों में गोबर के ‘भरमोलिये’ बनाती हैं और कल्पना करती हैं कि यह मेरा खोपरा है, यह मेरा नारियल है आदि। किन्तु कल्पना मात्र से वह खोपरा और नारियल नहीं होता वह तो गोबर का गोबर ही रहता है।’

तुम लोगों ने मनुष्य का जन्म पाया पर दया धर्म के सही पहचान के बिना वास्तविक तथ्य को प्राप्त नहीं कर सकते।

(आवक दृष्टान्त ५)

६ एक दिन विजयचन्द्रजी पटवा दूकान से सीधे उठकर स्वामीजी की सेवा में सामायिक करने के लिए गये। वे प्रायः ध्याध्यान के समय दो सामायिक रिया करते थे। प्रतिदिन के क्रम से ज्यों ही उन्होंने सामायिक स्वीकार की त्यों ही उन्हें याद आया कि अभी जो आदमी पाच सौ रुपये की एक घैंली दे गया था उसे मैं दूकान के बाहर बरामदे में ही भूल आया हूँ। उन्होंने अपनी बात स्वामीजी के सम्मुख रखते हुए कहा—‘आज तो सामायिक में आध्यात्म का कारण उपस्थित हो गया है।’

स्वामीजी ने कहा—‘सामायिक में ममता भाव ही रखना चाहिए। उसकी तुलना में रुपये का कोई मूल्य नहीं।’

स्वामीजी के शब्दों से पटवाजी का आत्म-विश्राम जगा और वे चिन्तन करने लगे कि यदि तुम्हारे भोग में आने की वस्तु होगी तो बही जायेगी नहीं और यदि जाने वाली है तो रहेगी नहीं अतः तुम्हें अपने मन को सुस्थिर रखना चाहिए।

सामायिक का कालमान (४८ मिनट) पूरा हुआ कि उन्होंने सदा की तरह दूसरी सामायिक भी ग्रहण कर ली। माला-जाप तथा ध्याध्यान श्रवण में तल्लीन हो गये। दोनों सामायिक पूरी होने के पश्चात् वे स्वामीजी को बचना करके दूकान पर गये तो देखने लगे कि एक बकरा उस घैंली में मटककर बैठा हुआ है और वह ज्यों की त्यों पड़ी हुई है। पटवाजी ने घैंली को उठाकर अन्दर रख दिया।

आत्म-विश्राम तथा धार्मिक श्रद्धा से ऐसे प्रामाणिक कार्य सहज ही फलित हो जाते हैं।

(अनुभूति के आधार से)

७ पटवाजी की धार्मिक दुःखना इतनी मजबूत थी कि दूसरा कोई उन्हें प्रशंसा करने की चेष्टा करता तो वे उसके प्रभाव में गहरी आने। आश्चर्यकरा होने पर उत्तर दे देते, अन्यथा मौन धारण कर लेते।

स्वामीजी से अलग होन के पश्चात् तिलोकचन्दजी चन्द्रभाणजी एक बाग़ पाली गये। उन्होंने पटवाजी के सम्मुख बहुत सी निन्दालोक बातें कही। पटवाजी धुपचाप मुनते रहे। उन्होंने न तो किसी बात का उत्तर दिया और न छानने की किया। उस समय जो व्यक्ति उनके पास बैठे थे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने उनकी मौन से समझा कि पटवाजी चन्द्रभाणजी से सहमत हैं।

कालान्तर में जब स्वामीजी पधारें तब कुछ व्यक्तियों ने पटवाजी की बहुमत शिकायत के रूप में स्वामीजी के सामने रखी पर स्वामीजी ने पटवाजी से न तो कुछ पूछा और न कुछ कहा। उन्होंने सोचा यदि पटवाजी के मन में कोई शिकायत होगी तो वे स्वयं पूछ लेंगे। पटवाजी ने उस विषय में कोई बात नहीं कहा।

स्वामीजी ने पाली में एक महीने प्रवास किया। पटवाजी ने दर्शन-मेला व्याख्यान श्रवण आदि का पूरा-पूरा लाभ लिया। स्वामीजी जब विहार करने के लिए तैयार हुए तब एक दिन पहले उन्होंने पटवाजी से कहा—‘मैंने सुना है कि तिलोकचन्दजी, चन्द्रभाणजी ने तुम्हें बहुत सी निन्दालोक बातें कही हैं, क्या उस विषय में तुम्हें कुछ पूछना है?’

पटवाजी बोले—‘महाराज ! मैं क्या पूछूँ ? मुझे विश्वास पुरा है कि आप ऐसे आत्मार्थी हैं कि समय में जान-बूझकर कभी दोष नहीं लगाने तथा मन में वर्तमान व्यक्ति जो अनंत सिद्धों की साक्षी से किये हुए त्यागों को भी तोड़ देता है वह मुझे बोलने में कैसे सकोच करेगा।

स्वामीजी ने सतो में कहा—‘विजयचन्दजी की धर्म एवं धर्मसत्य के प्रति अग्रज श्रद्धा सबके लिए अनुकरणीय है।’

(श्रुतानुश्रुति)

८. विजयचन्दजी जितने तख्त और दुःख श्रद्धालु थे उतने ही विनम्र थे। एक बार सायकाल के समय वे सामाजिक और प्रतिप्रमण करने के लिए स्थान पर आए। वे स्वामीजी की सेवा में बैठे थे। बादलों के कारण भूयं नहीं दिखाई देने से उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना की कि अब सूर्यास्त का समय हो गया है अतः आप पानी पी लीजिए। स्वामीजी ने पानी पीकर त्याग कर दिया। थोड़ी देर बाद वादना हुआ जाने में धूप निवृत्त आई और अधिक दिन दिखाई देने लगा।

स्वामीजी ने पटवाजी को उलाहता देते हुए कहा—‘साधुओं को रात में पानी पीना नहीं रहना अतः उन्हें प्यास का परीपह सहना पड़ता है। गृहस्थ के रात में पानी पीने का त्याग न होने से प्यास लगे तब ही पानी पी लेता है अतः साधुओं को कोई बात कहनी पड़े तो पहले अच्छी तरह निगाह करके कहनी चाहिए।’

पटवाजी स्वामीजी के घरणो में झुक्कर बोले—‘महाराज ! आप तो अवसर के जानकार हैं जिससे तत्काल पानी पीकर त्याग कर दिया । मुझे मालूम नहीं पडा जिसमें मेरी भुन हो गई । मैं आपने बारम्बार क्षमायाचना करता हूँ ।

इन प्रकार विनम्र भावों में उन्होंने स्वामीजी की शिक्षा को हृदयगम किया ।

(भिवन्धु दृष्टान्त १८६)

६ विजयचन्द्रजी धर्मेनिष्ठ होने के साथ-साथ व्यवहार कुशल भी थे । छोटे दूकानदारों की कठिनाईयों को हल करना, समय समय पर उन्हें सहयोग देना वे अपना बर्तव्य मानते थे । इसलिए वे वहाँ के अग्रणी और जनप्रिय व्यापारी माने जाते थे । अपभ्रष्ट से वे जितना बचाव रखते थे उतना ही अवसर आने पर व्यय करने की क्षमता रखते थे ।

एक बार जोधपुर नरेश विजयसिंहजी ने पाली के साहूकारों में एक लाख रुपये की माग की । उस समय पाली में दो ही सबसे बड़े व्यापारी गिने जाते थे । एक पटवाजी और दूसरे एक माहेश्वरी साहूकार । राज्याधिकारी जब वहाँ पहुँचा तब पटवाजी वहाँ बाहर गये हुये थे । उसने तब माहेश्वरी सेठ के सम्मुख ही सारी बात कही । बाजार के अन्य व्यापारी भी बुला लिये गये । सेठ के मुनीम ने सुझाव दिया कि प्रत्येक दूकान में घसूल कर यह रकम इकट्ठी कर लेनी चाहिए । सेठजी ने भी उस बात का समर्थन किया । कुछ लोगों का मुझाव था कि बड़े व्यापारियों को ही इस रकम की पूर्ति करनी चाहिए । छोटे व्यापारियों के तो आमदनी भी थोड़ी होनी है । सेठजी ने कहा—‘इतनी बड़ी रकम दो चार आदमी कैसे दे सकते हैं, यह तो सभी को देनी पड़ेगी ।

सेठजी के मुनीम ने तब प्रत्येक दूकान के नाम में पृथक्-पृथक् रकम लिखना प्रारम्भ किया । लोगों ने एक दूसरे से तुलना करते हुए उसे उससे सामर्थ्य से अधिक दतलाना प्रारम्भ किया । काम आये नहीं बढा तब लोगों ने कहा—‘पटवाजी के आने पर ही आये रकम लिखी जाएगी ।’

सेठजी बोले—‘बया अचेले पटवाजी यह रकम दे देंगे ? देना तो सभी को पड़ेगा । अभी दो या घंटे बाद मैं दूँ ।’ आखिर यही निर्णय हुआ कि पटवाजी के आने पर रात को फिर इकट्ठा होकर निर्णय करना चाहिए ।

पटवाजी जब सायंकाल बाहर से आये तब लोगों ने उनसे मारी बातें दतलाई और कहा—‘छोटे व्यापारियों के पास में तो मूल्य ही रकम की कमी रहती है । वे कुछ दे भी देंगे तो उसने क्या महारा लगेगा । आखिर अधिकांश रुपया बड़े व्यापारियों को ही देना होगा तो फिर थोड़े रुपयों के लिए सबको क्यों बसा जाये ।’

पटवाजी को यह बात अच्छी गई । रात को जब सभी लोग इकट्ठे हुए तो पटवाजी ने छोटे व्यापारियों को इससे मुक्त रखने के लिए कहा ।

सेठजी ने गरम होने हुए कहा—‘तो फिर इतना रुपया कहाँ से आये



‘पर हो क्या बराबरी कर सकते हो।’

(भूतानुग्रह)

गुमानजी सुनावत

१४६. गुमानजी सुनावत पीपाइ के रहने वाले थे। वे धर्मनिष्ठ एवं तत्त्वज्ञ थावक थे। उनका तत्वज्ञान गहरा था और उनकी बुद्धि प्रखर थी। उन्होंने स्वामी जी द्वारा रचित अधिवांस साहित्य कंठस्थ करके लिखा। उनके हाथ से लिखा हुआ यह दर्शनीय पोथा ‘जैन विश्व भारती’ के प्राचीन पुस्तक भंडार में सुरक्षित है।

वे कठस्थित ग्रन्थों का चिन्तन मननपूर्वक समाधान भी करते थे।

उनकी आस्था व त्याग भावना भी बेजोड़ थी। उन्होंने बारह वनों को विस्तारपूर्वक ग्रहण किया था। यह बात उक्त पोथे में उल्लिखित है।

१४७. स्वामीजी जीवन पर्यन्त ग्रामानुग्राम पाद-विहार करते रहे। वृद्धावस्था में भी उन्होंने कहीं स्थिरवास नहीं किया। स्वामीजी का शरीर निरोग एवं पाँचों इन्द्रिया सशम थी।

१४८. स्वामीजी का विहार-क्षेत्र राजस्थान ही था। उस समय राजस्थान एक प्रान्त के रूप में न होकर पृथक्-पृथक् रियासतों के रूप में था और वहाँ विभिन्न राजाओं का राज्य था। उस समय के राज्यों के अनुसार मेवाड़, मारवाड़, बूढ़ाड़ और हाशोती ये चार राज्य ही प्रमुखतया स्वामीजी के विहार-क्षेत्र रहे थे। एक बार थली में भी पधारे थे। जिसका कारण था कि गण से बहिर्भूत मुनि चन्द्रभाणजी, तिलोकचन्दजी, ने स्वामीजी के शिष्य मुनि सतोकचन्दजी, शिवरामजी को फटा लिया था। उनकी समझाने के लिए स्वामीजी ने स० १८३७ के पादू धानुर्मास के पश्चात् थली की तरफ विहार किया। बोरावड में मुनि भारमलजी को चेचक निकलने से उनको वहाँ ३ साधुओं से रखा। स्वामीजी दो साधुओं से थली में लाइनू (सेवकों के वास में ठहरे) बीदासर, राजलदेसर, रतनगड, (पडो-

१. पाचू इन्द्रयां परवरी, न पडी काई हाण।

वृधपणै पिण पूज नी, श्रीध चाल शुभ चीन ॥

याणै कठेई ना थया उदमी इधिक अपार।

चार चर्चा करण चित्त पूज तणै अति प्यार ॥

(भिक्षु जश० ढा० ५३ दो० १, २)

आख्या आद इन्द्रया तणो, रह्योँज रुडो तेज।

शरीर निरोगो निर्मलो, तिण दीठा उपजै हेज ॥

(भिक्षु चरित्र ढा० १२ दो० ३)

‘पर की क्या बराबरी कर सकते हो ?’

(धृतानुधृत)

गुमानजी सुनावत

३४९. गुमानजी सुनावत पीपाइ के रहने वाले थे । वे धर्मनिष्ठ एवं तपस्व भावक थे । उनका तपस्वान गहरा था और उनकी बुद्धि प्रखर थी । उन्होंने स्वामी जी द्वारा रचित अधिकांश साहित्य कंठस्थ करके लिया । उनके हाथ से लिया हुआ बहु दत्तनीय पोषा ‘जैन विश्व भारती’ के प्राचीन पुस्तक भंडार में सुरक्षित है ।

वे कटस्थित छत्रों का चिलन मननपूर्वक समाधान भी करते थे ।

उनकी आस्था व त्याग भावना भी बेजोड़ थी । उन्होंने बारह प्रती की विस्तारपूर्वक ग्रहण किया था । यह बात उक्त पोषे में उल्लिखित है ।

३५०. स्वामीजी जीवन पर्यंत ग्रामानुग्राम पाद-विहार करते रहे । वृद्धावस्था में भी उन्होंने कहीं स्थिरस्वाम नहीं किया । स्वामीजी का शरीर निरोग एवं पाँचो इन्द्रियां सशक्त थी ।

३५१. स्वामीजी का विहार-क्षेत्र राजस्थान ही था । उस समय राजस्थान एक प्रान्त के रूप में न होकर पृथक्-पृथक् रिमासतों के रूप में था और वहाँ विभिन्न राजाओं का राज्य था । उस समय के राज्यों के अनुसार मेवाड़, मारवाड़, दूराड और हावेली ये चार राज्य ही प्रमुखतया स्वामीजी के विहार-क्षेत्र रहे थे । एक बार पत्नी में भी पधारे थे । जिसका कारण था कि गण में बहिर्भूत मुनि चन्द्रमाणजी, तिलोत्तमचन्दजी, ने स्वामीजी के शिष्य मुनि सनोकचन्दजी, गिरामजी को फटा लिया था । उनकी समझाने के लिए स्वामीजी ने स० १८३७ के पादू पानुर्मा के पञ्चांग पत्नी की तरफ विहार किया । बोरावड़ में मुनि भारमलजी को चेचक निकलने से उनको वहाँ ३ साधुओं से रखा । स्वामीजी दो साधुओं से पत्नी में लाइन (संवगो के बाम में ठहरे) बीदासर, राजलदेसर, रतनगढ़, (पड़ी-

१. पाँचु इन्द्रयां परवरी, न पड़ी काई हाण ।

बुधपणै पिण पूज नी, शीघ्र चाल शुभ धीन ॥

घाणे कठेई ना घया उदमी इधिक अपार ।

चार चर्चा करण चित्त पूज तणै अति प्यार ॥

(भिक्षु जश० दा० ५३ दो० १, २)

आरुया आद इन्द्रया तणो, रह्योँज रहो तेज ।

शरीर निरोगो निर्मलो, तिण दीठां उपजै हेज ॥

(भिक्षु चरित दा० १२ दो० ३)

अरज्या भाखा नैं एषणा, इत्यादिक आठ प्रवचन ।
मन वचन काया करी, कीज्यो घणा जनन ।।
साधपणो सुध पालज्यो, चिता फिकर म करज्यो तास ।
म्हामुइ मिलेला भ्यानी मोटका, वले बेगो करोला मुगत मे वास ।
चेला री ममता करज्यो मनी, लीजो सुध जोय जोय ।
असल आचार पाले तको, काचो म घालज्यो गण मे कोय ।।
असल आचार आछी तरें, पालज्यो प्रभु वचन पिछाण ।
आग्या म सोपज्यो अरिहत नी, तो वंगा पाममो निरवाण ।।
हू तो जातो दीसू परभवे, सीख दीधी छं घाने जाम ।
लोक बतावै कोई आगली, कदीय म कीजो एहवो काम ।।

(हेम मुनि कृत भिक्वु चरित्र ढा० ७ गा० १५ से १६)

३५५. स्वामीजी की उपर्युक्त हित शिक्षा इनकी सारगर्भित और आकस्मिक थी कि सुनने वाले आश्चर्य चकित हो गये । भारीमालजी स्वामी आदि साधुओं ने स्वामीजी से पूछा—‘क्या आपके शरीर में कोई विशेष तकलीफ है ? स्वामीजी ने कहा—‘नहीं ! चालू तकलीफ के अतिरिक्त कोई दूसरी तकलीफ नहीं है, परन्तु मुझे लगता है कि अब मेरा आयुष्य नजदीक है । इसलिए यह अन्तिम शिक्षा दी है । मुझे मृत्यु का किंचित् भाव भी भय नहीं है । मेरे मन में अत्यन्त हर्ष है कि मैंने भगवान् महावीर के सत्य मार्ग को अतला कर अनेक व्यक्तियों को सम्मक्त्वी, देशव्रती और महाव्रती बनाया । जनता को सुगमनया समझाने के लिए मैंने तत्त्वज्ञान विषयक जो रचनाएँ की हैं वे सब सूत्र न्याय के अनुसार हैं । मुझे शुद्ध अन्तःकरण से जैसा ज्ञात हुआ वैसा कहा है । मेरे मन में पूर्ण सतोष है । मैं किसी भी प्रकार की कमी अनुभव नहीं करता । तुम साधुओं से भी मेरा यही कथन है कि स्थिरचित्त होकर त्रिनेश्वर देव के मार्ग का अनुसरण करना । बुबुद्धि और कदाग्रह को छोड़कर आत्मा की उज्ज्वलता हो, वैसा कार्य करते रहना ।

बालक मुनि रायचन्दजी को शिक्षा देते हुए स्वामीजी ने कहा—‘तू बुद्धिमान बालक है, अतः किसी प्रकार का मोह मत करना ।’ वे बोले—‘प्रभुवर ! आप तो आत्मकल्याण कर रहे हैं, फिर मैं मोह क्यों करूँ ?’

(भिक्वु जश रसायण ढा० ५६ दो० १ से ४ तथा गा० १ मे ८ के आधार से)

३५६. मुनि श्री केतकीजी ने स्वामीजी से निवेदन किया—‘प्रभुवर ! आप तो अब सुरवन्द में जा रहे हैं और हमारे आपका विरह पड़ रहा है ।’

स्वामीजी निरपेक्ष भाव से बोले—‘शिष्यों ! मुझे स्वर्ग के सुखों की किंचित् भी चाह नहीं है । उन्हें जीव अनेक बार प्राप्त हो चुका है पौद्गलिक सुख, नश्वर एवं नरक के हेतु हैं । मेरा मन मोक्ष के आत्मिक सुखों के प्रति लगा हुआ है । तुम लोग भी पौद्गलिक सुखों की याछा मत करना ।

किया। आपने फरमाया—‘अब तुम लोग ऐसा मत जानना कि मैं आहार करूँगा। मेरा मन अनशन के लिए उतावला हो रहा है।’

दोपहर के बाद स्वामीजी कच्ची दूकान से सामने वाली पक्की दूकान में पधारे। शिष्यों ने बिछौना कर दिया। उस पर लेटकर विराम करने लगे। कुछ ही समय हुआ होगा कि इतने में बालक मुनि रायचन्दजी ने पास आकर कहा—‘स्वामिन् ! कृपाकर दर्शन दीजिये।’ यह सुनकर स्वामीजी ने अपने नेत्र खोले और उनकी तरफ देखते हुए उनके भस्तक पर अपना हाथ रखा। श्रृपि रायचन्दजी अवस्था में बालक ही थे किन्तु बड़े समझदार थे। स्वामीजी की शारीरिक स्थिति देखकर उन्होंने कहा—‘स्वामिन् ! अब तो आपके शरीर का पराक्रम क्षीण पड़ रहा मालूम देता है।’

यह सुनते ही स्वामीजी मिह की तरह उठे और बोले—‘भारीमालजी तथा सैनसीजी को शीघ्र बुलाओ।’ याद करते ही वे उशस्थित हो गये। स्वामीजी ने अरिहत्त मिहो को नमस्कार कर उच्चैः स्वर से भाई-बहनों के सम्मुख आजीवन तीनो आहारों का त्याग कर दिया। शिष्यों ने प्रार्थना की—‘भगवन् ! अमृत का तो आगार रखना था।’ स्वामीजी ने फरमाया—‘आगार किस बात का, अब कौन सी सार-सभाल करना है? इस प्रकार स्वामीजी ने भाद्रव शुक्ला १२ को पश्चिम प्रहर के आध्विरी वृषदिया (अमृत) में अनशन ग्रहण किया।’

अनशन के समाचार सुनकर अनेक गावों के भाई-बहन दर्शनों के लिए आते तथा विविध प्रकार के त्याग करते, मुक्त कठों में आचार्य भिक्षु के यशोपान गाते एवं अनशन की सराहना करते। विपक्षी लोग भी बड़े प्रभावित हुए, नहीं नमने वालों का भी श्रद्धा से सिर झुक गया। कई भोले आदमियों ने यह अभिग्रह किया कि यदि भीखणजी का निकाला हुआ मार्ग शुद्ध और सही है तो उन्हें अन्तिम समय में अनशन आएगा। उन्होंने जब सयारों के सवाद सुने तो ये महान घमत्कार को प्राप्त हुए और उन्हें विश्वास हो गया कि मार्ग शुद्ध है।

सायंकाल प्रतिक्रमण करने के पश्चात् स्वामीजी ने भारीमालजी आदि शिष्यों को व्याख्यान प्रारम्भ करने के लिए कहा। शिष्य गण ने विनती की—‘आपके सयारा है अतः व्याख्यान न भी हो तो क्या आपत्ति है।’ उन्होंने कहा—‘जब साध्वियों के अनशन होता है तब व्याख्यान देते हो तो मेरे सयारे पर व्याख्यान क्यों नहीं देते?’ शिष्यों ने तत्काल व्याख्यान चानू कर दिया।

बारस की रात बीती, तेरस का सूर्य गया प्रभात ब नई रोशनी लेकर आकाश

१. भाद्रवा सुदि बारस भती, त्रिपि सोमवार सुविचारो।

अनशन आदर्षो बंराग आंगी नै, शुद्ध छेहलो दुषदियो सारो ॥

(भिक्षु जश रसायण दा० ५६ गा० १५)

में उद्दिष्ट हुआ। लक्षण पर दिन चढ़ने के बाद स्वामीजी ने पढ़ने काग में गयी थी। साधु तथा साध्वि-प्राप्तियों में वैदिक रूप स्वामीजी के दिव्य दिव्य को देखकर रोम रोम में दुःखित हो रहे थे। लक्षण के बाद दिन चढ़ गया। अहमदाबाद स्वामीजी ने कहा— 'साधु' था रहे हैं, उनके सामने आगे-प्राप्तियों की आ रही है।'

एक सुप्रसन्न मन की बात कि मुनि भी बेनीगामी (२८) और कुमाग्री (३८) दो साधु पत्नी में चलकर आये और स्वामीजी के चरणों में झुक गए। स्वामीजी ने उनके गिर पर हाथ रखा। मुनि भी द्वारा गुण-गुण करके पर स्वामीजी ने उनकी आस्था की तरफ दो अनुनिता ऊँची करके उनकी आस्था की तरफ के लिए पूछा। मुनि भी स्वामीजी के वाक्य में अनुपम में सरगर् हो गए।'

दो सुप्रसन्न होने ही तीन साधिवर साधवी भी बगूनी (२९) झूनी (६६) और बाहीनी (५५) ने आकर स्वामीजी के दर्शन लिए।'

स्वामीजी द्वारा बड़ी गई दोनों बाँये साध्या भिन्न गई। स्वामीजी ने उक्त वाक्य अनुमान में, प्रातिभजान में या अधिज्ञान में बड़े ऐसा शिक्षण रूप में तो सर्वज्ञ हो जान सकते हैं।' पर व्यवहार में लगता है कि उन्हे अधिज्ञान उपलब्ध हुआ था। जमाबायें भी उमें स्वीकार करने हुए लिखते हैं—

१ दिन चढ़ने पोहर दोड़ आगरे, साधवता महु कोय।

बचन प्रकाशे निज विधे भम मृनिपै भवि मोय॥

साधु आवे साहसा जायो, मुनि प्रकाशे बांण।

बने साधविमा आवे बारै, स्वामी बोले बचन मुहाण॥

(भिक्षु जश रसायण का० ६१ दो० ५ गा० १)

२. पासी रा बालिया पाछरा दोय साध आया निज बार।

रिख वेणीदाम बुशालजी, देखी इचरज पाम्या नर-नार॥

(वेणी मुनि वृत्त—भिक्षु चरित का० ११ दो० १)

दोय आगुमी बकी, सैन करो नै जाणी।

सूखसाना पूछन, बची खम्बु पहिछाणी॥

पहिछाणी जो उच्चरग आणी, सावचेत इमा मुनि गुण खाणी।

धिन धिन भिक्षु स्वाम, महाकीर्ति माणी॥

(सधु भिक्षु चरित का० ५ गा० ३२)

३ अनुमानन 'छिरवा' से चलकर आई।

४ ये तो बहो अटकल उनमाने, के बहो बुद्धि प्रमाण।

कै कोई अधिज्ञान ऊँचों, ते जाणै सर्वनाथ॥

(भिक्षु जश रसायण का० ६१ गा० २)

भिक्षु श्रुत्य शुद्ध भाव स, ध्यावता निरमल ध्यान ।
सके तो आणू स्वाम नै, ऊपनो अवधि सुमान ॥
माघ आदिका होवै सही, वैमानिक विध्यात ।
अवधिज्ञान तम् ऊर्ज, आगम बचन आख्यात ॥

(भिक्षु जश रसायण ढा० ६१ दो० ३, ४)

स्वामीजी को लेटे हुए अधिक समय हो जाने पर साधुओं ने आपको बैठा करने के लिए पूछा । आपने स्वीकृति दी तब आपको बिठलाकर साधु हाथ का सहारा देकर पीछे बैठ गए । आप ध्यानासन में बैठकर निर्मल ध्यान में सबलीन हुए कि अकस्मात् आयुष्य पूर्ण हो गया ।

उधर दर्जी में तेरह खड़ी मड़ी के सिलाई का कार्य सम्पन्न कर सूई पगड़ी में लगाई हो थी कि इधर स्वामीजी ने प्राणों का त्याग किया ।'

इस प्रकार स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ मंगलवार को बेटे प्रहर दिन अवशेष रहा तब स्वामीजी ने ७ प्रहर के तिथिहार अनशन में सिरियारी में परम समाधि-पूर्वक स्वर्ग प्रयाण किया ।'

साधुओं ने स्वामीजी के शरीर को 'बोसराया' और चार लोगस्त का ध्यान किया । उस दिन के लिए आहार का भी सभी ने परित्याग कर दिया ।

भिक्षु जश रसायण ढाल ५६ से ६१ में उक्त वर्णन विस्तृत रूप में है ।

स्वामीजी वडे भाग्यशाली एवं प्रगाढ पुण्य के धनी थे, जिससे अन्तिम समय में चार तीर्थ का योग मिल गया ।'

१. बेटा हुआ तिन अवसरे रे, ध्यान आसन श्रीकार ।
आनक जिनजी विराजिया रे, न आणी अरुमता लिगार ॥
तेरे खड़ी तयारी हुई रे, आनक देव विमाण ।
सतो तत इसरो मिल्यो रे, पूज बेटाई छोड़्या प्राण ॥

(वेणी मुनि कृत भिक्षु चरित्र ढा० ११ गा० ७, ८)

२. सम्बत अठारै साठे वर्षे, भाद्रवा सुदि तेरस मंगलवार ।
पूज पौहता परलोक सिरियारी, गुण गावै नर नार ।
दिन पाछजो पौड पौहर आसरै, उण बेला आउजो आयो ।
दिवसे मरवो रात्रि जनमवो, कहै विरला न थायो ।

(भिक्षु जश रसायण ढा० ६१ गा० १६, १७)

३. बिठ तीर्थ आवी मिल्या, स्वाम तणै सयार ।
मास भाद्रवा रे मझै, अचरज ए अधिकार ।
प्रबल पुण्य ना पोरसा, प्रबल गुणामर जाण ।
पूज हुना प्रगट पर्णै, परमव कियो पयाण ॥

(भिक्षु जश रसायण ढा० ६२ दो० ६, ७)

महत्त्वपूर्ण वर्ष

१. जन्म सबत्—१७८३ आपाठ शुक्ला त्रयोदशी
२. द्रव्य दीक्षा सबत्—१८०८ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी
३. बोधि प्राप्ति सबत्—१८११
४. भाव दीक्षा सबत्—१८१७ आपाठ पूर्णिमा
५. स्वर्गवास सबत्—१८६० भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी ।

महत्त्वपूर्ण स्थान

१. जन्म स्थान—कटालिया
२. द्रव्य दीक्षा स्थान—बगड़ी
३. बोधि प्राप्ति स्थान—राजनगर
४. भाव दीक्षा स्थान—केलवा
५. स्वर्गवास स्थान—सिरियारी ।

३६२. स्वामीजी ने स० १८१७ से १८६० तक १५ गावों में ४४ चातुर्मास रिक्ये । उनकी तालिका इस प्रकार है—

| स्थान | चातुर्मास संख्या | सम्बत् |
|----------|------------------|--------------------------------|
| केलवा | ६ | १८१७, २१, २५, ३८, ४६, ५८ । |
| बड़लू | १ | १८१८ । |
| सिरियारी | ७ | १८१६, २२, २६, ३६, ४२, ५१, ६० । |
| राजनगर | १ | १८२० । |
| पाली | ७ | १८२३, ३३, ४०, ४४, ५२, ५३, ५६ । |
| कटालिया | २ | १८२४, २८ । |
| केलवा | ५ | १८२६, ३२, ४१, ४६, ५४ । |
| बगड़ी | ३ | १८२७, ३०, ३६ । |
| माधोपुर | २ | १८३१, ४८ । |
| पीपाठ | २ | १८३४, ४५ । |
| आमेठ | १ | १८३५ । |
| पाड़ू | १ | १८३७ । |
| नाथदारा | ३ | १८४३, ५०, ५६ । |
| पुर | २ | १८४७, ५७ । |
| सोबत | १ | १८५३ । |

| संख्या | ठाणा | स्थान |
|--------|------|--------------|
| १८४४ | | पाली |
| १८४५ | | पीपाड |
| १८४६ | | मेरवा |
| १८४७ | | पुर |
| १८४८ | | सवाई माधोनुर |
| १८४९ | | केलवा |
| १८५० | | श्रीजोडारा |
| १८५१ | | निरिपारी |
| १८५२ | | पाली |
| १८५३ | | सोत्रत |
| १८५४ | ४१ | शेरवा |
| १८५५ | ४१ | पाली |
| १८५६ | ५१ | श्रीजोडारा |
| १८५७ | ५१ | पुर |
| १८५८ | ६१ | केलवा |
| १८५९ | ६१ | पाली |
| १८६० | ७० | निरिपारी |

- १ स्वामी भीखणजी, भारीमालजी, सेतमीजी, हेमराजजी ।
(हेम नवरसा डा० ४ गा० १)
- २ स्वामीजी भीखणजी, भारीमालजी, सेतमीजी, हेमराजजी ।
(हेम नवरसा डा० ४ गा० २)
- ३ स्वामी भीखणजी, भारीमालजी, सेतमीजी, हेमराजजी, उदयरामजी ।
(हेम नवरसा डा० ६ गा० ३, ४ तथा भिक्षु दृष्टान्त १८८)
- ४ स्वामी भीखणजी, भारीमालजी, सेतमीजी, हेमराजजी, उदयरामजी ।
(हेम नवरसा डा० ४ गा० ५)
- ५ स्वामी भीखणजी, भारीमालजी, सेतमीजी, उदयरामजी, रायचन्दजी, जीवोजी ।
(अनुमानत)
- ६ स्वामी भीखणजी, भारीमालजी, सेतमीजी, उदयरामजी, रायचन्दजी, जीवोजी ।
(अनुमानत)
- ७ स्वामी भीखणजी, भारीमालजी, सेतमीजी, उदयरामजी, रायचन्दजी, जीवोजी, भयजी ।

(भिक्षु जल रसायण डा० ५३ गा० १३ से १५)

३६३. स्वामीजी के जीवन प्रमंग पर लिखे हुए मूलभूत चार आक्यान हैं—

(१) भिक्षु चरित्र—यह मुनिश्री हेमराजजी द्वारा रचित है। इसकी १३ ढालें हैं, जिनके ६० दोहे और १६७ गाथाएँ हैं। इसकी रचना स० १८६० माघ शुक्ला ६ शनिवार को सिरियारी की उमी पक्की दुकान में की गई थी किन्तु दुकान में स्वामीजी का स्वर्गवास हुआ था।

(२) भिक्षु चरित्र—इसके रचयिता मुनिश्री वेणीरामजी हैं इसकी भी तेरह ढालें हैं जिनमें ७२ दोहे और १६६ गाथाएँ हैं। स० १८६० फाल्गुन वदि १३ गुरुवार को बगड़ी में इसकी रचना की गई है।

(३) भिक्षु जश रसायण—भिक्षु जश रसायण कृति की चतुर्धाचार्यश्री जीतमलजी ने स० १६०८ आसोज सुदि १ को बीदासर में रचना संपन्न की।

इस कृति के निर्माण में जयाचार्य ने निम्नोक्त कृतियों का सहारा लिया।

विस्तार रच्यो भिक्षु मुनिवर नों, मुणियो तिण अनुमार।

भिक्षु दृष्टग्त हेम लिखाया, देखो ते अधिकार॥

वेणीरामजी हेम कृत वर, भिक्षु चरित्र मुखे॥

इत्यादिक अवलोकी अधिको, ग्रथ रच्यो सुविशेष॥

(भिक्षु जश रसायण ढा० ६३ गा० ४५, ४६)

इस ग्रथ की ६३ ढालें हैं जिनमें दोहे ५११, सौरठे ७२, छंद ४५ और गाथाएँ १५६८ हैं कुल पद्य—२१६६ और प्रपात्र २७८० है।

(४) सद्य भिक्षु जश रसायण—इसकी रचना जयाचार्य ने स० १८२३ माघ सुदि ३ गुरुवार को सम्पूर्ण की। इसकी ५ ढालें हैं जिनके दोहे ४५ सो० १ छंद ७

१. जोड़ कीधी सिरियारी सँहर में, पके हाट विचार हो।

ममत् अटारे साठे समें, माह सुदि नवमी सनिसर वार हो॥

(हेम मुनि कृत भिक्षु चरित्र ढा० १३ गा० २०)

२. ए चिरत कियो छं भीछु अणगार नो, बगड़ी सहार मजार हो। महा०।

सवन अटारे साठा वरस में, फागुण विद तेरस गुरवार हो। महा०।

(वेणी मुनि कृत भिक्षु चरित्र ढा० १३ गा० १२)

३. सवन उमणीस आठे, आसोज एकम सुदि सार।

शुक्लवार ए जोड़ रची, बीदामर शहर मशार॥

(भिक्षु जश रसायण ढा० ६३ गा० ४८)

४. जगणीसं तेवीस, माघ सुदि निधि तीज।

गुरुवार ए जोड़, करी भिक्षु बीज।

भिक्षु बीज समु जग बीज, भारीमात रायश्रय रमणीज।

धिन धिन पिछु स्वाम, भई जय जश रीस॥

(सद्य भिक्षु जश रसायण ढा० ५ गा० ४४)

गा० २३३ है कुल पद्य २८७ और प्रपाद्य ३८० है।

आचार्य चरित्रावली खंड १ की भूमिका में इन चारों ग्रंथों का विस्तृत परिचय दिया गया है।

बाद में लिखे हुए ग्रंथ निम्नोक्त हैं—

(१) भिक्षु महाकाव्य (संस्कृत-गद्य)

रचयिता मुनिश्री नयमलजी (बागोर)

(२) अभिनिष्क्रमण (संस्कृत-गद्य)

रचयिता मुनिश्री चन्दनमलजी (सिरसा)

(३) भिक्षु विचार दर्शन (हिन्दी)

रचयिता मुनिश्री नयमलजी (टमकोर)

(४) तेरापण इतिहास प्रथम परिच्छेद

रचयिता मुनिश्री बुद्धमलजी (शार्दूलपुर)

(५) आचार्य सत श्रीखणजी (हिन्दी)

रचयिता धावक श्रीचंदजी रामपुरिया (सुजानगढ़)

३६४. जैनागमों में जगह-जगह 'से भिक्षु था' पाठ आया है। स्वामीजी ने उसे 'भिक्षु' नाम एवं 'भिक्षु' साधु बनकर भाव निक्षेप से सार्थक कर दिया।

परिशिष्ट १ (क)

भिक्षु साहित्य का चुम्बक दिग्दर्शन

विनय मूल धर्म

बूहा

विने मूल धर्म त्रिण कष्टो, ते जानी विरला ब्रीव ।
जे मनगुर रो विनो करै, त्यां दीधी मुगल री नीव ॥
जे नुगुर तणो विनो करै, ते किम उनरे भववार ।
ज्या मुगुर नुगुर नही ओलवपा, ते गया जमारो हार ॥
कोई अग्यानी इम कहै, गुर नें वाप एक होय ।
भूटा भला जे गुर कर्या, त्याने न छोडणा कोय ॥
त्रिण आगम माहे इम बहो, गुर करणा गुण देख ।
छोटा गुर नें नही सेवणा, त्यारी कीमन करणी बरोय ॥
(साध्वाचार री चौपई वा० ११ बूहा १ से ४)

एक क्रिया में पुण्य पाप (मिथ) नहीं

सावर केरा सीग में रे, सीग सीग में सीग ।
ज्यू मिथ परुवै त्यांरी बात में रे, धीग धीग में धीग ॥
बावल बाजे आकरी रे, जब उई धूर धूर में धूर रे ।
ज्यू मिथ परुवै त्यांरी बात में रे, कूर कूर में कूर रे ॥
बाजर सेन बावै तरे रे, बूट बूट में बूट ।
ज्यू मिथ परुवै त्यांरी बात में रे, झूठ झूठ में झूठ रे ॥
(दंडा री चौपई वा० १ गा० ६४ से ६९)

हिंसा में धर्म नहीं

सोही गरदपो जे गितवर, सोही गू बेम धोवायो रे ।

निम हिंसा में धर्म बीरो जी, जोव उजसो निम पायो रे ॥

चतुर विचार करी में देयो ॥

(विरत दविरत की चौपई दा० १ गाथा १६)

हिंसा री करणी में दया नहीं छै, दया री करणी में हिंसा नाहीं जी ।

दया में हिंसा री करणी छै ग्यारी, ज्यू तावडो में छाही जी ॥

ओर बगल में भेल हूबे विण, दया में नहीं हिंसा री भेलो जी ।

ज्यू पूर्व में पिछम गो मारग, विण विष छाये मेनो जी ॥

जिण मारग री नीब दया पर, छोडी हूबे ते पारै जी ।

जो हिंसा माहे धर्म हूबे तो, जल मयीयां पो भारै जी ॥

(अणुदग्धा री चौपई दा० ६ गा० ७०, ७१, ७४)

दृष्टि दोष—नारी नयन के घाण

एक छत्री आंनों सेजावनां रे, मारग माहे मिनिजो खोर ।

तिण में छत्री बाण बाया घणां रे, खोर फरसी मू नांझा टोड ॥

हिंसे एक बाण बाकी रह्यो रे, जब अम्तो निज रूप दिखाय ।

ते खोर तिण रे रूप विनविजो रे, जब छत्री बाण मू दीयो दाय ॥

खोर परयो ते देखनें रे, छत्री बरवा सामो मान ।

खोर कहै गरबे बिगू रे, म्हांरे नारी नेनां रा साया बाण ॥

(शील की नववाड दा० १ गा० १३ में १६, १७)

आचार शिथिलता

साधे सीधा फिर पुस्तक पोया, आचार पावन जदद दोदा ।

ते पस रह्यो माया जालो, एहवा भेयगारी पाचमे कानो ॥

करणी करतूत माहे पोला, बले बरड बरड मिरणा बोला ।

त्यारे झूठ तणो नहीं टालो, एहवा भेयगारी पाचमे कानो ॥

नाम धरावै साध सती, विण लखन न दीई एक रती ।

भूडे झूठ तणो वह रह्यो नायो, एहवा भेयगारी पाचमे कानो ॥

कोई पदवी घर बाजै मोटा, बनपन जंगी लखन छांटा ।

कण रहित एकत परालो, एहवा भेयगारी पाचमे कानो ॥

एक-एक तणा दोषण दीकै, अछावै करना नहीं मांजै ।

त्यानें कोई नहीं हटकण वालो, एहवा भेयगारी पाचमे कानो ॥

(साध्वाचार री चौपई दा० ६ गा० ४, ५, ८, ९)

गुरु परीक्षा

जाजम बिछाई कृपा ऊपरै, चिट्ठे पानी रे मेलयो उपर भार ।
 भोला बेसँ तिण उपरै, ते डूबे मरै रे तिण कृपा मझार ॥
 तिम कुगुर छै कृपा सारिग्या, जाजम सम रे कर्ने साधरो भेग ।
 तयामें गुर लेखव बढणा करै, ते डूबै रे मूर्ख अघ अरेख ॥
 (साधवाचार चौ० ढाल १० गाथा ६, ७)

दोष को मत छपाओ

गुर चेला नें गुर भाई माही, दोष देखै तो देणो बताई ।
 त्या मू पिण करणो नही टालो, तिणरो काढओ तुरत निहालो ॥
 घणा दिना रा दोष बतावै, ते तो मानवा में किम आवै ।
 साब झूठ तो केवली जाणै, छछस्य प्रतीत न आणै ॥
 हेन माहि तो दोषण दाकै, हेन टूटा कहतो नहि साकै ।
 तिण री किम आवै परतीन, उग नें जान लेणो विपरीत ॥
 (साधवाचार चौ० ढा० १५ गा० ३, ८, ९)

अध्यात्म दान

ज्ञान दान

मूत्र अर्थ मिथ्याय ए, सुध मारण आणै ठाय ए ।
 आपं समकत चारित एह ए, धर्म दान छै आठमों तेह ए ॥

पात्र दान

बने मिलै गुनातर आण ए, देखै निरदोषण द्रव्य जान ए ।
 ए दान मुगत रो भाग ए, दीया दलदर जावै भाग ए ॥

अभय दान

छछाय मारण रा त्याग ए, कोइ पचयै आण बेराग ए ।
 अभय दान कओ जिणराय ए, धर्म दान में मिलियो आए ए ॥
 (विरत इविरत री चौगई ढा० ६ गा० १६ मे १९)
 गुनात्र नें दीया समार घटै छै, कृपात्र नें दीया बरै मसार ।
 ए बीर बचन गाथा कर जाओ, तिण में शका नही छै लिगार रे ॥
 (विरति इविरत री चौगई ढा० १६ गा० २१)

दया

दया दया सहु को कहै, ते दया धर्म छं ठीक ।
 दया ओलखनै पालमी, त्पानै मुगन नजीक
 गाय भैंस आक थोहरनो, ए च्वाहई दूध ।
 तिम अणुकपा जाणजो, राखे मन नैं मूध ॥
 आक दूध पीघा पका, जुदा करै जीव काय ।
 सावज्ज अणुकपा किया, पाप कर्म बधाय ॥
 भोलेई मत भूल जो, जो अणुकपा रे नाम ।
 कीजो अतरग पारखा, ज्यू सीझ आसम काम ॥

(अणुकपा री चौपई डा० ८ दो० १, तथा डा० १ दो० २ से ५)
 जीव जीवै ते दया नही, भरै तेह हिंसा मत जाण ।
 मारण बासा नैं हिंसा कही, नही भारै हो ते तो दया गुण खाण ॥
 चोर हिंसक नैं कुसीलिया, यारे ताई हो दीघो साधा उपदेश ।
 त्पानै सावज्ज रा निरवद किया, एहवी छै हो जिण दया धर्म रेस ॥
 (अणुकपा री चौपई डा० ५ गा० ११ तथा ५)

उपकार

जिम कोई घन तबाखू विणजै, पिण वासण विगत न पाई रे ।
 घत लेई तबाखू मे घालै, ते दोनूई वसत विगाई रे ।
 (चतुर विचार करी ने देखो ॥
 ज्यू इविरत री दान विरत मे घालै, पिण विरत री विगत न पाई रे ।
 विरत री विगत पाइया विण बागा, मूनें चित दान पुकारै रे ॥
 जीभ री ओपद आख्या मे घाल्यो, आख्या री ओपद जीभ में चाल्यो रे ।
 तिण री आखई फूटी नैं जीभइ फाटी, दो नूई इद्दी खोप चाल्यो रे ॥
 ज्यू अधर्म रा कामा धर्म माहे चाल्या, धर्म रा कामा अधर्म मे चाल्या रे ।
 दोनूई विघ कर्म बोधे अग्यानी, दुरगत माहें चाल्या रे ॥
 (विरत इविरत री चौपई डा० ४ गा० १, २, ४, ५)

धृढा

छ लेस्या हूती जद बीर मे जी, हूता आठूई कर्म ।
 छभस्य चूका तिण मर्मजी, मूर्खं यारै धर्म ।
 चतुर नर समझो ग्यान विचार ॥

(अणुकपा री चौपई डा० ६ गा० १२)

निरवर करणी करै पेंहवे गुण ठाणें, निण करणी नें जावक जाणै अनुग्रह ।
 इसडी परपणा करै अग्यानी, तिण री भिष्ट हई छै मुघ नें बुध ॥
 पेहले गुण ठाणें निरबद करणी करै छै, निण री करणी सराया में दोषण जाणै ।
 अतिचार लागो कहै गमवत माही, तिण रो न्याय जाणयो बिन मूरं ताणै ॥
 इण मूढ़ मनी रो निरणो कीरै ॥
 (मिथ्याती री करणी री चौ० का० १ गा० २६, ३०)

व्रता-व्रत

साधु नें थावक रतना री माला, एक मोटी दूजी नांजी रे ।
 गुण गुण्या व्याकृ तीर्य ना, इविरत रह गइ कानी रे ॥
 चतुर विचार करी नें देखो ॥
 (विरत इविरत री चौपई का० १ गा० १)
 हिवे गुणजो चतुर सुजाण, थावक रतना री छाण ।
 व्रतां कर जाणजो ए, उलटी मत ताणजो ए ॥
 केइ रुग्य साय में होय, आव धनूरो दोष ।
 फल नहीं सारिखा ए, करजो पारिखा ए ॥
 आवा मू लिख साय, मोचै धनूरो आय ।
 आमा मन अनि घनी ए, अव लेवा तणी ए ॥
 पिण आव गयो कुमनाय, धनूरो रत्नो इहिदाय ।
 आय नें मोर्व जरे ए, नेंगा नीर शरै ए ॥
 इण दिष्टति जाण, थावक व्रत अव समाण ।
 अविरत अवगी रही ए, धनूरा गम कही ए ॥
 (विरत इविरत री चौपई का० १ गा० १ तथा का० २ गा० ५ मे १)

कृपण

मीर कटै कृपण तणो, देना लक्ष्यइ धुर्जे हाय ।
 कृपण काओ भाटा मारीयो, कपिला दामी वामी जाण ॥
 बीरी मवे कहै सोह मे, तेहनों तीतर ग्याय ।
 कृपण बीरी मारीयो, कहै सोह दुनिया रे माय ॥
 छानी पाटै मूय री, ओ देना देख दान ।
 दोन तणा बुध वरणवे, सो कृपण कदे न माई कान ॥
 (उपदेस चौ०—दान री काव २ गा० ६०, ६१, ६८)

अविनीत के लक्षण

बुझा जाना री कृतरी, निजरे धरै कीड़ा राध मोही रे ।
मयले ठाम स्रु बाँडे हूँ हूँ करे, घर में आवण न दे बाँई रे ॥

धिग् धिग् अविनीत आनमा ॥

बुझो बिगाड़े रमणीक आँगणो, ग्हायें कीड़ा राध नें सोही रे ।
वास दुरगध आवै अनि घुरी, निज नें घुर घुर करै सरब कोई रे ॥
जेहवी बुझा जानारी कृतरी, तेहवा अविनीत नें अभिमानी रे ।
तिण रो पादुओ भोज नें मुग्र अरी, निज स्रु सगलाइ दे जाए बानी रे ॥
अविनीत रा मुग्र भा स्रु नीकलै, ते तो कुवधन कीड़ा सम जानो रे ।
रमणीक आँगण ज्यु मुघ साध नें, पाप सगावै घोष उठाणो रे ॥
धिर करण माहे राखें तेहने, छिद्र घड़े हुवै द्रोही रे ।
निज नें बुझा जाना री कृतरी ज्यु, गण बारे बाँडे सरब कोई रे ॥
कण सहित बुरो छोट नें, भिष्टो भवै भद्रमुरो रे ।
निज भद्रमुरा री ओषमा, अविनीत नें दीधी वीरो रे ॥
मलिपार गघो धोडो अविनीत ते, कूट्यां विन आगो न चालै रे ।
ज्यु अविनीत नें काम भसाविया, कल्या कल्या नीठ पार धालै रे ॥

(विनीत अविनीत री चोपई डा० २ गा० १ से ६ तथा ११)।

सौन्दर्य-असौन्दर्य ममता-समता के प्रतीक

भरत नही लेवण देव दिव्या, ब्राह्मी शील तणी माडो रिख्या ।
रूप देखी भरत रे बछा आई ॥

सती बेले बेले पारणो कीनों, एक लूखो अनपाणी मे लीनों ।
फूल ज्यु काया परी कुमलाई ॥

भरत री विषे स्रु जाणी मनसा, निज स्रु ब्राह्मी झाली तपसा ।
साठ हजार बरस री गिनती आई ॥

भरत छोट दीनी मन री ममता, सती रो सरीर देखी नें आई मुमता ।
पछे दीपती दिव्या दर्राई ॥

(भरत परित्र डा० १३ गा० १३ से १६)।

आत्म निरीक्षण की प्रेरणा

वीरा ग्हारा गज धवी ऊतरो, ब्राह्मी सुदरी हम गावै रे ।
बाहु बल नें समझायवा, आमी माहमी शणी माहे धावै रे ॥
ये राजरमण रिघ परहरी, बले पुत्र भीया अनेको रे ।
पिण गज नही छूटो ठाहरो, तू मन माहे आण बवेको रे ॥

बीरा म्हाया गत्र गरी उतरो, गत्र बडियो केन न होयो रे ।

आरो गोत्रो आपरो, सो तू केन जोरो रे ॥

(भरत परिण डा० १५ गा० १ मे ३)

विशिष्ट उपमात्मक उक्तियाँ

आभे पाटे धीगरी, कुण छै देवगहार ।

ज्यू गुर महिन गण विगडियो, त्योंरे चिट्ठ दिन परिदा गधार ॥

बैराग घट्यो ने भेय बडियो, द्वाध्यांगे भार गधा लडियो ।

यक गया ओत्र दियो रामो, एहवा भेय घारी पाचम कामो ॥

(माध्याचार री चौपई डा० ६ दूहा ४ ओर गा० २८)

विण अकुम त्रिम हाथी चाले, घोडो विगर सगाम जो ।

एहवी चाप कुगुर री जाणो, बहिया नें गाधु नाम जो ॥

(माध्याचार री चौपई डा० १ गा० ३१)

अवनीत ने अवनीत आवक मिये ए, ते पामे घणो मन हरथ ।

ज्यू डाकण राजी हुव ए, चढवा नें मिलिया जरथ ॥

विनीत तथा समझाविया ए, गाल दाव ज्यू भेला होय जाय ।

अवनीत रा समझाविया ए, ते कोबला ज्यू कानी बाय ॥

समझाया विनीत अविनीत रा ए, त्मामे फेर नितोयक होय ।

ज्यू तावडी ने छाहडी ए, इनरो अन्नर जोय ॥

(विनीत अविनीत री चौपई डा० ५ गा० २८, १४, १५)

साध नें आवक रतना री माता, एक मोटी दूजी नांजी रे ।

गुण गुण्या ब्यारु तीर्य ना, इविरत रह गइ कानी रे ॥

चनुर विचार करी नें देखो ॥

(विरत अविरत चौ० डा० १ गा० १)

कुगुर भडभूजा मारिया, त्योंरी सरघा हो छोटी भाट समान ।

भारीकभा जीव बिना सारिया, त्योंनें मोग्री हो छोटी सरघा मे आण ॥

(माध्याचार री चौपई डा० १० गा० ८)

मोनारी छुरी चोथी घणी, पिण पेट न मारें कोय ।

ए सोबीक सिटन सामने, तुम्हें हिरदे विमामी जोय ।

(साध्याचार री चौपई डा० ११ गा० ८)

सेठ साधो मोटी तणो, पहर नाहर बी खाम ।

ज्यू भेय लियो साधा तणो, पिण चाले गधा री चाल ॥

चले मन मे मगज न भावै, साधु ज्यू लोका मे पूजावै ।
मगहडाइ मे होय रह्यो सेठो, कुकडधम राजा होय बेटो ॥

(श्रद्धा निर्णय री चौपई डा० २५ गा० २१)

रुख जिम भव जीवडा, बागवान भगवान ।
बाणी जल धारा जिम जाणजो, धानै भव जीवा रे कान ॥
जल बिण सूकै रुखडा, कुमलावै कूपल पान ।
त्यानें सींचै जल त्याय नै, बागवान बुधवान ॥

(मुवाहु कुमार री वखाण डा० ७ दो० ४, २)

मछ गलागल लोक मे, सबला ते निबला ने खाय ।
तिण मे धर्म परुपियो, कुगुरा कुबद चलाय ॥

(अणुकम्पारी चौपई डा० ७ दो० १)

कण कण सचो कीडी करै, ते कण तीतर चुग जाय ।
ज्यू कृपण री धन सचियो, यू ही जावै विललाय ॥

(उपदेश चौ०—दान री दान २ गा० १७)

मूर्ई नाकें मिघर पोवै, बहो किम आगो वेमै ।
ज्यू हिंसा माहे धर्म परुपै, ते सालोसाल न वेमै रे ॥

(साधवाचार री चौपई डा० १ गा० २८)

बाघ्यो कान्तारी पाखनी गोरियो, वर्ण नावै पिण लग्न आवै रे ।
ज्यू विनीत अविनीत बनें रहै, तो उ कायक कुबद सीमःवै रे ॥

(विनीत अविनीत री चौपई डा० २ गा० २४)

कादा नै मो बार पाणी मू धोबिया, तो ही न मिटै डिमरी काम हो ।
ज्यू अविनीत नै गुर उपदेश दीये घणो, पिण मूल न मार्नै पाम हो ॥
कादा री तां वास धोया मुधरी पडै, निरपल छै अविनीत नै उपदेश हो ।
जो छेडवै तो अविनीत अवलो पडै घणो, उणरे दिन दिन इक्कू कलैग हो ॥

(विनीत-अविनीत री चौपई डा० ३ गा० २६, २०)

कद कूपल बोली हसी, पान दीयो बब जाव ।
बीर वखाणी ओपमा, ममअं लोग मताव ॥
अछता नै ओपमा छनी, छते अछती होय ।
इम जाणी नै गुण ग्रहो, लगदी मरुतो कोय ॥

(व्याख्या डा० १ गा० २, ४)

लोकोवितयां

मीठी अनेक मांही देखो, आरु बिना न लागै सेखो ।

(उपदेष्ट की चौपई—ममकित की दास ३ गा० ३)

पर मे आवै छावाताण, पापी जीवरा ए अहन्ताण ।

(मुगा लोढा रो बघाण दा० ११ गा० ११)

माद आवै जब मासै आईटाण, ने किण आगल काई वाण ।

(झोपदी रो बघाण दा० ३० गा० १)

जातो ने मरता छता, राख न सकै कोय ।

(मुवाहु कुमार रो बघाण दा० ६ दो० ४)

लोक माहे पिण बहै छै ओछाणां, पूत रा पग पालना मे पिछाणां ।

ते पालणो सो ज्याही रह्यो नाहि, पूत रा पग जोको पेट रे माहि ।

(मुगा लोढा रो बघाण दा० ११ गा० १६)

विरत विहूणी जे पही, निरखे निर्फल जाय ।

(जबू कुमार खरित दा० ४५ दो० ४)

दोरी बेला आय पहेँ जब, कोइ दुख नही बाटै आई ।

(पाववा पुनर रो बघाण दा० ५ गा० ७)

आप बेटा सहू आप आपणा, कौघा भुगने कर्म ।

(जबू कुमार खरित दा० ४२ दो० ७)

काल बटका देह, ते आंधी गिणै न मेह ।

(सुदगंन खरित दा० ३६ गा० ६)

पापी रो मुख देखता जी, भसो कठा सू माय ।

(माधवाधार री चौपई दा० ११ गा० ९)

चाकर कूकर बेहू सरीखा, घणो घसावै ज्यू चाथे ।

(उदाई राजा रो बघाण दा० ५ गा० १७)

घान भमाउ करलां, हांही फाटै नेट

(शीस की नय बाइ दा० ६ गा० १)

मरण सू बारी न लागै काई ।

(पाववा पुनर रो बघाण दा० ३ गा० २२)

हृदय मूनो मूअं हृथे ।

(जबू कुमार खरित दा० ४२ दो० १)

एकपो भ्रातो ब्रायो एहपो ।

मेहरो बीरु बारी मेहवा कम लावे ।

(गुवाहू गुपार रो बघाण दा० २ गा० १४)

घने गवाई दल जीव रे ।

(गुदमन बरिय दा० ३६ गा० १६)

जवा घरी आवी ने आवी गही ।

(उदाई बाबा रो बघाण दा० ३ दो० ४)

घन घारी रो घरने जाय ।

(उपदेस बी बीरुई—दा० १ गा० १६)

बिगहूयो बिगाई गहिरो पान ।

(बिनीत बरिनीत रो बीरुई दा० १ गा० २८)

२२. व्यावलो दोहा ६८ ।
२३. गोशाला री चौपई ढालें ४१ ।
२४. बेडाकोणिक री चौपई ढालें १६ ।
२५. तामली तापन री चौपई ढालें ७ ।
२६. उदाई राजा रो व्याख्यान ढालें ७ ।
२७. धावरचा पुत्र री चौपई ढालें ३२ ।
२८. मल्लीनाथजी रो चौपई ढालें २६ ।
२९. द्रोपदी री चौपई ढालें ३३ ।
३०. तेनलो प्रधान ढालें १६ ।
३१. जिनरख जिनपाल को चौडातियो ।
३२. नद मणिहारा रो चौडातियो ।
३३. पुडरीक कुडरीक रो चौडातियो ।
३४. सकडाल पुत्र ढालें १७ ।
३५. सुबाहुकुमार ढालें ११ ।
३६. मृगालोडो ढालें १६ ।
३७. उबरदत्त ढालें ५ ।
३८. घम्भो अणगार ढालें ६ ।
३९. भरत चरित्र ढालें ७४ ।
४०. जम्बूकुमार ढालें ४६ ।
४१. मुदर्शन सेठ ढालें ४२ ।
४२. चेलणा रो चौडातियो ।
४३. सानू बहू रो चौडातियो ।

गद्य

१. ३०६ बोला री हूडी ।
२. १८१ बोला री हूडी ।
३. पाव भाव री चर्चा ।
४. जोगा भी चर्चा ।
५. खुली चर्चा ।
६. आश्रव सवर री चर्चा ।
७. जिनाशा री चरचा ।
८. कालदादी री चरचा ।
९. इन्द्रियदादी री चरचा ।
१०. बला जीव भाव जीव री चरचा ।

११ तिनींही ही चरमा ।

१२ टीकप होगी ही चरमा ।

१३ भिन्नु गुन्ना ।

१४ तेश द्वार ।

१५ जीव वराधे उतर पाव भावां रो मोरहो ।

१६ आठ आमा रो मोरहो ।

१७ उदय तिग्गः सादिग रा योगी रुपाव पाव भाव रो मोरहो ।

१८ सामूहिक लिखन -

(१) गुजरात पदवी को लिखन संवत् १८३० मंगल यदि ७ ।

(२) समर्थ आषां रे मर्वादा रो प्रथम लिखन संवत् १८३४ जेठ सुदि ६ ।

(३) समर्थ साधा रे मर्वादा रो प्रथम लिखन संवत् १८४१ भैग यदि १३ ।

(४) प्राछित रो लिखन संवत् १८४१ ।

(५) आश्विवादिग वा कारणीक ही जाकरी रो लिखन संवत् १८४५ जेठ सुदी १ ।

(६) समर्थ साधा रे मर्वादा रो द्वितीय लिखन संवत् १८५० माघ यदि ५ ।

(७) समर्थ आषां रे मर्वादा रो द्वितीय लिखन संवत् १८५२ पागुण सुदि १४

(८) समर्थ साधा रे मर्वादा को लिखन संवत् १८५६ माघ सुदि ७ मनिवार ।

(९) सर्व साधु साध्विवां रे विगयादिक म्हाका रे परिमाण रो लिखन संवत् १८५६ ।

१९. व्यक्तिगत लिखन—

(१) अर्ध रामजी पाछा गण मांहे आया ह्यारो लिखन संवत् १८२६ माघ सुदि १२ बृहस्पतिवार, बुधो ।

(२) रूपचंदजी अर्धरामजी पाछा म्हाका होय ने स्वामीजी मे दोष काह्या तिण रो विगत संवत् १८५० ।

(३) बडा रूपचंदजी रो लिखन सं० १८५० ।

(४) अर्धरामजी दूजो बार पाछा गण मे आया ह्यारो लिखन संवत् १८५० मिंगतर यदि ८ ।

(५) रूपचंदजी द्वेय रे वस अर्धरामजी ने अनेक बोल काह्या ह्यारो विवरण सं० १८५० ।

(६) वीरभाणजी ने प्राछित देणो पाप्यो ते लिखत संवत् १८३२ जेठ सुदी ११ ।

(७) वीरभाणजी स्वामी मे दोष काह्या तिण रो विगत सं० १८३२ ।

(८) वीरभाणजी अवगुण बोल्या ते पन्ने लिखया तिण रो विगत संवत् १८३२ ।

- (६) फत्तूजी आदि च्यार आर्या गण मे आई त्पारो लिखत सबत् १८३३
मिगसर वदि २ बुधवार ।
- (१०) गाव चूरु मे फत्तूजी रा दोष उघडिया त्पारो विवरण सबत् १८३७ ।
- (११) फत्तूजी आदि पाव आर्या ने गण वारै काई त्पारो लिखत सबत्
१८३७ फागुण वदि २ ।
- (१२) तिलोकचन्द चंद्रभाण रा कूड कपट ने दगा रो विवरण सबत्
१८३७ ।
- (१३) तिलोकचन्द चंद्रभाण ने विश्वासघाती जाण ने गण वारै काड्या तिग
रो लिखत सबत् १८३७ माह वदि ६ ।
- (१४) सतोपजी शिवरामजी रो मन भाग ने आपरा कीघा तिग री विगत
सबत् १८३७ ।
- (१५) मुखोजी रो मन भाग ने आपरा कीघा तिग री विगत सबत्
१८३७ ।
- (१६) तिलोकचन्द चंद्रभाण री वाता गाम ईडवा मे सामली तिगरी विगत
सबत् १८३८ ।
- (१७) तिलोकचन्द चंद्रभाण री वाता गाम बाजोली माहे भाया कही तिग
री विगत सबत् १८४५ पोष सुदि ११ ।
- (१८) ऋषि अखैरामजी रे जने ऋषि मिघजी रे विगत खावा रा त्याग रो
लिखत सबत् १८४१ चैत वदि १३ बृहस्पतिवार ।
- (१९) ऋषिरामजी रो अभिग्रह पूरो हुवो तिग रो लिखत सबत् १८४१
चैत द्वितीय वदि १० सोमवार लाटोनी ।
- (२०) चडू ने गण माहे लीघा पहली करार कीयो तिग रो लिखत सबत्
१८५१ ।
- (२१) चडू बीरा ने गण वारै काडी तिग री विगत सबत् १८५२ वैशाख
वदि १ ।
- (२२) गाम मिरिपारी मे चडू अवगुण बोल्या त्पारी विगत सबत् १८५२ ।
- (२३) बीरा ने काडण ताई चडू साध-माडिया रा अवगुण बोल्या तिग री
विगत सबत् १८५२ ।
- (२४) जने चडूभी अवगुण बोल्या ते अजबोजी निघारा त्पारी विगत
सबत् १८५२ ।
- (२५) चडू ने वारै काड्या पछे आदी रे आन दोघा तेहनी विगत सबत्
१८५४ ।
- (२६) आर्या मेणाजी रा जोग सू सरुपाजी री अपरीत उराजी तिग रो
लिखत सबत् १८५४ चैत वदि ६ ।

2
3
4

परिमिष्ट-२

विजयन सवन् १८१७ से १८६० तक आचार्य भिक्षु ने जिन-जिन धर्मों में विहार किया उनकी स्वामीजी द्वारा रचित कृतियों, भारीमाल जी स्वामी द्वारा लिखित ग्रन्थों, सेखपत्रों, भिक्षु दुष्टान्त तथा व्यास आदि के आधार से क्रमशः छात्रिका इस प्रकार उपलब्ध है—

| संवत् | गांव | समय |
|-------|--------------|------------|
| १८१७ | बेलवा | श्रावर्मास |
| १८१८ | बरलू | श्रावर्मास |
| १८१९ | तिरियारी | " |
| १८२० | राजनगर | " |
| १८२१ | बेलवा | " |
| १८२२ | तिरियारी | " |
| | खेरवा | शेषकाल |
| १८२३ | पानी | श्रावर्मास |
| १८२४ | कटालिया | " |
| १८२५ | बेलवा | " |
| १८२६ | खेरवा | " |
| १८२७ | बगडी | " |
| १८२८ | कटालिया | " |
| १८२९ | तिरियारी | " |
| | बूसी | शेषकाल |
| १८३० | मुधरी (बगडी) | श्रावर्मास |
| १८३१ | सवाईमाधोपुर | " |
| १८३२ | खेरवा | " |
| | विठोरा | शेषकाल |
| | गुदवच | " |
| | खेरवा | |

| गांव | समय |
|------------|--------------------|
| योगूदा | " |
| नाथद्वारा | चातुर्मास |
| कोठारिया | चातुर्मास मे विहार |
| सणवार | शेषकाल |
| काकडोली | " |
| बेलवा | " |
| विठोडा | " |
| पाली | चातुर्मास |
| धेनावास | शेषकाल |
| साटोती | " |
| बगडी | " |
| रोयट | " |
| पाली | " |
| पीपाड़ | चातुर्मास |
| सेरवा | " |
| नेणवा | शेषकाल |
| पुर | चातुर्मास |
| नेणवा | शेषकाल |
| माघोपुर | " |
| उणियारा | " |
| नेणवा | " |
| भानरदा | " |
| हन्द्रगड़ | " |
| माघोपुर | चातुर्मास |
| भयवतगड़ | शेषकाल |
| नेणवा | " |
| भूमी | शेषकाल |
| सवाई जयपुर | " |
| माघोपुर | " |
| बेसवा | चातुर्मास |
| बेसवा | शेषकाल |
| मोमुन्दा | " |



| गाँव | समय |
|----------------------|-----------|
| नाथद्वारा | " |
| गोगूदा | " |
| गोगूदा या उसके आसपास | " |
| देवगढ़ | " |
| सिरियारी | " |
| पाली | चातुर्मास |
| घाणोद आदि | शेषकाल |
| पीपाड़ | " |
| सोजत | " |
| बगड़ी | " |
| कंटालिया | " |
| सिरियारी | चातुर्मास |

परिशिष्ट-३ (क)

दोहा

भिन्नु समय मे जो हूँ, मुनि उनका पवित्र ।
दीक्षा दर्पण मे प्रकट, देखो उनका चित्र ॥

प्रथमाचार्य श्री भिन्नु गणी के समय में दीक्षित साधुओं का दीक्षा-दर्पण

| देम | संत्या | जानि | सदया | वय | सदया | नाबा० या० | संत्या | स्वर्गवास गण बाहर | सदया |
|--------|--------|--------|------|-------------|------|------------|--------|-------------------|------|
| मारवाण | १७ | ओमवास | २२ | अविवाहित | ६ | नावातिग | ५ | स्वर्गवास | २६ |
| मेवाण | १४ | पोरवास | १ | विवाहित | ३ | वातिग | ४४ | गण बाहर | २० |
| दसी | २ | मरावणी | २ | स्त्री छोड़ | ३ | (वपस्क जो | | | |
| राहोली | २ | मुनार | १ | गपली | ० | १८ वर्ष मे | | | |
| गुडगाव | १ | अग्रान | २३ | अग्रान | ३४ | अधिक हो) | | | |
| अग्रान | ११ | | | | | | | | |
| | ८८ | | | | | | | | |

आचार्य धी भिक्षुगणी के समय के साधुओं का न्याय-दर्पण

| आचार्य सख्या | आचार्य नाम | साधु दीक्षा | स्वर्गवाग | गणवाहुर | विद्यमान |
|--------------|------------|-------------|-----------|---------|----------|
| १ | भिक्षुगणी | ४६ | १० | १८ | २१ |

आचार्य भिक्षु के समय ४६ साधु दीक्षित हुए । उनमें स्वामीजी के समय १० साधु दिवंगत हुए और १८ साधु गण से अलग हुए ।
 जोष २१ साधु स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान थे ।

एक सो नें ब्यार रे आसरे, दिव्या दीपी निन्न गण मांय हो ।

एकबीस साधु सत्तावीस साधव्यो, मेत्ती परमव पोहता मुनिराय हो ॥

(हेम मुनि रचित भीमू चरित डा० १३ गा० १५)

मुनि इकबीस सहस्रमजा, समजी सत्तावीस ।

मेत्ती नै परमव गया, भिक्षु गण ना ईश ॥

(आर्य दर्जन डा० १ दो० ४)

प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी के समय दीक्षित साधु

| क्रम-सं० | नाम | गाय | गायनालय | बीजा संवत् | स्वर्ण, गणवाहर महत् |
|----------|---------------------|---------|---------|---------------------|---------------------|
| १ | पिण्णामत्री | साध्या | १८१६ | १८३३ | |
| २ | पनेट्टचन्दत्री | " | १८१६ | १८३१ | |
| ३ | श्री भिक्षु गणिगत्र | कटामिषा | १८१६ | १८६० | |
| ४ | वीरभाणत्री | सोत्रग | १८१६ | १८३० माघ सुदि | |
| ५ | टोह्मत्री | | १८१६ | ६ में त्रेड सुदि ११ | |
| ६ | हरनापत्री | | १८१६ | के बीच गणवाहर | |
| ७ | श्री भारीमावत्री | मूठा | १८१६ | १८३८ | |
| ८ | त्रिभुवोत्री | | १८१६ | १८६६ और ४८ के | |
| ९ | सुन्दरामत्री | | १८१६ | बीच | |
| १० | अर्धरामत्री | | १८१६ | १८७८ | |
| ११ | धर्मरामत्री | सोहावट | १८२२ | १८२४, २५ के पूर्व | |
| १२ | निलोचन्दत्री | " | १८२४ | गणवाहर | |
| १३ | मोत्रीरामत्री | बेलाकाम | १८२६ | १८६२ | |
| १४ | शिवत्रीरामत्री | " | १८२४-२५ | १८६१ | |
| १५ | चन्द्रभाणत्री | बोदामर | १८२४-२५ | १८२४ या २५ के | |
| | | पुर | १८२४-२५ | पूर्व गणवाहर | |
| | | | १८२४-२५ | १८३६ गणवाहर | |
| | | | १८२४-२५ | कुछ समय पश्चात् | |
| | | | १८२४-२५ | गणवाहर | |
| | | | १८२४-२५ | १८३२ सुन्दर- | |
| | | | १८२४-२५ | वदि ७ के पूर्व | |
| | | | १८२४-२५ | १८३६ गणवाहर | |

| क्र.सं० | नाम | गाँव | साधनावास | बीछा सञ्चालन, गणवाहर संवत् |
|---------|--------------|-----------------|---|--|
| १६ | अणश्री | भेरवा | १८२४, २५ के बाद १८३१ के पूर्व | १८३२ जेठ सुदि ११ के बाद १८३७ माघ यदि ६ के पूर्व गणवाहर |
| १७ | पनत्री | | १८२४, २५ के बाद १८३१ के पूर्व | १८३२ सुगसर यदि ७ के पूर्व गणवाहर |
| १८ | सगोकचन्द्रजी | | १८३२ जेठ सुदि ११ के बाद | १८३७ के चालुमास के बाद गणवाहर |
| १९ | शिवरामजी | | १८३२ जेठ सुदि ११ के बाद | १८३७ के चालुमास के बाद गणवाहर |
| २० | नगजी | बुडया | १८३२ जेठ सुदि-११ के बाद-१८३७ माघ यदि-६ के पूर्व | १८४६, ४८ के बाद १८५३ माघ सुदि १३ के पूर्व |
| २१ | मामजी | बूदी | १८३८ | १८६६ |
| २२ | छेतगीजी | नाथद्वारा | १८३८ | १८८० |
| २३ | समजी | बूदी | १८३८ | १८७० |
| २४ | सम्भूजी | देवगढ़ | १८३८ | १८३९ कार्तिक शुक्ला २ के पूर्व गणवाहर |
| २५ | सधजी | गुजरात (प्रांत) | १८३९ कार्तिक शुक्ला २ के बाद और स० १८४१ चैत्र यदि १३ के पूर्व | १८४१ के आषाढ में या स० १८४२ के चालुमास में गणवाहर |
| २६ | नानजी | | १८४१ | १८७१ |
| २७ | नेमजी | रोयट | १८४१ द्वितीय चैत्र यदि १० के बाद और स० १८४३ के पूर्व | १८४९-४८ के बाद स० १८५३ माघ सुदि १३ के पूर्व |

| क्र.सं० | नाम | गाँव | सामनाकाग बीगा सप्त स्वर्ग, गणवाहर | |
|---------|-------------------------|----------------|--------------------------------------|---------------------------------|
| २८ | बेगीरामजी | बगडी | १८४४ | १८६० |
| २९ | रामचन्द्रजी (बडा) | | १८४४-४७ के बीच | १८५० में गणवाहर |
| ३० | मुरतोजी | | १८४४-४७ के बीच | मुल्लिच बा गणवाहर |
| ३१ | वर्धमानजी (बडा) | | १८४४-४७ के बीच | १८५५ |
| ३२ | रामचन्द्रजी (छोटा) | | १८४४-४७ के बीच | १८५३ मा १३ के पूर्व बाहर |
| ३३ | मयारामजी | | १८४४-४७ के बीच | १८५५ के गणवाहर |
| ३४ | वर्धनजी | धोरावड | १८४४-४७ के बीच | १८५०-५३ सुदि १३ के गणवाहर |
| ३५ | सुन्दरजी | टुंगज | १८४७ | १८६४ |
| ३६ | हेमराजजी | तिरियारी | १८५३ | १९०४ |
| ३७ | उदयरामजी | केसवा | १८५५ | १८६० चै के पूर्व |
| ३८ | कुसासजी | बागोर | १८५७ | १८६६ में बाहर |
| ३९ | ओटोजी | धारचिया | १८५७ | १८६० मा सुदि १३ के गणवाहर |
| ४० | नाथोजी | देसूरी | १८५७ | १८५९ में बाहर |
| ४१ | श्री रायचंदजी स्वामी | बडी रावलिया | १८५७ | १९०८ |
| ४२ | ताराचंदजी | गगापुर | | १८७० |
| ४३ | दुग्गरसीजी | गगापुर | १८५७ | १८६८ |
| ४४ | जीवोजी | तामोल | १८५७ | १८६० |

साधनाकाल

| क्रम-सङ्ख्या नाम | गाँव | दीक्षा सवत् | स्वर्ग, गणवाहर सवत् |
|------------------|--------|-------------|---------------------|
| ४५ जोगीदासजी | केलवा | १८५७ | १८५६ |
| ४६ जोधोजी | करेडा | १८५७-५८ | १८७५ |
| ४७ भगजी | खेरवा | १८५६ | १८६६ |
| ४८, १ भागचंदजी | वीदासर | १८५६ | १८६७ |
| ४९ भोपजी | कोशीफल | १८५६ | १८६६ |

आचार्य भिक्षु के समय दिवंगत साधु

| क्रम | नाम | बीशाक्रम | देवसोक सप्तत् |
|------|-----------------|----------|---|
| १. | श्री धिरपालजी | १. | १८३३ |
| २. | " फतेहचंदजी | २. | १८३१ |
| ३. | " भिक्षु गणिराज | ३. | १८६० |
| ४. | " टोकरजी | ५. | १८३८ |
| ५. | " हरनाथजी | ६. | १८४६ और ४८ के बीच |
| ६. | " शिवजीरामजी | १४. | १८३२ मृगसर यदि ७ के पूर्व। |
| ७. | " नगजी | २०. | १८४६-४८ के बाद १८१३ माघ सुदि १३ के पूर्व। |
| ८. | " नेमजी | २७. | " " |
| ९. | " वधमानजी | ३१. | १८५५ |
| १०. | " जोगीदासजी | ४५ | १८५६ |

आचार्य भिक्षु के समय गणवाहर साधु

| क्रम | नाम | बीशाक्रम | गणवाहर सप्तत् |
|------|--------------|----------|--|
| १. | वीरभाणजी | ४. | १८३२ माघ सुदि ६ से जेठ सुदि ११ के बीच। |
| २. | लिप्यमोत्री | ८. | १८२४, २५ के पूर्व |
| ३. | अमरोत्री | ११. | १८२४ या २५ के पूर्व |
| ४. | निमोक्चन्दजी | १२. | १८३६ |
| ५. | मोत्रीरामजी | १३. | कुछ समय पश्चात् |
| ६. | चन्द्रभाणजी | १५. | १८३६ |
| ७. | अगरोत्री | १६. | १८३२ जेठ सुदि ११ के बाद १८३७ माघ सुदि ६ के पूर्व |

| क्रम | नाम | दोषा-क्रम | गणवाहर सबत् |
|------|------------------|-----------|--|
| ८. | पनजी | १७. | १८३२ मृगशिरा वदि ७ के पूर्व |
| ९. | सतोपचरजी | १८. | १८३७ के चातुर्मास के बाद |
| १०. | शिवरामजी | १९. | १८३७ के चातुर्मास के बाद |
| ११. | शम्भूजी | २४. | १८३९ कार्तिक शुक्ला २ के पूर्व |
| १२. | मिषजी | २५. | १८४१ के आषाढ़ में या सबत् १८४२ के चातुर्मास में |
| १३. | रूपचन्दजी (बड़ा) | २६. | १८५० |
| १४. | मुरतोजी | ३०. | कुछ दिन बाद |
| १५. | रूपचन्दजी | ३२. | १८५३ माघ सुदि १३ के पूर्व |
| १६. | मयारामजी | ३३. | १८५५ के बाद |
| १७. | वखतोजी | ३४. | १८५०-५३ माघ सुदि १३ के बीच |
| १८. | नाथूजी | ४०. | १८५६ |

आचार्य मिश्र के स्वर्गवास के समय विद्यमान साधु

| क्रम | नाम | दोषा-क्रम | बाद में दिवगत या गणवाहर |
|------|----------------|-----------|----------------------------|
| १. | श्री भारीमालजी | ७. | १८७८ |
| २. | " सुखरामजी | ८. | १८६२ |
| ३. | " बखेरामजी | १०. | १८६१ |
| ४. | " सामजी | २१. | १८६६ |
| ५. | " सेतमीजी | २२. | १८८० |
| ६. | " रामजी | २३. | १८७० |
| ७. | " नानजी | २६. | १८७१ |
| ८. | " वेणीरामजी | २८. | १८७० |
| ९. | " सुखजी | ३५. | १८६४ |
| १०. | " हेमराजजी | ३६. | १८०४ |
| ११. | " उदयरामजी | ३७. | १८६० चैत्र महीने के |
| १२. | " कुसालजी | ३८. | १८६६ गणवाहर |
| १३. | " ओटोजी | ३९. | १८६० गणवाहर |

| வகை | பகுதி | தமிழ்ச் சொல் | தமிழ் மொழியின் பாடல்களில் |
|-----|-----------------|--------------|------------------------------|
| அ | அதி - அ - அ - அ | அ - | அ - அ - |
| ஆ | ஆ - ஆ - ஆ - ஆ | ஆ - | ஆ - ஆ - |
| இ | இ - இ - இ - இ | இ - | இ - இ - |
| ஈ | ஈ - ஈ - ஈ - ஈ | ஈ - | ஈ - ஈ - |
| உ | உ - உ - உ - உ | உ - | உ - உ - |
| ஊ | ஊ - ஊ - ஊ - ஊ | ஊ - | ஊ - ஊ - |
| ஋ | ஋ - ஋ - ஋ - ஋ | ஋ - | ஋ - ஋ - |
| ஌ | ஌ - ஌ - ஌ - ஌ | ஌ - | ஌ - ஌ - |
| ஍ | ஍ - ஍ - ஍ - ஍ | ஍ - | ஍ - ஍ - |
| ஶ | ஶ - ஶ - ஶ - ஶ | ஶ - | ஶ - ஶ - |
| ஷ | ஷ - ஷ - ஷ - ஷ | ஷ - | ஷ - ஷ - |

प्रथमाचार्य श्री मिहगणो के समय कीमत साधियाँ

| क्रम | नाम | गाँव | कीमती सं० | साधनाकाल |
|------|----------|------|------------------------|--|
| | | | | स्वर्ग गणवाहर समय |
| १. | कुशालाजी | | १८२१ | १८५४ के पञ्चाङ्ग ६० के बीच भिन्नु पुग में |
| २. | मट्टूजी | | १८२१ | १८३४-५२ के बीच |
| ३. | अत्रवूजी | | १८२१ | १८३४ जेठ मूदि ६ के बाद १८३७ माघ बदि ६ के पूर्व गण वाहर |
| ४. | गुजालाजी | | १८२१ और १८२३ के बीच | १८३७-५२ के बीच |
| ५. | देऊजी | | " | १८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय |
| ६. | नेतूजी | | " | १८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय गणवाहर |
| ७. | गुमानाजी | | " | १८३४-५२ के बीच |
| ८. | रसुवाजी | | " | १८३४-५२ के बीच |
| ९. | जीऊजी | रीपा | " | १८६० के पूर्व स्वामीजी के समय |
| १०. | फत्तूजी | | १८३३ | १८३७ गणवाहर |
| ११. | अगूजी | | " | " |
| १२. | अत्रवूजी | | " | " |
| १३. | षट्ठूजी | | " | १८३७-५४ में तीसरी बार गण वाहर |
| १४. | चैनाजी | | " | १८३७ में गणवाहर |
| १ | मैनाजी | | १८३३-३४ | १८६० स्वामीजी के समय |
| | धन्नुजी | पुर | " | १८५८-१८५९ में गणवाहर |

आचार्यश्री भिक्षुगणों के समय की साध्वियों का न्याय-रूपण

| आचार्य सख्या | आचार्य नाम | साध्वी दीक्षा | स्वर्गवास | गणबाहुर | विद्यमान |
|--------------|------------|---------------|-----------|---------|----------|
| १ | भिक्षुगणी | ५६ | १२ | १७ | २७ |

आचार्य भिक्षु के समय ५६ साध्विया दीक्षित हुईं। उनमें स्वामीजी के समय १२ साध्विया दिवसन हुई और १७ साध्विया गण से अलग हुईं। शेष २७ साध्विया स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान रही।

एक सौ नौ हजार रे आसरे, दिव्या दीधी निजपण भाव हो।
एकवीस साध सतावीस साधव्या, मेली परभव वोहूना मुनिराव हो॥

(हेम मुनि रचित भोग्यु चरित श० १३ भा० १५)

मुनि एकवीस मुद्राभ्या, समणी मतावीस।
मेली नै परभव गया, भिक्षु गण ना ईत॥

(आर्या दर्जन श० १ दो० ५)

प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी के समय दीक्षित साध्वियां

| क्रम | नाम | गांव | दीक्षा स० | साधनाकाल |
|------|----------------------|------|------------------------|--|
| | | | | स्वर्ग गणबाहर सबत् |
| १. | कृशासाजी | | १८२१ | १८३४ के परवात् ६० के बीच भिक्षु गुग मे |
| २ | मट्टुजी | | १८२१ | १८३४-५२ के बीच |
| ३ | अजबूजी | | १८२१ | १८३४ जेठ सुदि ६ के बाद १८३७ भाष वदि ६ के पूर्व गण बाहर |
| ४. | सुजाणाजी | | १८२१ और १८२३ के बीच | १८३७-५२ के बीच |
| ५ | देऊजी | | " | १८३४ के पूर्व या बाद मे स्वामी जी के समय |
| ६ | नेतूजी | | " | १८३४ के पूर्व या बाद मे स्वामी जी के समय गणबाहर |
| ७ | गुमानाजी | | " | १८३४-५२ के बीच |
| ८. | कसुवाजी | | " | १८३४-५२ के बीच |
| ९ | जीऊजी | रीया | " | १८६० के पूर्व स्वामीजी के समय |
| १०. | फत्तूजी | | १८३३ | १८३७ गणबाहर |
| ११. | बधूजी | | " | " |
| १२. | अजबूजी | | " | " |
| १३. | चडूजी | | " | १८३७-५४ में तीसरी बार गण बाहर |
| १४. | चंताजी | | " | १८३७ मे गणबाहर |
| १५. | मेणाजी | | १८३३-३४ | १८६० स्वामीजी के समय |
| १६ | धम्नूजी (धम्नाजी) | पुर | " | १८५८-१८५९ मे गणबाहर |

आचार्यश्री भिक्षुगणों के समय की साध्वियों का न्याय-वर्णन

| आचार्य सख्या | आचार्य नाम | साध्वी दीक्षा | स्वर्गवास | गणबाहुर | विद्यमान |
|--------------|------------|---------------|-----------|---------|----------|
| १ | भिक्षुगणी | ५६ | १२ | १७ | २७ |

आचार्य भिक्षु के समय ५६ साध्विया दीक्षित हुईं। उनमें स्वामीजी के समय १२ साध्विया दिवंगत हुईं और १७ साध्विया गण से अलग हुईं। शेष २७ साध्विया स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान रही।

एक सौ नौ चार रे आसरे, दिव्या दीधी निजगण माय हो।

एकबीस साय सतावीस सायव्या, मेली परभव पोहता मुनिराय हो॥

(हेम मुनि रचित धोषू चरित ढा० १३ सा० १५)

मुनि इकबीस मुहरामणा, समनो सतावीस।

मेली नै परभव गया, भिक्षू गण ना ईय ॥

(आर्या दर्शन ढा० १ दो० ४)

प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी के समय बोधित साध्वियाँ

| क्रम | नाम | गांव | बोधा सं० | साधनाशाला |
|------|----------------------|------|------------------------|--|
| | | | | स्वर्ग गणबाहर सवन् |
| १. | कृष्णाजी | | १८२१ | १८१४ के पश्चात् ६० के बीच भिक्षु युग में |
| २. | मट्टजी | | १८२१ | १८३४-४२ के बीच |
| ३. | मन्नूजी | | १८२१ | १८३४ जेठ सुदि ६ के बाद १८३७ माघ यदि ६ के पूर्व गण बाहर |
| ४. | सुजाणाजी | | १८२१ और १८२३ के बीच | १८३७-४२ के बीच |
| ५. | देऊजी | | " | १८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय |
| ६. | नेनूजी | | " | १८३४ के पूर्व या बाद में स्वामी जी के समय गणबाहर |
| ७. | गुमानाजी | | " | १८३४-४२ के बीच |
| ८. | बसुबाजी | | " | १८३४-४२ के बीच |
| ९. | जीऊजी | रीया | " | १८६० के पूर्व स्वामीजी के समय |
| १०. | फत्तूजी | | १८३३ | १८३७ गणबाहर |
| ११. | अलूजी | | " | " |
| १२. | मन्नूजी | | " | " |
| १३. | बट्टूजी | | " | १८३७-४४ में तीसरी बार गण बाहर |
| १४. | चैनाजी | | " | १८३७ में गणबाहर |
| १५. | भैणाजी | | १८३३-३४ | १८६० स्वामीजी के समय |
| १६. | धन्नुजी (धन्नाजी) | पुर | " | १८५८-१८५९ में गणबाहर |



| क्रम सं० | नाम | गांव | बीजा संवत् | साधनाकाल स्वर्ग, गणबाहर |
|-------------|----------|------------|----------------|--|
| १७ | केलीजी | | " | १८५८-१८५९ में गण |
| १८ | रतूजी | | " | " |
| १९ | नटूजी | | " | " |
| २० | रंगूजी | गायडारा | १८३८ | १८६० के पूर्व स्वामीजी के समय |
| २१ | संदाजी | नाथ द्वारा | १८३८-४४ के बीच | १८६० के पूर्व स्वामीजी के समय |
| २२ | फूलाजी | कंटालिया | " | १८५५-६० के बीच स्वामीजी के समय |
| २३ | अमराजी | | " | १८६०-६८ के बीच भारीमाल के समय |
| २४ | रतूजी | | " | १८५२ के पूर्व या १८५२-६० के बीच स्वामीजी के समय गणबाहर |
| २५ | तेजूजी | ढोलक बोल | " | १८६०-६८ के बीच भारीमाल युग में |
| २६ | वनाजी | | " | १८५८-६० के बीच स्वामीजी के समय गणबाहर |
| २६ | बगवूजी | बगड़ी | १८४४ | १८७९ खैत बंदि १ के बाद ऋषिराय युग में |
| २८ | हीराजी | पचपदरा | " | १८७८ भारीमाल युग में |
| २९ | नगाजी | बगड़ी | " | १८६६ |
| ३० | अजबूजी | रोयट | " | १८८८ |
| ३१ | पन्नाजी | सिरियारी | १८४४-४८ के बीच | १८६०-६८ के बीच भारीमाल युग में |
| ३२ | साताजी | काकडोली | " | १८५२ के बाद भिक्षु समय गणबाहर |
| ३३ | सुमानाजी | तासोल | " | १८६०-१८६८ के बीच भारी-माल युग में |
| ३४ | सेमाजी | भूदी | " | १८६०-६८ के बीच भारीमाल युग में |

| क्रम सं० | नाम | गांव | हीला सं० | साधनाथाल रवर्ग, गणवाहर संवत् |
|-------------|---------|---------------------|-------------------|------------------------------------|
| ३५ | जगुजी | बाँवडोनी | १८४४-४८ के बीच | १८५२ के पूर्व गणवाहर |
| ३६ | चोटाजी | बाँवडोनी | | " |
| ३७ | रुपाजी | रावसिया | १८४८ | १८५७ |
| ३८ | सकपाजी | माछोपुर | १८४८-५२ के बीच | १८६०-६८ के बीच— भारीमास युग में |
| ३९ | बरजूजी | बड़ी पादू | १८५२ | १८८७ |
| ४० | बीकाजी | रोपा | " | १८८७ |
| ४१ | वनीजी | बड़ी पादू | " | १८६७ |
| ४२ | वीराजी | रुड़ीवा (मारवाह) | " | १८५२-५४ में दूसरी बार गणवाहर |
| ४३ | उदाजी | | १८५२-५६ के बीच | १८६०-६८ के बीच भारीमास युग में |
| ४४ | सुमांजी | नाथद्वारा | १८५६ | १८६६ या ६७ |
| ४५ | हस्तूजी | पीपाह | १८५७ | १८६७ |
| ४६ | कुमांजी | रावसिया | " | १८६७ |
| ४७ | बरतूजी | पीपाह | " | १८७६ |
| ४८ | जोताजी | सावा | " | १९०९ |
| ४९ | नोराजी | सिरियारी | " | १८७२ |
| ५० | कुशमाजी | पाली | १८५६ | १८७० |
| ५१ | नायाजी | पाली | " | १८६७ |
| ५२ | बीकाजी | पाली | " | १८८६ |
| ५३ | गोमांजी | रोयट | " | १८६० |
| ५४ | जमोदाजी | खेरवा | " | १८६० के बाद १८६५ या ७० के पूर्व |
| ५५ | दाहीजी | खेरवा | " | " |
| ५६ | जोकाजी | खेरवा | " | " |

आचार्य भिक्षु के समय दिवंगत साध्वियां

| क्रम | नाम | बीक्षा क्रम | देवलीक संवत् |
|------|---------------|-------------|---------------------------|
| १ | श्री कुशालाजी | १ | १८५४ के पश्चात् ६० के बीच |
| २ | " मट्टुजी | २ | १८३४-४२ के बीच |
| ३ | " गुजानाजी | ४ | १८३७-४२ के बीच |
| ४ | " देऊजी | ५ | १८३४ के पूर्व या बाद में |
| ५ | " गुमानाजी | ७ | १८३४-४२ के बीच |
| ६ | " वसुम्बाजी | ८ | " " |
| ७ | " जीऊजी | ९ | १८६० के पूर्व |
| ८ | " मेणाजी | १५ | १८६० |
| ९ | " रणूजी | २० | १८६० के पूर्व |
| १० | " गदाजी | २१ | १८६० के पूर्व |
| ११ | " फूलाजी | २२ | १८५५-६० के बीच |
| १२ | " रपाजी | ३७ | १८५७ |

आचार्य भिक्षु के समय गणवाहर साध्वियां

| क्रम | नाम | बीक्षा क्रम | गणवाहर संवत् |
|------|---------------------|-------------|---|
| १ | श्री अजबूजी | ३ | १८३४ जेठ सुदि ९ के बाद १८३७ माघ यदि ९ के पूर्व |
| २ | " नेतूजी | ६ | १८३४ के पूर्व या बाद में |
| ३ | " पतूजी | १० | १८३७ |
| ४ | " अक्यूजी | ११ | " |
| ५ | " अजबूजी | १२ | " |
| ६ | " बडूजी | १३ | १८३७, १८५४ में तीसरी बार |
| ७ | " पैनाजी | १६ | १८३७ |
| ८ | " धन्तूजी (धन्नाजी) | १९ | १८५८ या ५९ में |
| ९ | " बेमीजी | १७ | " " |
| | " रणूजी | १८ | " " |
| | " नडूजी | १९ | " " |
| | " रणूजी | २६ | १८५२ के पूर्व अथवा १८५२-९० के बीच |
| १३ | " बत्ताजी | २९ | १८५८-१८६० के बीच |
| १४ | " मामाजी | ३२ | १८५२ के बाद |

| क्रम | नाम | होता क्रम | मसराहर मन्त्र |
|------|----------|-----------|------------------------|
| १५ | " जगूजी | १५ | १८१२ के पूर्व |
| १६ | " जोराजी | १६ | " " " |
| १७ | " बीराजी | ४२ | १८१२, १४ में दूसरी बार |

आचार्य भिक्षु के स्वर्गोत्थान के समय विद्यमान साध्वियाँ

| क्रम | नाम | होता क्रम | बार में दिवंगत |
|------|----------------|-----------|---------------------------------|
| १ | सागरीजी ममराजी | २३ | १८६०-६८ के बीच भारी० युग में |
| २ | " तेजुजी | २५ | " " " |
| ३ | " वगजूजी | २७ | १८७६ के बाद अतिराव युग में |
| ४ | " हीराजी | २८ | १८७८ भारीमात्र युग में |
| ५ | " मगाजी | २९ | १८६६ |
| ६ | " मजजूजी | ३० | १८८८ |
| ७ | " पन्नाजी | ३१ | १८६०-६८ के बीच भारी० युग में |
| ८ | " गुमानाजी | ३३ | " " " |
| ९ | " मेमाजी | ३४ | " " " |
| १० | " ममराजी | ३८ | " " " |
| ११ | " वरजूजी | ३९ | १८८७ |
| १२ | " बीराजी | ४० | १८८७ |
| १३ | " वनाजी | ४१ | १८६७ |
| १४ | " उदाजी | ४३ | १८६०-६८ के बीच भारी० युग में |
| १५ | " शूमाजी | ४४ | १८६६ या ६७ |
| १६ | " हस्तूजी | ४५ | १८६७ |
| १७ | " कुशासाजी | ४६ | १८६७ |
| १८ | " कस्तूजी | ४७ | १८७६ |
| १९ | " जोराजी | ४८ | १८०८ |
| २० | " मोराजी | ४९ | १८७२ |
| २१ | " कुशासाजी | ५० | १८७० |
| २२ | " नाथाजी | ५१ | १८६७ |
| २३ | " बीराजी | ५२ | १८८६ |
| २४ | " गोमाजी | ५३ | १८६० |
| २५ | " जशोदाजी | ५४ | १८६० के बाद १८६८ या ७० के पूर्व |
| २६ | " बाहीजी | ५५ | " " " |
| २७ | " नोराजी | ५६ | " " " |

४. श्री वीरभाणजी (सोजत)

(दीक्षा स० १८१६, १८३२ माघ सुदि ६ मे जेठ सुदि ११ के बीच गणवाहर)

रामायण-छन्द

भैरव शासन नन्दन, बन है आध्यात्मिक गुण का आधार।
स्वच्छ 'उमग-निमग' (नदी) जलोपम बहती उसमें सयम धार।
शुद्ध साधना करते वे तो पाते आत्मिक गुण साकार।
स्खलित साधु-पद से होते वे बने विषम बीज दुःखकार॥१॥

सय—सय से बढ़कर...

साधना की है कसौटी भाव मंथन के सही।
अन्यथा है लाभ भुक्किल देय तो ग्राते बही॥ध्रुवा॥
साध्य है सर्वोच्च शिव-मुख, शुद्ध सप्रिय साधना।
स्वस्थ साधक जागरित हो आत्म-द्रष्टव्य-निग्रही॥२॥
आप्त-बाणी का हृदय में अटलतम विश्वास हो।
स्वयं को अल्पज्ञ माने हो न किंचित् आप्रही॥३॥
शासना गुरुदेव की आराधना की है कडी।
प्राणप्रण से पाल तो फिर शान्ति से विचरो कही॥४॥
महाग्रन्थर साधु रमते समिति मयुत गुप्ति में।
धर्म है आचार पहला फिर कला विद्या सही॥५॥
एक की यदि हो कमी तो मूल में ही भूल है।
स्यान-च्यून हो फल खजूरो के पुरुष पाता नहीं॥६॥
विरति में मुख, दुःख है आसक्ति में, सशय नहीं।
कठिन मिलना गाय के बिन दूध घी मक्खन दही॥७॥
जान के अनजान बनते मोह-मदिरा-मान से।
ध्यान दे देखो नमूना आ रहा धाराबही॥८॥

रामायण-छन्द

सोजत वासी वीरभाणजी धीगड ओसवाल वंशज ।
वचन मे मा बाप मरे वे परिजन के घर पले सहज ।
ये प्रारभ समय से अस्थिर नही नियन्त्रित अन्दर से ।
गुरु रुघनाथ पास में दीक्षित हुए प्रथम 'हर' 'टोकर' से ॥१६॥
स्वामीजी के साथ किया पन्द्रह मे पावरा राजनगर ।
चतुर्मास के बाद चले हैं दो दल मे पाचो मुनिवर ।
कहा भिक्षु ने बात न करना मेरे आने से पहले ।
किन्तु न रहा गया उनसे तो वचन विभेदात्मक निकले ॥१७॥
श्रावक सच्चे राजनगर के, भूल रहे प्रभु-पथ को हम ।
सुन अवाक् रुघनाथ रहे हैं, बोल रहा क्या बिना फहम ।
मेरे पास बानगी केवल पूर्ण हकीकत उनके पास ।
आयेगे तब दल लायेगे क्या निष्कर्ष निकाला खास ॥१८॥
बदल गया रुख उनका तत्क्षण पहुंचे जब श्री भिक्षु वहा ।
रग देखकर समझ गये वे वीरभाण ने वृत्त कहा ।
वृद्धि-विलक्षण स्वामीजी ने विनय-मुक्त सब रखे विचार ।
किन्तु न कोई हल निकला तब अलग हुए है साहस धार ॥१९॥
धर्म-शान्ति में भिक्षुराज के वीरभाणजी साथ हुए ।
नव दीक्षा ले भिक्षु-योग से जन मे कुछ प्रख्यात हुए ।
चर्चावादी पदे-लिखे थे अग्रगण्य हो विचर रहे ।
पर अविनय उच्छ्रंखलता से बने बनाये महल ढहे ॥२०॥

सय—राम राजा राम प्रजा...

सुगुरु अविनय से अविनयी शिष्य जन जब हो रहे ।
शुद्ध संयम साधना से हाथ तब वे धो रहे ॥ध्रुवा॥
वीरभाण विनेय (शिष्य) गुरु के कुछ समय के बाद में ।
अविनयी, मानी बने फिर शिष्य लोलुप स्वाद मे ।
संयमार्थी एक 'पन्ना' नाम का भाई हुआ ।
दी न सम्मति शिष्य करने की, उन्हे तब दुःख हुआ ।
दृष्टि को विपरीत कर सर्वस्व अपना खो रहे ॥२४॥
चोपई सुविनीत ओ अविनीत पर गुरु ने रची ।
स्वयं पर सब खीचली है, हृदय मे उलटी जची ।

बड़ी है उड़ता सह चडता अविवेक में।
 मय से विच्छेद गुरु ने कर दिया पल एक में।
 गया समय गई श्रद्धा भार कृत्रिम हो रहे' ॥१६॥
 'इन्द्रिया मायस' आदिक विषमनर की स्थापना।
 भिक्षु ने की बहम उनमें तब हुई सद्भावना।
 जमी श्रद्धा और निर्णय नई दोषा का किया।
 तदनुगामी धारको ने आ उन्हे भड़का दिया।
 'दोष है तब आपमें' गुन शिथिल फिर वे हो रहे' ॥१७॥
 रहे कोश आदि पुर में किये आकर-आविका।
 गिर्य भी मुड़ि किये बहु ध्यान न रहा जाविका'।
 भिक्षु के प्रीत यथा है विश्वास हादिक प्रेम भी।
 भित्त में मूर्ति गादियों को पूछो गुण-शेष भी।
 गायत्री को कर दानी बीज मैत्रो यो रहे' ॥१८॥
 प्रथम निज धारका को कहा, नष्टु रिता से हुए।
 शर म मय मृग्य के ये पुष्पकादिक वस्तुगुण।
 भिक्षुगण के मायुभा को सोपना उत्थाग में।
 प्रथमो दत्ता नहीं गुम स्वयं रचना पाग में।
 न'द म प'राक की व शेष में तो मों -२-

घटना सुनाने हुए कहा—‘राजनगर के आदर्शों का कथन सत्य है और हम साधुत्व का सम्यग् पालन नहीं कर रहे हैं। मेरे पास मे तो केवल नमूना मात्र है, भीखणजी आने के बाद समय बृत्तात सुनायेंगे।’ यह सुनते ही उनके दिल में उदासी आ गई। बाद में स्वामीजी पहुंचे तब आचार्य रुघनाथजी का दृष्टिकोण बदला हुआ देखा। उन्होंने मन में जान लिया कि धीरभाणजी ने पहले आकर बात कह दी है, जिससे इनका मन खिंच गया है। स्वामीजी ने विनय पूर्वक आचार्य रुघनाथजी को प्रसन्न किया और अपने विचार उनके सम्मुख रखे। काफी समय तक परस्पर चर्चा करने पर तथा समझाने पर भी वे नहीं समझे तब स्वामीजी ने स० १८१६ चैत्र शुक्ला ६ को धगड़ी में उनसे सबंध विच्छेद कर लिया। उस समय स्वामीजी के साथ मुनि भारीमालजी, हरनाथजी, टोकरजी तो थे ही, पर धीरभाणजी भी सम्मिलित थे।

(भिक्षु जश रसायण ढा० २ से ४ के आधार से)

३ धीरभाणजी ने आचार्य भिक्षु के साथ नई दीक्षा स्वीकार की। वे पढ़-लिखकर तैयार हुए और अग्रगण्य रूप में भी विचरण करने लगे। किन्तु अविनय एवं उच्छृंखल-वृत्ति के कारण सन्मार्ग में भटक गये।

एक पन्ना नामक भाई दीक्षा लेने वाला था। धीरभाणजी उसे दीक्षित कर अपना शिष्य बनाना चाहते थे। परन्तु स्वामीजी ने उचित न भ्रमण कर उन्हें शिष्य बनाने की आज्ञा नहीं दी, जिससे उनकी दृष्टि विमुख बन गई।

स० १८३२ भाद्रपद सुदि ६ को स्वामीजी ने ‘विनीत-अविनीत की चौपई’ बनाई उसे धीरभाणजी ने अपने ऊपर रची हुई समझी। स्वामीजी ने उसी वर्ष विठोडा ग्राम में स० १८३२ मृगशिरा वदि ७ को भारीमालजी स्वामी को युवाचार्य पद दिया उसने सबंधित भामूहिक लेखपत्र (जम सध्या १) पर धीरभाणजी ने हस्ताक्षर तो किये पर वे बाद में कहने लगे कि मैंने शर्माशर्मा से हस्ताक्षर किये हैं

हस्ताक्षर करने के पश्चात् धीरभाणजी, अणदोजी (१६) के साथ ‘जेतावत्तो’ के गुदे’ पहुंचे। वहां अणदोजी ने धीरभाणजी को ‘विनीत-अविनीत की चौपई’ की कुछ डालें मनाई। तब धीरभाणजी ने उन्हें अपने पर रची हुई समझकर कहा—‘अब मुझे स्वामीजी के हृदय में विश्वास पैदा करना है। दूसरे माधुओं से तो स्वामीजी लिखत लिखाते हैं पर मैं उन्हें स्वयं उनके अनुशासन में चलने का निश्चित लिखकर दूंगा। उसके बाद उन्होंने इसी आशय का एक लेखपत्र लिखा और अणदोजी को पढ़कर सुनाया।

इसके बाद वे स० १८३२ माघ वदि १४ को रोयट पहुंचे। वहां आदर्शों द्वारा सुना कि पनजी (मण में बहिष्कृत) सिरियारी में स्वामीजी को गण में लेने की प्रार्थना कर रहा है। माघ सुदि ६ को धीरभाणजी ने अणदोजी को कहा—‘स्वामीजी ने पनजी को मेरा शिष्य होने की सभावना देकर छष्ट किया है।’

विनय-अविनय की झल्लें और उक्त लिखित के शिष्य में

निया। उनकी सामक मान्यता को दूर करने के लिए 'द्रव्यात्रीय भावत्रीय' की दाल तथा 'इन्द्रियवादी' की योग्यता की रचना की।

४. वीरभाणजी अलग होने के पश्चात् प्रायः कोरा, इन्द्रगढ़, भगवदगढ़, आदि क्षेत्रों में बिखरे। उन्होंने अनेक गाई बहनों को अपना अनुयायी बनाया। मैणा जाति के कई (लगभग २५, ३०) व्यक्तिगणों को दीक्षित भी किया। (दयाल)

‘पछे मैणा ने मुह्या साक्यात’

(भिरपू जग रसायन का० ८ गा० १४)

६. वीरभाणजी ने बाद में स्वामीजी के प्रति द्वेष भाव नहीं रखा। साधु-साध्वियों के मिलने पर अधिक प्रगल्भ होते। उनमें शिष्टाचार पूर्वक वार्तालाप करते तथा गोचरी के घर और पक्षमी की जगह बतलाते। (दयाल)

७. वीरभाणजी के रहने-रहते ही उनके अधिकांश शिष्य साधु वेग को छोड़कर गृहस्थ बन गये। उन्होंने अन्तिम समय में अपने श्रावकों से कहा—‘मेरे इन पुस्तक पत्रों को भीषणजी स्वामी के साधुओं को देना अपना तुम लोग इनका पठन-पाठन करना। परन्तु अन्य किसी को मत देना। उनके बाद वे परलोक चले गये।’ (दयाल)

(दयाल)

भयभ

दालगणी की दयाल में उन गढ़ में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—
“वीरभाणजी ने अलग होने के पश्चात् मैणा जाति के लगभग पचीस, तीस व्यक्तिगणों को दीक्षित किया था। उनमें से बहुत सारे दीक्षा को छोड़कर गृहस्थ बन गये थे। पर अवशिष्ट शिष्यों की परम्परा के एक सेजरामजी ही बचे थे। उनके गुरु जब मरणाशान्न थे तब सेजरामजी ने उनसे पूछा—‘आप तो अब अस्वस्थ हैं, अतः आपके पीछे मैं अरेला ही रहूंगा तब मेरा काम किस प्रकार चलेगा?’ गुरु ने उनको उत्तर देने हुए कहा—‘तेरापयी शुद्ध साधु हैं, उनमें और अपने में कोई अन्तर नहीं है। तुम उनमें सम्मिलित हो जाना।’ तब फिर सेजरामजी ने तर्क करते हुए पूछा—‘हम लोग तो इन्द्रियों को मावज मानते हैं, अतः इन्द्रियवादी हैं। किन्तु तेरापयी उन्हें शायोरणमिक-भाव मानते हैं, तब एक किस प्रकार हुए?’ तब गुरु ने कहा—‘यह कोई अन्तर नहीं है। मैंने भी अपने गुरु से यही बात पूछी थी तब उन्होंने कहा था कि अलग होने वाले को कुछ न कुछ तो भिन्नता बतलानी ही पड़ती है, अन्यथा उसका पृथक् होना लोगों पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। इसलिये तुम इस भेद की चिन्ता मत करना।’

इसके कुछ दिन पश्चात् सेजरामजी के गढ़ का देहावसान हो गया। सेजरामजी

भी लक्ष्मी ने अवरुध रहने लगे और कुछ समय बाद हड़ताल में मृत्यु को प्राप्त हो गये। उन्होंने अपने अन्तिम समय में अपने धावकों को गुरु द्वारा बरी गई उपर्युक्त बात को बतलाने हुए कहा था कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे पुत्रक पत्ने आदि सब लेखपदी साधुओं को दे देना।

मुनिश्री हीरामास्त्री (१२६) 'गुरुवास' का सं० १६२३ का चानुर्माण इंदौर में था। चानुर्माण करने के पश्चात् वे हड़ताल पधारे सब लेखरामत्री के धावकों ने उन्हें उपर्युक्त सारी बात सुनाने हुए पुत्रक पत्ने आदि लेने के लिए निवेदन किया। मुनिश्री ने उन सबको देखा, परन्तु काम के योग्य न समझकर सहन नहीं किया।

(कासपदी की बगल)

५. मुनिश्री टोकरजी (मयम पर्याय १८१६-१८३८)

६. मुनिश्री हरनाथजी (मयम पर्याय १८१६-१८४६ में ४८ के मध्य)

नवीन-छन्द

स्थानकवासी सम्प्रदाय को मुनि 'टोकर' 'हर' ने छोड़ दिया।
स्वामीजी से तार आन्तरिक दूढ़तम थड़ा का जोड़ लिया॥
तनु छायावत् बन सहयोगी करते वे विनय भक्ति अविरल।
हाजिर रहने गुरु-चरणों में हर समय जोड़कर हाथ मुगल॥१॥
गुरु सेवा का गौरव 'जिन' ने जंनागम में बहु गाया है।
वर तोर्यकर गोन बध का साधन उत्कृष्ट बताया है॥
बहु श्रेयस्कर पय आजीवन युग मुनियों ने अपनाया है।
तन्मय होकर परिचर्या में जीवन-सर्वस्व लगाया है॥२॥

रामायण-छन्द

होकर उनमें बड़े प्रभावित दिया भिनु ने दिन में स्थान।
चार तीर्थ में मुन-स्वर से गाये हैं उनके गुणगान॥
अग्निम क्षण में शब्द मनोंने बोले—दत्ता वा सहयोग।
गुप्त पूर्वक मयम पावा है वित समाधि रही शुभयोग॥३॥

बोहा

करने मुगुद मराहता, जिन गिन्ध्यों की सार्थ।
सौभाग्यो वे हैं बड़े, उनका जन्म इतार्थ॥४॥

रामायण-छन्द

बहु वर्षों तक धरण-स्थापना कर भर पाये नव आनोक ।
बगदी में अनशन धन लेकर 'टोकर' ऋषि पट्टये गुरतोक ॥
सपारा बूढ़ाह देग में कर 'हरनाथ' श्रमण ने सोप ।
पाया परित मरण उच्चतम निष्ठा क्यात मे नाम विशेष ॥५॥

१. मुनिजी टोकरजी और हरनाथजी पहले स्वानवधानी सम्प्रदाय के आचार्य
रथनाथजी के पास दीक्षा हुए थे । वहाँ वे वीरभाणजी से छोटे थे मन् रक्षामीजी
ने नई दीक्षा के समय उन दोनों को वीरभाणजी से छोटा रखा ।

राजनगर के थावकों को समझाने के लिए आचार्य रथनाथजी ने स्वामीजी
को सं० १८१५ में राजनगर जानुर्मान के लिए भेजा तब ५ सं० में वे दोनों भी
गाय थे ।

स्वामीजी जब स्वानवधानी सम्प्रदाय से असंग हुए तब वे दोनों स्वामीजी के
गाय रहे एवं स्वामीजी के साथ ही उन्होंने थावगादि क्रम में सं० १८१६ (मैरादि
क्रम से वि० म० १८१७) आपाङ्ग शुक्ला १२ को बेसवा में भाव दीक्षा ग्रहण
की ।

तेरापथ के उद्भव काल में तेरह सं० में वे दोनों थे ।

२. दोनों मुनि स्वामीजी के अन्य सेवक हुए । उन्होंने जो सेवा का आदर्श
उपस्थित किया वह युग-युग तक इतिहास के मुनहने पृष्ठों पर अंकित रहेगा ।

३. टोकरजी, हरनाथजी वीरभाणजी साथ ।
भीष्मूगिर भारीमातजी, दीक्षा दी निज हाथ ॥
एसाय तेई भिक्षू आविया, राजनगर मजार ।
सवत् अठारै पनरे सर्म, चोमासो गुणधार ॥

(भिक्षू जश रसायण का)

४. सवत् अठारै सतरोत्तरे रे, आपाङ्ग मुद पूनम आण ।
सयम दीघो स्वामीजी रे, कर जिन वचन प्रमाण ।
हरनाथजी हाकर हुंठा रे, टोकरजी सीछा मुवनीत ।
परम भगता सिय पाटवी रे, यां राखी पूज री परतीत ॥

(भिक्षू चरित्र का० ३ गा)

५. भिक्षू गण मे टोकरजी हरनाथ कै, ए मत्त दोनू तेरा माहि
अनसन करि नै आराधक पद आय कै, पूज्य भीखजी प्रशस्ति
(शासन विभास का)

स्वामीजी ने उनके द्वारा की गई सेवा का उल्लेख अपने अनशन के कुछ दिनों पूर्व बड़े भाव-भरे शब्दों में किया है। पढ़िये निम्नोक्त पद्य—

छेदने अथगर भिद्यु काहो, हरनाथ टोकर भारीमालजी।

यां तीना रा साश धी, सजम पाख्यो रमानजी॥

(टोकर, हरनाथ गुण वर्णन डा० १ गा० २)

सुन्दर बाण मुहामणी, निमुनै बद्ध नर नारो ए। मुखकारो ए।

धोयज आई चादणी क। मु० ॥

विजर तन हीणो पड्यो, परम पूज्य पछिहाण्यो ए। मन जाण्यो ए।

आउ मेंडो उनमान धी क। मु० ॥

स्वाम कहै सतजुगी भणी, ये सखर शिष्य मुविनीनो ए। घर पीनो ए।

साश दियो सजम तणो क॥

टोकरजी तीया हुन्ता, विनयवंत मुविचारी ए। हिनकारी ए।

भक्ति करी भारी घणी क॥

भारमालजी सू भेसप भली, रहीज रुडी रीतो ए। अति प्रीतो ए।

जाणक पाछिल भव तणी क॥

सखर तीना रा साश गू, यर सजम उजवाख्यो ए। म्है पाख्यो ए।

प्रत्यम्ह ही सरापणै क॥

चित्त समाधि रही घणी, म्हारा मन मझारी ए। हुनियारी ए।

यां तीना रा साश धी क॥

(भिक्षु जश रसायण डा० ५४, गा० ३ से ६)

ख्यात में उन दोनों सतों के लिए लिखा है—ए दोनू सत बड़ा धीरा विनय-वान बड़ा वियावविषा साधु तेरा माहिला, थी भिक्षुगणी माहाराज री विनय भक्ति सेवा भात-भात कर नै घणी करी, सघारा ताई साथे सेवा में रह्या।^१ श्री भिक्षु इसी पुरमायोयारा साज सू मैं सजम पाख्यो, मनै चित्त समाधि घणी उजवाई इत्यादि चार तीरथ में घणी बार स्वमुखे प्रशंसा करी। पछे भारीमाल मू दीक्षा में बड़ा तो पिण सेवा भक्ति विनय मुरजी परमाण परवर्ष्या, अन्त सम में टोकरजी बगड़ी सहर में सघारो बीयो अनै देश दुडाड में हरनाथजी सघारो बीयो, बडा वैरागी मुनीश्वर हा।^१

उन वर्णन में भारीमालजी स्वामी की सेवा-भक्ति आदि करने का जो उल्लेख है वह युवाचार्य की सेवा-भक्ति के सम्बन्ध का समझना चाहिए, न कि स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् का, क्योंकि ने दोनों मुनि स्वामीजी के स्वर्गवास

१. इस वाक्य का तात्पर्य है कि मुनि टोकरजी और हरनाथजी अपने अनशन तक अर्थात् मास्त्रीवन स्वामीजी की सेवा-भक्ति करने लगे थे।

के बहुत बने पहले ही स्थित हो गये थे।

३. मुनि टोकरजी का स्वर्गवास सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ एवं आपाङ्ग शुक्ला १५ के बीच मध्याह्न में हुआ। उनके स्वर्ग गमन के सम्बन्ध में हम प्रकार ज्ञान प्राप्त करते हैं—

बगड़ी मेहर विदेग, स्वामी टोकरजी हो मध्याह्न तिथि।

(भिरगु जग रसायन का० ४५ पा० ८)

‘अन्त मय टोकरजी बगड़ी मेहर में मध्याह्न तिथि।

(श्रवण)

सं० १८३२ और १८४१ के विधियों पर उनके हस्ताक्षर नहीं हैं परन्तु मुनिजी मेनसीजी की दीक्षा पर सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ को वे स्वामीजी के माथ में, दण्डा उन्मेष सेतमी चरित्र का० २ पा० ८ में है—

‘भारीमातजी आदि महामुनि, टोकरजी हरनाथ हो।

बनीया मिर मेहरा, जोड़ धरा रहे हाथ हो॥

स्वामीजी के अन्त्य धावक गोमती द्वारा रचित सं० १८३६ वाजिक शुक्ला २ की पुस्तकों की १६ की काल में वर्तमान सन्तों के नामों में टोकरजी का नाम नहीं है, अतः वे हमसे पूर्व स्थित हो गये थे। उनके स्वर्गवास का स्थान बगड़ी है। स्वामीजी ने सं० १८३६ का पानुर्मास मिरिपारी में किया था। पानुर्मास के पूर्व स्वामीजी बगड़ी पधारे हों और संभव है कि वही टोकरजी का स्वर्गवास हो गया हो।

हम सब उद्धारकों को देखने हुए यही निश्चय निकलता है कि वे सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ के पञ्चानु तथा आपाङ्ग शुक्ला १५ के पृथक् स्थित हुए।

जयाचार्य विरचित सप्त गुणमाना का० २ पङ्क्ति भरल काल १ पा० २ में है कि हरनाथजी स्वामी बगड़ी मजे, टोकरजी दुहाइ देगोए। लेकिन यहां हरनाथजी के स्थान पर टोकरजी एवं टोकरजी के स्थान पर हरनाथजी होना चाहिए क्योंकि जयाचार्य की अन्य कृति भिरगु जग रसायन में तथा अन्य स्थलों में टोकरजी का बगड़ी में ही अन्तर्गमन करने का उल्लेख मिलता है।

साधु विवरणिका में उनका स्वर्गवास सं० १८३२ किया है जो उक्त प्रमाणों में अतिरिक्त है।

४. मुनिजी हरनाथजी का स्वर्गवास सक्त् अप्राप्त है, पर सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ को मुनिजी सेतमीजी की दीक्षा के समय वे स्वामीजी के माथ में

१. सम्भवतः उन्हें हस्ताक्षर करना नहीं आता था।

२. सुब्रह्मण्य निवासी निम्नीमचन्द्रजी इगूरवाल द्वारा संशोधित साधुओं की नामावली।

(जिमका वर्णन ऊपर दे दिया गया है)। सं० १८३६ कार्तिक शुक्ला २ के दिन शोभजी ध्यायक कृत पूजगुणी दाल १६ गा० १२ में विद्यमान साधुओं में उनका नाम है तथा सं० १८४१ के सामूहिक और व्यक्तिगत लेखनों (क्रम सं० ३, १६) में उनके हस्ताक्षर हैं। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि सं० १८४१ तक तो वे विद्यमान थे।

वे बुडाड देश में सघारे में स्वर्ग पधारे और वे प्रायः स्वामीजी के साथ ही रहते थे। स्वामीजी का बुडाड, माधोपुर की तरफ १८३१ के बाद, ४६, ४७, ४८ में ही पधारना हुआ। अतः संभव है कि सं० १८४६ के शेषकाल में अथवा ४७ और ४८ के बीच स्वामीजी बुडाड में बिचरे सब उनका स्वर्गवास हुआ।

यहां एक प्रश्न फिर उपस्थित होता है कि उपर्युक्त स्वर्गवास समय ठीक है तो सं० १८४५ के सामूहिक लेखन (क्रम सं० ५) में उनके हस्ताक्षर क्यों नहीं? इसका समाधान यही हो सकता है कि वे उस समय उपस्थित नहीं थे या अस्वस्थता आदि अन्य कोई कारण हो। लेकिन उनके सम्बन्ध में प्रकाश डालने वाली सभी कृतियों में 'वे बुडाड देश में स्वर्ग पधारे ऐसा स्पष्ट उल्लेख है, अतः उनका स्वर्गवास सं० १८४६ से १८४८ के बीच का ठहरता है।'

जयाचार्य ने सं० १८६८ में रचित 'सत गुणमाला' दा० ४ गा० ३, ४ में दोनो मुनियों के स्मृति सदा में लिखा है—

जिन मार्ग में सुखदायक सुविनीत के, स्वामी हरनाथजी हुवा जी।
भीष्ट सेती पूरण पाली प्रीत के, तन मन सू सेवा करी जी॥
टोकरजी स्वामी तोखा घणा तमाम के, भिक्षु आप परसतिया जी।
सजम पाली सारया आत्म काम के, त्यागो भजन करो भविष्य सदा जी॥
तथा 'मुनिन्द मोरा,' दा० गा० ६ में भी उनका स्मरण किया है—

'मुनिन्द मोरा, टोकर ने हरनाथ।'

१. देश बुडाड में देख, हृद संघारो हो हरनाथजी कीयो।

(मिक्छु जस रसायण दा० ४३ गा० ८)

देश बुडाड में हरनाथजी सघारो कीयो।

(ध्यात)

७. द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी (भारमलजी)
(बड़ा मूहा)
(सयम पर्याय १८१६-१८७८)

दोहा

अन्तेवासी भिक्षु के, भारीमाल विनीत ।
महावीर गौतम सदृश, जोड़ी मिली पुनीत ॥१॥

सय—सत्य से बढ़कर...

भिक्षु गुरु के शिष्य भारीमाल के गुण गा रहा ।
हर्य गंगा में नहाकर दिल कमल विकसा रहा ॥ ध्रुव० ॥
मेदपाट देश में मूहा मनोहर ग्राम था ।
धारिणी माता व किसर्नाजी पिता का नाम था ।
गोत्र लोढा वंश में अवतंस बनक आ रहा ॥ भिक्षु...१॥

दोहा

अष्टादश शत चार में, पाये जन्म पवित्र ।
जन्मांतर सस्कार तो, लाये बड़े विचित्र ॥२॥

सय—सत्य से बढ़कर...

वर्ष दश में द्रव्य दीक्षा ली जनक के साथ मे ।
भिक्षु के चेले बने, दी डोर उनके हाथ मे ।
भाग्यशाली व्यक्ति ही संयोग अच्छा पा रहा ॥३॥
बालवय में भी न किचिद् मोह अपने तात का ।
ले गये बालपूर्व तो भी अन्न न लिया हाथ का ।
रंग वापस सौपने से तीन घर मे छा रहा ॥४॥

भाव दीक्षा केलवा मे भिक्षु सह पाकर गिले ।
स्थान मे 'ओरी अधेरी' के न भय खाकर हिले ।
साप का उपसर्ग तो विस्मय बडा हो ला रहा ॥१॥

तब—मंदिर मे काई.....

मंदिर मे फहरी सत्य की ध्वजा, ठहरे भिक्षु व भारीमाल । मंदिर मे
कैसा हो गया काम कमाल । मंदिर मे फहरी..... ॥ प्रब०॥
शहर केलवा मे गुरुवर की, हुई प्रथम पगफेरी ।
लोगो ने मिल जगह बताई, ओरी घोर अधेरी ॥६॥
निशा समय में गये परठने, वातक मुनि श्री 'भारी' ।
बोट गया है साप पैर में, फिर भी दुइना धारी ॥७॥
अभय-मूर्ति वन खडे बहा तब, स्वामीजी ने आकर ।
पूछा शिष्य खडा क्यों बाहर ? अहि लिपटा है प्रभुवर । ॥८॥
मंगल पाठ सुनाया गुरु ने, उतर चला वह क्षण में ।
अदर लाकर भारी मुनि को, गुना दिया आसन मे ॥९॥
आज जागरण करना मुझ को, कर निर्गंय यह मन मे ।
एकाकी प्रभु बैठे-बैठे, लगे ध्यान चितन में ॥१०॥
श्वेत वस्त्र धर सुर आ बोला, मुझे न मानव जाने ।
देवानुप्रिय ! नही जानता नर आते न पुरानें ॥११॥
होता है उपसर्ग यहा पर, अनुमति हो तो ठहरें ।
वरना स्थान दूसरे मे जा, ले समता की लहरें ॥१२॥
बोला विबुध शांति से रहिए, कष्ट न होगा कब ही ।
दो बातो का नाथ ! निवेदन, करता हूँ मैं अब ही ॥१३॥
नाग लकीर करे उस हृद मे, मूत्रादिक न परठना ।
चोकी ऊपर सिवा आपके, स्थित न किसी की करना ॥१४॥
हुआ यश अदृश्य, भुवह तो पता चला पुर जन को ।
दौड-दौड आ झुके चरण मे, अपित कर तन मन को ॥१५॥
हमने तो गुरुदेव ! रचा था, मृत्यु उपाय स्वभावी ।
किन्तु आपके पुण्य-गुंज से, सुरवर सेवाभावी ॥१६॥
शैशव वय मे भी 'भारी' की कितनी थी मजबूती ।
वीर पुत्र की तरह वीर ने, दी है सबल सबूती ॥१७॥

सय—सय से बढ़कर...

ये बड़े मुनिनीत गुरु के भक्त ज्यों भगवान् के ।
भक्ति हार्दिक प्रीति मन्त्री ये उपासक ज्ञान के ।
बीर गीतम की तरह गाकार छवि दिग्गजा रहा ॥१८॥
ज्ञान का स्थायी गजाना मिल गया गुरु-भक्ति में ।
माद आगम ग्रंथ आदिक किये बहू अनुरक्ति में ।
धारणा अच्छी हुई मतिज्ञान-भक्ति धमका रहा ॥१९॥

दोहा

वृत्तियां स्वामीजी रचित, की प्रायः कटम्ब ।
स्मृतिगत निभेल ज्ञान में, ज्ञानी यने प्रणत ॥२०॥
रहने रत स्वाध्याय में, यही मनाते मोज ।
पद्य हजारों मूत्र के, दुहराते हर रोज ॥२१॥
मूत्र उत्तराध्ययन का गूड गूडे बहुवार ।
पुनरावर्तन रति में, करते ये धृति धार ॥२२॥

सय—सय से बढ़कर...

ध्यान गयम पालने में धर्म-शासन प्राण था ।
दृष्टि पर श्री भिक्षु के सर्वस्व ही बलिदान था ।
शिष्य गुरु के स्नेहमय सस्मरण कुछ बतला रहा ॥२३॥

दोहा

भिक्षुनगर में भिक्षु का, वर्षावास रसाल ।
बगड़ी में ज्वर-योग में, ठहरे भारीमाल ॥२४॥
नदी बीच बहने लगी, तब गुरु शिष्य उदार ।
दोनों तट पर हो छडे, मिलते ये साकार ॥२५॥
आपस में होता मधुर, वार्तालाप सुरम्य ।
शिक्षा गुरु की शिष्यवर, करते हृदयगम्य ॥२६॥
एक तरफ से क्षर रहा, रस वात्सल्य पवित्र ।
एक तरफ गुरु भक्ति का, सम्मुख होता चित्र ॥२७॥

शोम्पुत्र करके गने ने रगा रहे हास मनुज ।
 पूजा भारी का शहर में गुणग फैला है अरुज ।
 स्थान पर मुनि को स्थापन रहा यदि जिनमन्द ने ।
 योग्य सर्वा के न ने लो मिर म्नाया आगे ॥४५॥
 हेम मुनि ज्जिगम ने मर बाग गुफार में कही ।
 मृग हुए ने, वहाँ में लो पाट जयपुर की मही ।
 दिया उम ही लो पात्रम हेम मुनि ने जिनमन्द ।
 सोम समझे दोष की मिर नीच लग पाई मुदुड ॥४६॥

बोहा

भारत क्षम महेगजी, उनमें एक तुगीन ।
 धर्म-बोध लो को दिया, रचा 'दिशाग' मोन ॥४७॥
 निर्यापट के निगम में, की सर्वा उपगुन ।
 विधि बनवाई मन्त्र की, जो आगम में उग ॥४८॥
 अर्थ अपेक्षा न्याय में, समझो पद का सत्य ।
 केवल म्नायातान में, निकल न पाता सध्य ॥४९॥
 दृष्टि परम उपकारकी, कर-कर धर्म प्रचार ।
 समझाने जनबुद्ध की, भरने श्रद्धा-सार ॥५०॥

गीतक-छन्द

उनतर की साल वर्षासाल जयपुर में किया ।
 बहुत भाई बहन समझे क्षेत्र को सर कर लिया ।
 रहे फात्तुन मास तक तनु व्याधि से गणधार है ।
 शिष्य जय आदिक मिले है हुआ अति उपकार है ॥५१॥

बोहा

माधोपुर पायस किया, सत्तर में सोत्साह ।
 पुनरपि जयपुर स्पर्श कर, लो बोरावट राह ॥५२॥
 दिन-दिन बढ़नी जा रही, सद्य प्रगति की पोष ।
 वनते श्रावक-श्राविका, बहुततर पाकर बोध ॥५३॥
 शहर काकडोली किया, गुरु ने चातुर्मणि ।
 पोष सतरह लो हुए, फैला धर्म-प्रकाश ॥५४॥

सय—भावक वत धारो...

गुरु गुण की गरिमा, मैं हृदय धोलकर गाऊँ रे। गुरु०।

सह प्रवल प्रभाव बताऊँ रे। गुरु०..... १।

जय-विजय ध्वजा फहराऊँ रे। गुरु०..... ॥ध्रुव०॥

बिनति उदयपुर-भविजन की सुन, भारीमाल पधारै रे। गुरु०.....

साल पचहत्तर ग्रीष्मकाल में, खोले ज्ञान-कुंवारे रे। गुरु०.....॥५५॥

ठहरे हैं बाजार-विपणि में, प्रवचन रस बरसाते रे।

हनुकर्मी नर लाभ ले रहे, दौड़-दौड़ कर आते रे। गुरु०.....॥५६॥

पर द्वेषी जन द्वेष-भाव से, लगे सोचने ऐसा रे।

काम न इनका जमें यहाँ पर, भागें निकालें वैसा रे। गुरु०.....॥५७॥

भोमसिंह राणा के सम्मुख, कुछ अगुआ पहुंचाये रे।

मनमानी बातें कर उनके, कान बड़े भरपाये रे। गुरु०.....॥५८॥

तेरापथी साधु यहाँ पर, आकर कुछ ठहराये रे।

दयादान के धौर विरोधी, हा ! हा ! वे कहलाये रे। गुरु०.....॥५९॥

पड़ जाता दुष्काल जहाँ पर, इनके चरण टिकाते रे।

जन उपयोगी कामों में भी, ये बाधक बन जाते रे। गुरु०.....॥६०॥

बाहर पुर से इन्हें निकालें, तो हो सब कुछ अच्छा रे।

राणा ने आदेश दे दिया, न किया चितन सच्चा रे। गुरु०.....॥६१॥

हलकारे ने हुक्म सुनाया, विदा हुए गुरु भारी रे।

हर्षित हुए बहुते प्रतिपक्षी, थावक दुःखित भारी रे। गुरु०.....॥६२॥

करने लगे उपाय विपक्षी, नय-भक्षी बन पाये रे।

अच्छा हो मेवाड़ देश में भी इनको निकलाये रे। गुरु०.....॥६३॥

चुरा दूसरे का कर के नर, बीज पाप का बोते रे।

आखिर कर्मोदय होने से, अखियां भर भर रोते रे। गुरु०.....॥६४॥

फँसी मरी शहर में सारे, प्रकृति कुपित हो पाई रे।

हुए काल कवलित उससे बहु, पुर के लोग लुगाई रे। गुरु०.....॥६५॥

राजकुमार पाटवी नप का, फिर जामाता गया रे।

परभव अधिक बने हैं दोनों, हाहाकार मचाया रे। गुरु०.....॥६६॥

केशरजी भडारी थावक, गुप्त रूप जो पक्के रे।

तत्क्षण मिलकर राणाजी से, बदले रय के चक्के रे। गुरु०.....॥६७॥

यह क्या मूढ़ता है अनवृत्ता काम नाथ ! कर पाये रे।

लोगों के कहने से मुनियों को पुर से निकलाये रे। गुरु०.....॥६८॥

मन न जीतमलजो का जिसमे, आये करके दीर्घ विहार।
 'क्या आचार्य हो गया है यह' करना जैसा निजी विचार" ॥६२॥

सप—साथ से बड़कर...

भूल का देते उलहना क्यों न हो वे प्रमुख जो।
 सप से बाहर गिना दो धावको को विमुख जो।
 मूझ है गुरु की बड़ा अनबूझ नर मुरझा रहा" ॥६३॥

रामायण-छन्द

गुरु की दृष्टि बिना लावा में रह पाये मुनि मोजीराम।
 कड़ा उठाया कदम पूज्य ने, जमा विनय से अच्छा काम"।
 ग्राम ईडवा में गणपति ने किंचित् श्रुति पर गौर किया।
 उपालभ ऋषिराय प्रवर को प्रवचन करते समय दिया" ॥६४॥

गीतक-छन्द

पूज्य रखते पुस्तकों को बड़ी ही सभात से।
 सूत्र 'वाई गूजरी' को दियाये बहु सान से।
 व्यवस्थित अति देख खुश हो कह रही गुरुराज से।
 प्रतिहारिक दत्त प्रतिया दू समूची आज से" ॥६५॥

दोहा

होने से वार्धक्य क्या, करते अल्प विहार।
 साल सततर में किया, पावस श्रीजीद्वार ॥६६॥
 स्पर्श काकडोली प्रमुख, आये राजसमंद।
 मुनि श्रमणी भेता लगा, उमड़ गया जनवृंद ॥६७॥
 मरु घरणी में गमन का, था पहले सुविचार।
 होने से अस्वस्थता, उधर नहुआ विहार ॥६८॥
 भावी सध-प्रवध हित, समय देख उत्कर्ष।
 सत सतयुगी हेम से, किया विचार विमर्ष ॥६९॥
 युवाचार्य पद पत्र में, लिखे प्रथम दो नाम।
 गुन जय मुनि की प्रार्थना, रचा एक अभिराम" ॥१००॥
 मर्यादा आचार्य थी, आचार्यों के हाथ।
 मुख्य से भारीमाल ने, वही मर्म की बात" ॥१०१॥

सय—सत्य से बढ़कर...

संघ की संभाल की गणपाल ने बहु साल तक ।
विचर कर अध्यात्म की पुर-पुर जलाई लौ अनख ।
की गुरु संलेखना जब देह बल घटता रहा" ॥१०२॥

दोहा

अन्तिम पावस पूज्य ने, किया केनवा ग्राम ।
अन्तेवासी आठ थे, सेवा में निष्काम" ॥१०३॥
गुरु तन में अस्वस्थता, पर मन स्वस्थ सदैव ।
चतुर्मास के याद भी, रहे वहा गुरुदेव ॥१०४॥
मुनि धर्मणी गण मिल गया, नया खिल गया रंग ।
फो गुरु ने आनोचना, क्षमायाचना मग ॥१०५॥
शिक्षा देते आर्यवर, एक प्रहर अन्दाज ।
दत्तचित्त हो ध्यान में, मुनना शिष्य समाज" ॥१०६॥

रामायण-छन्द

फाटगुन से लेकर मृगसर तक रहे वेलया में गणिवर ।
फिर भी शान्त नही बीमारो तब आये हैं राजनगर ।
नाभ हुआ औषध-मेघन में और चट्टी रवि भोजन की ।
लेकिन कूर 'काल ज्वर' आया जिमने स्थिति बिगड़ी तन की ॥१०७॥
शान्त बीमने की न रही है फिर भी मारचेत प्रभुवर ।
सागारो अनशन मुनियों ने करवाया ? पृच्छा कर ।
प्रातः निया सठ जन थोड़ा बैठे जानन पर मुखनय ।
चारतीर्थ सम्मुख मेवा में आया है मध्याह्न ममय ॥१०८॥
मालव से चल सनिया आई लार्ई करटा कागज माथ ।
भेंट गिये गणपति घरणों में देख रहे धृति मुन गणनाथ ।
इतने में तो छवि बदली है करवाया अनशन अतिरत ।
मन नतनुगी ऋषिरायादित मने मुनाने पद मगन ॥१०९॥

दोहा

माप इप्पन निधि अष्टमी, नदत् मनर प्राट ।
अनशन में नव प्रहर थे, लो गुरुगुरु की वाट" ॥११०॥

रात-रात में निरुद्ध के, मिले हजारों भ्रात ।
 मडी पर मडी चढ़ी, हुई अनोखी बात ॥१११॥
 फोडा दरवाजा त्वरित, आगे चला विमान ।
 'घोईन्दा' घर भूमि में, चुना यथेष्टित स्थान ॥११२॥
 किया देह सत्कार मिल, जन ने हाथोहाथ ।
 ग्यारह सौ रुपये लगे, व्यय में 'राणा' साथ ॥११३॥
 भारी गुरु के समय में, मुनिवर तो अडतीम ।
 साध्विया दीक्षित हुई, चतुराधिक चालीस ॥११४॥
 पच तीस निग्रय वर, सतियां दो चालीस ।
 छोड़ चले हैं सध में, भारीमाल गणीश ॥११५॥
 गृहि वय में दश हयन तक, साधु वेप में चार ।
 पन्द्रह, अठ्ठाईश तक, मुनि पद, युवपद धार ॥११६॥
 वर्ष अठारह तक रहे, धर्माचार्य प्रशस्त ।
 वत्सर सत्तर पाच का, था आयुष्य समस्त ॥११७॥

मनोहर-छन्द

पाली और नाथद्वारा तीन तीन चातुर्मास,
 केलवा में किये हैं दो, परम प्रमोद में ।
 खेरवा, माधोपुर, आमेट, पुर, पीसांगण,
 एक-एक बार सीचा सुधारस पौध में ।
 बालोतरा, जयपुर, बोराथड़, काकडोली,
 एक-एक बार लिखे वर्षावास नौध में ।
 अष्टादश पावस यो तेरह ग्रामों में किये,
 भारीमाल गणेंद्र ने आनन्द विनोद में ॥११८॥

दोहा

युग में भारीमाल के, बड़ी सध की श्रद्धि ।
 हुई विविध उपलब्धिया, आई करतल सिद्धि ॥११९॥
 रचा महामुनि हेम ने, 'भारीमाल-चरित्र' ।
 पढ़ी सुनी उपयोग से, जीवन करो पवित्र ॥१२०॥

१. भारीमानजी स्वामी मेवाड़ प्रदेश में बड़ा 'मूहा' (भीमराष्ट्र के ग्राम) नामक ग्राम के थे। उनकी जाति भीमराष्ट्र और गोह गोहा था। पिता विमलोत्री और माता धारणी देवी थी।

(हैम मुनि रचित—भारीमान चरित्र का० १ भा० १ में ३ तथा का० १३ भा० १ के आधार में)

उनका जन्म मरम् १८०४ में हुआ, ऐसा जगन्नाथ विरचित भिक्षु गुण वर्णन का० १८ भा० २ में उल्लेख है—

मरम् बड़ाई सोरे मये रे, काँइ भारीमान उज्ज्वल।'

ज्ञान प्रभाकर का० ४ भा० २ में जन्म मरम् १८०३ लिखा है परन्तु उल्लेख मूलग्रन्थ काव्य के उल्लेख को प्रमाणित माना है।

२. भारीमानजी स्वामी ने हम वर्ष की कुमारावस्था में पिता विमलोत्री के साथ स्वानवामी मंदिर में स्वामीजी के हाथ में म० १८१३ बागीर में बट वृत्त के नीचे दीक्षा स्वीकार की।

ज्ञान प्रभाकर—भारी० मन वर्णन का० ४ भा० ३, ४ में उल्लेख है कि आचार्य रघुनाथजी ने विमलोत्री एवं भारीमानजी को दीक्षित किया। व्यक्तिगत शिष्य करने की परम्परा होने से स्वामी भीमराष्ट्रजी को शिष्य रूप में मान लिया।

हम प्रकार ज्ञान प्रभाकर में मुनि भारीमानजी को आचार्य रघुनाथजी द्वारा दीक्षित करने का एक उल्लेख भिक्षु जगन्नाथ रमायण में स्वामीजी द्वारा दीक्षा

१. अन्य स्थानों में मूहा और मधवा मुखग का० २० दो० ६ में बड़ा मूहा उल्लेख है—

'निहाँ थी बड़े मूहै आदिवा, भारीमान रे ग्राम।'

२ भारीमानजी स्वामी की दीक्षा विविध प्राप्ति नहीं है परन्तु हम वर्ष स्वामीजी का चतुर्मास बागीर में होने में बहुत महत्व है कि दीक्षा चतुर्मास समाप्त होने पर भूगर्भ के प्रारम्भिक दिनों में हुई, क्योंकि उस समय मेवाड़ में चतुर्मास के समय दीक्षा न देने की तथा दीक्षा देते ही विहार करने की पद्धति थी। उनके दीक्षा सवध में लिखा है—

मुने सम्राट्ट मोटा हुआ बुध अकल गुण छाण।

हमवाँ बरम रे आगरे, भीष्म गुह भिन्ना आण॥

बागीर सहर विद्य मू करी, बाप बेटो निजवार।

बड़ विरघ रलियाभणो, लोछी सजम भार॥

(भारीमान चरित्र का० १ भा० ४, ५)

भिक्षु शिष्य भारीमान, दीक्षा दी निज हाथ।

(भिक्षु जगन्नाथ रमायण का० २ भा० ५)

देने का उत्प्रेषण है। (दीक्षा की निज हाथ)

दोनों में जमाचार्य द्वारा रचित—भिन्नु यश रमायण का प्रमाण प्राचीन हो से अधिक समत लगता है।

३ भारीमालजी स्वामी ने स्थानकवासी मप्रदाय में पुष्क होने के परवा जब नई दीक्षा लेने का विचार किया तब भारीमालजी स्वामी के पिता ज्ञ साधुओं के सिंघाटे में विहार करते थे। स्वामीजी के अलग होने का समाचार सुनकर वे जब स्वामीजी जोधपुर में बीवाडा^१ पधारे तब वहा आए।

किसानोजी प्रवृत्ति के बड़े उग्र और रम-सोनूप थे। मरम और नीरम आह में समभाव रखना तो दूर रहा पर कभी-कभी उनके लिए आने साधियों ने कत भी कर लेते थे। इसलिए स्वामीजी उन्हें अपने साथ रखना नहीं चाहते थे। इस बात का जिक्र करते हुए स्वामीजी ने शिष्य भारीमालजी से कहा—‘तुम्हारा पिता समय पालन के योग्य नहीं है अब मैं उसे साथ रखना उचित नहीं समझता तुम कहा रहना चाहते हो यह अपनी दृष्टानुसार मौच लो।

भारीमालजी स्वामी ने दुइता के स्वर में कहा—‘उनके विषय में जैसा आ टोक समझें बैठा करें, किन्तु मेरा तो आपके साथ ही रहने का विचार है।’

स्वामीजी ने किसनोजी को बुलाया और अपने विचार बतलाने हुए कहा—‘जब हम शुद्ध मार्ग अपनाने के लिए कटिबद्ध हुए हैं, परन्तु इस समय विरोध व्यक्तिओं में जो स्थिति उत्पन्न कर दी है उसे देखते हुए लगता है कि पद-पद प अनेक बाधाएं आएगी। तुम्हारी प्रवृत्ति बहुत कठोर है। तुम उस विषय परिस्थिति में अपने को नियमित रख सकोगे, ऐसा मुझे विश्वास नहीं है, इसलिए मैं तुम अपने साथ रखने में असमर्थ हूँ।’

१. विचरत-विचरत आविया आविया, भीलोडा सेहर मजार।

(भारीमाल चरित्र का. १ भा. १)

यहां ‘भिन्नुडा’ में ‘भीलवाडा’ नाम का भी भ्रम हो सकता है, पर य भीलवाडा (मेवाड़) न होकर ‘बीलाडा’ (मारवाड़) ही हो सकता है, क्योंकि यह घटना स्थानकवासी मप्रदाय में पुष्क होने के परवा और नई दीक्षा लेने में पूर्व की है। उस समय के बीच स्वामीजी भीलवाडा पधारे ही नहीं थे, यह सुनिश्चित है।

उस समय के विहार क्षेत्रों के जो नाम उल्लेख होते हैं उनके अनुसार स्वामीजी बगरी में बरलू (भिन्नु यश रमायण), वहा में जोधपुर (यात्रा निरधरजी का दाव), वहा में ‘बीलाडा’ (भारीमाल चरित्र, भिन्नु दुइताम और फिर वहा में बीडा के गांवों में होते हुए चानुसमि के लिए केवल पधार गए। इस विहार वम में स्पष्ट है कि उर्वरत क्षेत्र बीलाडा ही था।

किसनोजी तत्काल कूड़ होकर बोले—‘आप मुझे साथ में नहीं रखेंगे तो भारीमाल भी यहाँ नहीं रह सकेगा। मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगा।’ स्वामीजी बोले—‘यदि यह जाना चाहे तो तुम उसे सहर्ष ले जा सकते हो, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।’ तब किसनोजी अधिक आवेश में आ गए और भारीमालजी स्वामी को वनपूर्वक दूमरे स्थान (हाट) में ले गए।

भारीमालजी स्वामी ने इन विषम समस्या को शान्ति पूर्वक सुनसाने का मन ही मन कुछ चिंतन किया और फिर किसनोजी से कहा—‘मैं आपके द्वारा साए गए आहार-पानी का यावज्जीवन के लिए परित्याग करता हूँ।’ पढ़िए निम्नोक्त पद्य—

अभिग्रह कीयो इण रीत सू, भारीमाल करी भारी।

दोय दिन आखा निकल्पा, अडिग रह्या गुणधारी॥

(भारीमाल चरित्र ढा० १ गा० १०)

भारीमाल पिता ने भाखे, किसनोजी री काण नही राखे।

पारा हाथ तणों अन्न पाण, म्हारे जावजीव पचखाण॥

भारीमाल अभिग्रह कियो भारी, दिन दोय नितरिया तिवारी।

रह्या सुरगिर जेम सधीरा, हजुर्मी अमोलक हीरा॥

(भिक्षु जश रसायण ढा० ६ गा० ११, १२)

भिक्षु दृष्टान्त २०२ में दो दिन निराहार रहने के पश्चात् तीसरे दिन उक्त प्रत्याख्यान करने का उल्लेख है—‘तीस्रो दिन आगे बली घणी मनुहार करवा लागो, जब भारमलजी स्वामी बोल्हा—पारा हाथ री आहार करवा रा जावजीव त्याग है।’

पर उपर्युक्त पहले दिन प्रत्याख्यान करने का अभिमत अधिक सगत लगता है।

दो दिन बीत जाने के बाद तीसरे दिन पुत्र के सत्याग्रह के सामने पिता को सुकना पड़ा और वे स्वामीजी के पास आकर बोले—‘इसका मन आपके साथ ही रहने का है अग आप इसे रखिए और पारणा करवाइए। जब तक आप नई दोषा न लें तब तक मेरी भी व्यवस्था कर दीजिए। जवाचार्य ने इस सन्ध में लिखा है—

तब बाप धको तिणवार, भिक्षु ने आप सूया उदार।

या भूईज राजी छै एह, म्हां सू तो नही मूल सनेह।

इण ने आहार पाणी आप दीजै, रुड़ा जल करी राधीजै।

म्हारी पण गति नाइक कीजै, किण ही ठिक्काणे मोने मेभीजै॥

(भिक्षु जश रसायण ढा० ६ गा० १३, १४)

मुनि भारीमालजी की उस दृढ़ता से स्वामीजी अत्यंत प्रभावित हुए। अपने

प्रति उनकी हासिक भविष्य की प्रवणता देखकर तो ये गर्ह्य हो गए। उस समय मुनि भारमन्त्री के भी प्रवणता का पार नहीं था, परन्तु स्वयं स्वामीजी भी उन्हें पाकर बहुत प्रसन्न हुए। समझत ही दिनों की निर्जल तपस्या के बाद स्वामीजी ने आहार-गानी मगयाकर उन्हें पारणा करवाया।

इसके बाद स्वामी भीष्मन्त्री ने बड़गू या आम पाग के स्थिती क्षेत्र में जयमन्त्री से मिलकर किमनोत्री को शिष्य रूप में गौत दिया। स्वामीजी की बुद्धिमत्ता देखकर जयमन्त्री ने कहा—'भीष्मन्त्री बड़े चतुर व्यक्ति हैं। उन्होंने एक ही काम से तीनों घरों में 'वधामना आनंद कर दिया। हमने समझा कि एक चेला मिल गया, किमनोत्री ने समझा कि मेरा स्थान जम गया और स्वयं भीष्मन्त्री ने समझा कि चलो बसा टल गई।' जयाचार्य ने इसका विवरण इस प्रकार किया है—

किश्नो हरष्यो ठिकाणे हू आयो, म्हे पिण हरष्या चेलो एक पायो।

भीष्म हरष्या टनियो ओंगानो, सीनू घरों बघावणा म्हातो॥

(भिक्षु जग रमायण का० ६ गा० १७)

भारीमाल चरित्र का० १ गा० ७ से १२ तथा भिक्षु दृष्टान्त २०२ में भी उपर्युक्त घटना का उल्लेख है।

४ अघेरी ओरी के उपसर्ग की घटना का भिक्षु जग रमायण का० ६ गा० ६ में संकेत तथा स्वामीजी की कथा में संक्षिप्त वर्णन मिलता है। विस्तृत विवरण पढ़िए पूर्वोक्त स्वामीजी के प्रकरण में।

स्वामीजी आपाद श्रुता १३ की बेलवा पधारे थे' अतः यह घटना उसी रात्रि की प्रतीत होती है।

५. भारीमालजी स्वामी बड़े स्निग्ध और कोमल प्रकृति के थे। वे निरन्तर स्वामीजी की सेवा में इस प्रकार लगे रहते कि मानों भगवान् के घरणों में प्रकट ही सम्पन्न हो गया हो। सोच स्वामीजी और भारीमालजी की तुलना भगवान् महावीर और गौतम स्वामी में किया करते।

जयाचार्य ने भी अनेक स्थलों में स्वामीजी और भारीमालजी स्वामी की बीर-भौतम की उपमा दी है—

मुनिन्ध मोरा ! भिक्षु ने भारीमाल, बीर गोयम सी जोड़ी रे स्वामी मोरा।

(भिक्षु गुण वर्णन का० २४ गा० १)

ऐसी कीर्ति भीतरी, जैसी भिक्षु भारीमालो ए।

(भिक्षु जग रमायण का० २४ गा० १२)

१. गंगा सापोष के विरघीचन्दजी कोटारी के पास एक प्राचीन खोपड़ी में लिखा

मुनि भी हेमराजजी ने भी भारीमान चरित डा० २ गा० १ म में ना ही निगा है—

गुरु भीगू रिग मिनिता भारी, भारीमान येना दृषा मुयहारी ।

घोर सोम ज्म जोही बग्यासी, भारीमान भरो भविष्य प्राप्ती ॥

६. मुनि भारमन्त्री आचार्य भिक्षु के निर्देशन में शानार्जन करने लगे । उन्होंने आचार्य, दमनैशानिक, उत्तराध्ययन आदि गुरु तथा स्वामीजी द्वारा रचित बहुत सी कृतियाँ पढ़ ली । आगमों का बार-बार वाचन करने में उनकी धारणा शक्ति गहनतम बन गई । उसका ज्ञान गुरु बन होने में तथा उनकी स्मृति की प्रकम्पना से अदम्य निर्मल था ।

(वृत्तान्त)

७ भारीमानजी स्वामी अपने बटस्थ ज्ञान की स्थायी रखने के लिए स्वाध्याय बहुत किया करते थे । वात्स्यायन में जब उन्होंने उत्तराध्ययन गुरु बटस्थ किया था तब उसे दोहराने समय उन्हें कभी-कभी नींद आने लग जाती ।

एक बार स्वामीजी ने उनको खड़े-खड़े विचारने के लिए आदेश दिया । भारीमानजी स्वामी ने उसे निरोधार्थ करने हुए निषेध किया—'कदाचिन् खड़े-खड़े विचारने समय नींद आने में गिर जाऊ तो ?' स्वामीजी ने कहा—'भीन की पूंखर कोने में खड़ा हो जाया कर, जिससे ज्यादा यज्ञान भी न आएगी और गिरने की आशंका भी नहीं रहेगी, उन्होंने बैसा ही करना प्रारम्भ किया और अनेक बार पूर्ण उत्तराध्ययन का खड़े होकर स्वाध्याय किया ।'

(दृष्टान्त १८२)

८. भारीमानजी स्वामी का एक चातुर्मास स्वामीजी से पृथक् हुआ । स्वामीजी का स० १८२४ का चातुर्मास कटालिया में और भारीमानजी स्वामी का बगडी में था । कहा जाता है कि बुधवार होने के कारण उन्हें वहाँ रुकना पड़ा । स्वामीजी निर्णय तिथि के अनुसार चातुर्मास करने के लिए कटालिया पधार गये । भारीमानजी स्वामी को कुछ माधुजी के साथ बगडी में छोड़ गये और कह गये कि बुधवार उठरने के बाद कटालिया आ जाना । बगडी से कटालिया सात मील की दूरी पर स्थित है परन्तु दोनों के बीच एक नदी पड़ती है । स्वामीजी कटालिया पधारे तब तो वह सूखी थी और कुछ ही दिन बाद वर्षा हो जाने में उसमें पानी भर आया । एक से दूसरी तरफ जाने का रास्ता रुक गया । अतः भारीमानजी स्वामी को वह चातुर्मास स्वामीजी से पृथक् करना पड़ा ।

१. उत्तराध्ययन रा छत्तीस अध्ययन ए, उभां यका गुणं श्रमणेश ए ।

वार अनेक दयाल ए ।

(भारी० गुण० वर्णन डा० ६ गा० ३)

कुछ समय पश्चात् जब गरी का नेत्र बंद रह गया और मोहा-मोहा गरी बहता रह गया तब गुरु-गिर्य का मित्र हो गया। एक तरफ पर स्वामीजी और एक तरफ पर भारीमानजी स्वामी पधार जाते। परस्पर मधुर-मधुर वार्ता-वार्ता चलता। स्वामीजी उक्त शोध-भार में मारबसित निश्चय देते। भारीमानजी स्वामी उमें बड़ी मत्सरता में पड़ता करते। फिर पातल अन्ते-अन्ते स्वामि पर पधार जाते। उक्त समय गुरु के वा-ग-व और गिर्य की भक्ति का जो निर प्रभुति होता वह रोमांचित करने वाला था।

(भिक्षु दृष्टान्त २३२)

६ भारीमानजी स्वामी की जब वा-ग-वस्या थी मत्र एक बार स्वामीजी ने कहा—‘भारीमान ! अगर कोई मुझसे मुझारी गलती (ईर्ष्या-ममिति की) निशाने तो मुझे दह स्वरूप एक तैला (नीच दिन का उत्पन्न) करना पड़ेगा।’

भारीमानजी स्वामी ने कहा—‘कोई व्यक्ति द्वेगत्रन झूठ-झूठ गलती बनवाए तो?’

स्वामीजी बोले—‘यदि मुझारी गलती हो तो उमके प्रायश्चित्त रूप में मुझे तैला करना और कोई झूठ ही गलती निशाने तो पूर्व कर्मों का उदय ममत्त कर तैला करना, किन्तु तैला तो करना ही है।’

भारीमानजी स्वामी ने बिना किसी तर्क-विचार के उक्त आज्ञा को शिरोधार्य किया। यह उनकी अमाधारण धिनीनता थी। उनकी मावधानी इनकी थी कि जीवन भर में गलती निकालने का अवसर ही उन्होंने नहीं आने दिया।

(भिक्षु दृष्टान्त २३३)

१०. आन्ध्यावस्था में भारीमानजी स्वामी लेखन करने समय बार-बार स्वामीजी में लेखिनी बनवाने थे। एक दिन जब वे लेखिनी करवाने के लिए स्वामीजी के पास आये तब उन्होंने कहा—‘मुझे मुझारी लेखिनी बनाने का त्याग—(यदि लेखन काइवा रा त्याग) है।’

तब में भारीमानजी स्वामी स्वयं लेखिनी बनाना सीख गये और प्रदान करने-करने उस कला में निपुण बन गये।

१. उक्त दृष्टान्त में चूटिमान के लिए तैले के दह का विधान है परन्तु अनुभूति में प्रसिद्ध है कि वह ईर्ष्या-ममिति की गलती के लिए था।

दृष्टान्त की अन्तिम पंक्ति—‘इमा वनीन उत्तम पुरुष हवै ते सूचणे बड़ावैहीज विण लेमे’ में ध्वनित होता है कि उन्हें एक भी तैला करना नहीं पड़ा। किन्तु ऐसी भी अनुभूति है कि किसी ईर्षी व्यक्ति द्वारा मिथ्या गलती निकालने पर उन्हें एक तैला करना पड़ा था।

स्वामीजी का दृष्टिबोल उन्हें हर कार्य में स्वायत्तता तथा हर कला में कुशल बनाने का था।

(भिक्षु दृष्टान्त २३३)

११. भारीमानजी स्वामी ने स्वयंसेवक गुरु की एक प्रति नियुक्त स्वामीजी के घरों में प्रेषित की। स्वामीजी ने कहा—'एक प्रति फिर नियुक्त।' भारीमानजी स्वामी ने पूछा—क्यों? स्वामीजी बोले—'यदि मैं अलग और तुम अलग विहरण करो तो एक मेरे लिए और एक तुम्हारे लिए चाहिए।' मुनि भारीमानजी ने स्वामीजी के आदेश को सम्मान स्वीकार किया।

(श्रुतानुश्रुत)

१२. भारीमानजी स्वामी कुशल लिपिकर्ता थे। उन्होंने प्रायः दस पुस्तकों की प्रतिलिपि की। एक-एक पुस्तक में लगभग पाँच सौ पन्ने और एक-एक पत्र में लगभग सौ से अधिक शब्दाएँ होती हैं। इस तरह उन्होंने प्रायः पाँच लाख शब्दों की प्रतिलिपि की। आज भी उनकी हस्त-लिपि की अनेक पुस्तकें सभ में सुरक्षित हैं।

उन्होंने स्वामीजी द्वारा रचित प्रायः सभी ग्रन्थों की प्रतिलिपि की थी। आज उनकी वे प्रतियाँ स्वामीजी के ग्रन्थों की प्रामाणिक प्रतियों के रूप में बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी हैं।

१३. भारीमानजी स्वामी ने मुनि हेमराजजी को अपने पूर्व सस्मरण सुनाते हुए एक बार बतलाया कि पहले कुछ वर्षों तक तो हमारे पान व्याख्यानादिक प्रतियों का इतना अभाव था कि हम अजना तथा देवकी के व्याख्यान को चातुर्मास में तीन-तीन बार तक बाँचते।

(भिक्षु दृष्टान्त २३४)

१४. राजस्थान में प्रायः बालकों के कान विधाये जाते हैं। भारीमानजी स्वामी के बाल विधाये हुए नहीं थे। उनके आचार्य बनने के बाद किसी भाई ने उनके कान अनवीधे देखे तो पूछ लिया कि आपके कान क्यों नहीं बीधे गये? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—'कान विधाने का एक छोटा-सा उत्सव मनाया जाता है, उस समय अपने परिवार के व्यक्तियों को भोजन कराया जाता है या गुड़ आदि दिया जाता है। मेरे घर की स्थिति इतना व्यय करने की नहीं थी। इसलिए मेरे कान अनवीधे ही रह गये।' महज सरलता से कही गयी वचार्थ बात को सुनकर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ।

(श्रुतानुश्रुत)

१५. गण से बहिर्भूत मुनि चन्द्रभाणजी, तिलोत्तमजी ने चूरू में स्वामीजी के साथ सतीशजी, शिवरामजी को फटा लिया। उन्हें समझाने के लिए

विधियों के संचालन में सहायक बने रहे। उनमें से युवाचार्य पद के अठारह वर्षों और भी अनुभवदायक रहे। इससे सघ को वे एक अनुभवी शासक के रूप में प्राप्त हुए। उनका शासनवास जमा हुआ और उत्तरोत्तर विक्रमशील रहा।

उनके आचार्य पद पर नियुक्त होने के समय सघ में २१ साधु और २७ साध्वियाँ थी।

(द्वारा)

२०. आचार्य श्री भारीमालजी की व्याख्यान शैली आकर्षक और आवाज बुलंद थी। शब्दों का घोष मेघ की तरह गूँजता था।

उनका व्याख्यान सुनने के लिए आसपास के तैरापथी भाई तथा अन्यमनी लोग भी आते। व्याख्यान सुनकर अत्यधिक प्रभावित होने और आचार्य प्रवर की मुक्त कंठों से स्तवना करते।

(द्वारा)

२१ मूर्ति-पूजक और स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु आचार्य श्री के पास प्रायश्चित्त लेने के लिए अनेक बार आते। उनकी गंभीरता आदि गुणों से बहुत आकृष्ट होते।

(द्वारा)

२२ आचार्य श्री भारीमालजी भाई-बहनों को तत्त्वज्ञान सीखने के लिए विशेष प्रेरणा दिया करते थे। छोटे बालक और बालिकाओं को तत्त्वज्ञान सिखाने के लिए तो वे बहुत प्रयत्न किया करते थे। बालिकाओं को तो वे इस कार्य में प्राप्तिवत्ता देते थे।

एक बार किसी व्यक्ति ने भारीमालजी स्वामी से पूछा—‘आप छोटी-छोटी बालिकाओं को तत्त्वज्ञान कराने पर इतना बल देते हैं, इसमें क्या लाभ है?’ आचार्य प्रवर ने अपना दृष्टिकोण बतलाते हुए कहा—‘बालक अपने ही घर में रहता है, किन्तु बालिका बड़ी होने पर दूसरे के घर में जाती है। बालक को तत्त्वज्ञान फैलाने का जितना श्रेय मिलता है, उससे कहीं अधिक बालिकाओं के तत्त्वज्ञान को मिलता है। बालिकाओं में यदि सम्कार सुदृढ़ रहे तो आगे चलकर वे ही आविर्भाव होकर सगुराल तथा पीहर में अनेक व्यक्तियों को समझा सकेंगी उनके बेटे-बेटी, बहू, दोहिनी आदि भी धर्म के अनुकूल बनेंगी। इसलिए बालिकाओं को विशेष प्रेरित किया जाता है।’

इस उतर से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि धर्म प्रचार करने की उनकी कितनी उत्कट भावना रहती थी।

(हेम दुष्टान्त ३५)

२३. वि० सं० १८६६ (आवणादि जम से १८६८) के बसाख महीने^१ में आचार्य श्री भारीमालजी दस साधुओं में किसनगढ़ पधारे। वहाँ नये शहर में टहरे। बगीची के सार्वजनिक स्थान में स्थानवधामी साधु नानकजी, उगराजी तथा अमरगिहजी की सम्प्रदाय के ३५ साधु भर्चा करने के लिए आये। भारीमालजी स्वामी ६ साधुओं से वहाँ पधारे। संकड़ों की सटपा में जनता भी भर्चा-स्नान पर पड़व गई। भर्चा का विषय था—‘आश्रय जीव है या अजीव।’

नानकजी के टोने के निहालजी नामक साधु बोले—आश्रय अजीव है। भारीमालजी स्वामी ने कहा—‘आश्रय के द्वारा कर्मों का ग्रहण होता है और कर्मों का ग्रहण जीव हो करता है, अजीव कर्मों का ग्रहण नहीं कर सकता, अतः आश्रय जीव है। फिर आप ही जनताइये कि गृहस्थ पहले आश्रयी (आश्रय भुक्त्वा) होता है, बाद में जब वह साधु बनता है तब सवरी (सर्व भुक्त्वा) बन जाता है, तो क्या वह आश्रयी-अजीव का सवरी जीव बन गया? तथा जब कोई सवरी साधु वापस गृहस्थ बन जाता है तब क्या वह सवरी जीव का आश्रयी अजीव हो गया?’ इत्यादि भर्चा प्रसंग चलता। वे सही जवाब नहीं दे सके तब विष्णु सोमों (विष्णु मदेशरामजी प्रमुख रूप में थे) ने पंच महाशय (पंतीजी) को प्रमोदन देकर बीच में ही हल्ला मचा दिया।^२ भारीमालजी ने बड़ी शानि रखी। विष्णु शहर में अच्छी प्रतिक्रिया हुई।

मुनिधो बेगमीजी, हमराजजी और रायचरजी आचार्य श्री से आज्ञा लेकर शहर में विद्या लेने के लिए गए। रास्ते में स्वामीय पति त्रिवेन्द्रपुर ने एक काष्ठ को भेजकर मुनियों को अन्न उपाश्रय में बुलाया। मुनि जन वरा पढ़ने

१. समानुषनरे मात, वैराग्य विद विद्याय।

जय वरचा मांरो पूव पूव गू ए॥

(आवक मेशजी कृष्ण-पुस्तक की डा० ५ पा० १)

२. मदेशराम सं० १८६६ के त्रिवेन्द्र पंचमुनि से मुनिधो बेगमीजी के पास समस्त वर लेरायदी बने। अपनी वर पवित्र तीर्थिका में उक्त विषय पर लिखनी करने हुए लिखा है—

कौने दीपा का पहिली उगी गोपान, के दीखे रे हाथ मकाय।

लूना रे लूना मेरादिसारी ॥

उबा मो होव चुकी उई बान, परे बाव निरानो कानी गान।

अरु कलम गी कल रा ए॥

जानु कनी में दीखो उबा बाव(५४), उर निर निर केने क माव॥

कल रगता कल माव न ए॥

(आवक मेशजी कृष्ण-पुस्तक की डा० ५ पा० ४ में ५)

उर्वं गुरु म्हारा हो उर्वं गुरु म्हारा, ये करल्यो भी पाहरा ।
 पाहनें छोटे मारग घालू नहीं, म्हारी राखो इति परतीन ॥
 सीया वरत चौखा पालस्यो, तो ये जास्यो जमारो जीत ।
 आपे नाता अनता आगे किया, बने भोग्या अनोखा ही भोग ॥
 पुण्यतणा परजोग थी, अबके मिलियो छै एह सजोग ।
 समन अठारै सिततरे, महा सुद सानम शुक्वार ॥
 उपदेश दियो रुडी रीत मू, लेज्यां चित्त माहे अनुर विचार ।
 उर्वं गुरु म्हारा हो उर्वं गुरु म्हारा, ये करल्यो भी पाहरा ॥'

(श्रावक महेशजी कृत—पूजगुणी डा० ३ गा० ३४ से ३६)

समझने के बाद उनकी पत्नी आजीवन उनकी धर्म-भगिनी बनकर रही ।
 आजकल बहनों की रग-रंगीनी टोलियां जब गुरु-दर्शन के लिए आती हैं तब दिहाड़ा पाती हैं—

आज की दिहाड़ो जो भलाई मूरज ऊमीयो, भेट्या निज गुरुदेव ।
 हरष हीवा मे जी उमाओ मोरा अग मे, करु म्हारा सामीजी री सेव ॥

इत्यादिक...

श्रावक महेशजी कृत पूजगुणी डा० २ गा० १)

वह श्रावक महेशदासजी का ही बनाया हुआ है । उसमें ऐसे भाव भरे हैं कि आज सैकड़ों वर्ष होने पर भी सबकी अधिकाधिक प्रिय लगता है ।

महेशदासजी ने मुनिश्री हेमराजजी के प्रति अपनी कृपियों में भूरि-भूरि कृतज्ञता व्यक्त की है तथा अपने द्वारा बिने गए अनुचित कृत्य के लिए विनम्र क्षमा-याचना की है ।

२५. प० १८५५ पानी में भारीमानजी स्वामी और सेतसीजी स्वामी ओधपुरिया बाग में गोचरी पधारे । वहां स्थानकस्वामी साधु टीकमजी भी आये । सोचो ने कहा—'आप दोनों परस्पर चर्चा करें । तब भारीमानजी स्वामी ने टीकमजी से पूछा—'आप निर्यपिष्ट' लेने हैं, उसमें दोष समझते हैं या नहीं जबकि आगम में तो उसका निषेध किया है ।' टीकमजी बोले—'हम जानने योग्य धोवन हेमराज लेने हैं उसमें दोष नहीं मानने ।' भारीमानजी स्वामी ने कहा—'धोवन के अतिरिक्त पानी तथा बिहार करते समय आहार आदि भी आप लेते हैं, तो निर के रत धोवन का नाम क्यों लेते हैं ? उन्होंने न तो उग आन को स्वीकार किया और न उपार्थ जवाब दिया । भारीमानजी स्वामी ने स्थान पर आकर स्वारा चर्चा-प्रमाण स्वामीजी को सुनाया ।

(हेम कृतान्त २८)

१. एक घर से एक मानिक का हेमराज आहारान्तिक लेता निर्यपिष्ट कहलाता है । रोग आदि का कारण के बिना वह सेवा शरीर माना गया है ।

२६. एक बार स्थानकवासी साधु तथा उनके श्रावक बोले—‘भीष्मजी ने अपनी वृत्ति में कहा है कि भरत क्षेत्र में साधुओं का विरह निरन्तर नहीं पड़ा—‘निरन्तर नहीं इक्कीस’ हजार।’ परन्तु मूत्र में छेदोपस्थापनीय चारित्र्य का विरह कम-से-कम ६३ हजार वर्ष का और अधिक-से-अधिक १८ कोड़ात्रोड सागर का बतलाया है, अतः भरत क्षेत्र में अल्पकाल का विरह कैसे सम्भव हो सकता है?

मुनिश्री हेमराजजी ने उक्त प्रश्न का जवाब दे दिया। फिर भी विशेष जानकारी के लिए स्थान पर आकर आचार्यश्री भारीमासजी से पूछा तब उन्होंने कहा—‘आगम में जो छेदोपस्थापनीय चारित्र्य का कम-से-कम ६३ हजार वर्ष का विरह कहा है, वह अर्द्ध द्वीप के अन्तर्गत ५ भरत, ५ ऐरावत—इन दस क्षेत्रों की अपेक्षा से है, केवल इस भरत की अपेक्षा से नहीं। इसलिए यक्षी भरत क्षेत्र में अल्प समय के लिए विरह होना असम्भव नहीं है। स्वामीजी का वचन इसी दृष्टि में है। प्रत्येक विषय को अपेक्षा एवं न्याय-युक्ति से समझना चाहिए।

(हेम दृष्टान्त ३१)

२७ स० १८४८ में आचार्य भिक्षु जयपुर पधारे थे। वे वहाँ जोहरी बाजार में कालो (काल्या गोत्र विशेष से प्रसिद्ध) की हाटों पर बनी मेड़ियों में बाईस दिन रुके थे ऐसा कहा जाता है। उस समय लाला हरचन्दजी आदि कई व्यक्ति समझे थे। ऋषिराय मुजरा में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

भीक्षू प्रथम पधारिया, सैतालीसे उनमान।

रात्रि बाबीस रे आसरे, रह्या भुनि गुणगान।

हरचन्द लाला आदि दे, अल्प जन समज्या जान।

(ऋषिराय मुजरा डा० ६ दो० ३, ४)

उसके बाद लगभग बीस वर्षों तक तेरापधी साधु-साध्वियों का जयपुर जाना नहीं हुआ। स० १८६८ में जब आचार्यश्री भारीमासजी मारवाड़ में विचार रहे थे तब एक स्थानकवासी साधु ने बातचीत करते हुए कहा—‘आप लोग जयपुर क्यों

१. पिण में धर्म रहसी जिणराज रो रे,
घोडो सो आग्या (आगिया) नो धमत्कार रे।
सबको परे में बले मिट जावसी रे,
पिण निरन्तर नही इक्कीस हजार रे॥

(साध्वाचार री चौपई डा० ३ गा० ७)

२. ऋषिराय मुजरा डा० ६ दो० ३ में लिखा है कि स्वामीजी अनुमानतः स० १८४७ में जयपुर पधारे और वहाँ लगभग बाईस रात्रि रहे।

जय छोड़ मुजरा विसाम डा० १ दो० २ में भी स्वामीजी का स० १८४७ में जयपुर पधारने का उल्लेख है।

नहीं जाने ?'

आचार्यजी ने कहा—'वहाँ विशेष तेरापंथी थावक नहीं हैं, अतः उधर जाने का अवसर नहीं आया।'

परन्तु स० १८४८ फाल्गुन शुक्ला १५ गुरुवार को मुनि भारीमालजी ने सवाई जयपुर में 'साधु-अणाचारी' की एक डाल (साधवाचार की चौपई दा० २३ 'तीन बोला करे जीव रे जी') की प्रतिनिधि की भी और वे स्वामीजी के साथ थे। इसमें प्रमाणित होता है कि स्वामीजी स० १८४८ के माघपूर चातुर्मास के पश्चात् फाल्गुन महीने में जयपुर पधारे थे।

म्यानवासी साधु ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'भीष्मजी का समझाया हुआ जोहरियों का बादशाह तो वहाँ बैठा है, फिर और थावक होते क्या देर लगती है? थावक तो वहाँ जाने से ही बनेंगे। अपने आप थोड़े ही बन जायेंगे।

(ध्यानानुधृत)

उनकी प्रेरणा बहुत महत्त्वपूर्ण और सामयिक थी। आचार्यजी के मन में बैठ गई। उन्होंने जयपुर की तरफ बिहार किया। किसनगढ़ होने हुए जयपुर पधारे और वहाँ पक्षी दहदा की जगह में स० १८६६ का चातुर्मास किया। आचार्यजी के अथक प्रयास से अनेक भाई-बहनों ने समझ कर गुरु-धारणा की। तब से जयपुर शहर तेरापंथ का स्थायी क्षेत्र बन गया। इस सदर्भ में पड़िये निम्नोक्त पद्य—

दिवस कितायक तिहा रही, भारीमाल गणधार।
जयपुर सँहर पधारिया, करवा भविक उधार॥
सबत् अठार गुणतरे, गणपति कियो चौमास।
मँठ पदमसी ददा तणी, जायगा मे सुविमास॥

(जय सुत्रण दा० ३ दो० १, २)

जन बोहला समग्या तदा, प्रभात रात्रि बखान।
भारीमाल श्रुपिरायजी, वाचै ऊद्यम आण॥

(श्रुपिराय सुत्रण दा० ६ दो० ५)

भारीमालजी स्वामी शरीर में अण वेदना होने के कारण चातुर्मास के पश्चात् फाल्गुन महीने तक जयपुर में विराजे। अनेक साधु-साध्वी गुरु-दर्शनार्थ अभिहित हुए। सरूपचंदजी, जोतमलजी और भीमजी ने अपनी माता कलूजी सहित वहाँ दीक्षा स्वीकार की।

(भारीमाल चरित्र दा० ६ के आधार से)

२८. भारीमालजी स्वामी ने स्वस्थ होने के पश्चात् जयपुर से बिहार किया। अमरा गाँव का स्पर्श करते हुए उन्होंने स० १८७० का चातुर्मास सवाई माघपूर में किया। उस वर्ष आचार्यप्रवर के साथ साध्विया भी थी, ऐसा शासन विलास दा० १ गा० २३ की वार्तिका (मुनि रामजी २३) में उल्लेख मिलता है।

चातुर्मास के पश्चात् आमपाग के क्षेत्रों में बिहार कर आचार्यप्रवर पुरः माधोपुर पधारे। वहाँ मुनिश्री वंशीरामजी (२८) ७ साधुओं से गुरु दर्शनार्थ आये। आचार्यश्री भारीमालजी साधु परिवार से उनके सामने पधारे। वहाँ इक्कीस साधु-साध्वी एकीकृत हो गये। ऐसा उल्लेख शासन विन्यास डा० १ गा० २६ की वास्तिका (वंशीरामजी) में है।

फिर वहाँ से बिहार कर आचार्यश्री भारीमालजी जयपुर पधारे। वहाँ फिर इक्कीस साधु-साध्वी सम्मिलित हो गये। आचार्यप्रवर ने साधु-साध्वियों के चातुर्मास घोषित कर दिया। जनारामजी स्वामी को जयपुर में छोड़कर स्वयं ने मानवाड की तरफ बिहार कर दिया।^१

स० १८७१ का चातुर्मास आचार्यश्री ने बोरावड में रिया।

२६ भारीमालजी स्वामी के शासनकाल में सध की अच्छी प्रगति हुई। साधु-साध्वियों की वृद्धि के अतिरिक्त श्रावक-श्राविकाओं की भी बहुत वृद्धि हुई। उस वृद्धि का साधारण अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जब उन्होंने स० १८७५ का चातुर्मास काकडोली में किया तब लगभग सत्तरह सौ पौषध हुए थे—

चित्तये बधं पूजजी, सँहर काकरोली सोय।

पोगा सतरसो रे आसरै, वंराग बधतो जोय ॥

(भारीमाल चरित्र डा० ५ दो० ३)

उस समय एक ग्राम में दत्तने पौषध होने का सचमुच ही श्रावक-श्राविकाओं की वृद्धि का चोकर था।

३० श्रावक लोगों के प्रार्थना करने पर स० १८७५ के श्रीमन्माल में आचार्यश्री भारीमालजी उदयपुर पधारे। वहाँ बाजार में दुकानों के ऊपर विराजना। रात को नीचे बसावसान होता और दिन में धर्म-वार्त्ताएँ चलती। काफी लोग आने-जाने लगे। कुछ व्यक्ति समझकर तेरापथी बने।

परन्तु कुछ विद्वेयी लोग उस महन नहीं कर सके। वे मन-ही-म। पश्यन रचकर मठाराणा भीमसिंहजी के पास पहुँचे और कहने लगे— आजकल यहाँ

१. रसा दर्शन किया श्री गुरु ना, भेवा हुआ हो रसा ठाणा इक्कीस। रसायू बिहार गियो कधी रीन स्यु, आगेवाणी हो पूज भारीमालजी अमीग ॥ बनी जंपुर शहर में भेगा दृश्या स्वामी दीक्षा हो त्या चोमामा भोनाय। वंशीरामजी ने जयपुर राख नै, मुरधर देसे हो पात्मा भुतिराय ॥ आचार्यश्री ने मुनि वंशीरामजी का स० १८७१ का चातुर्मास जयपुर में फरमाया था। वे चातुर्मास के पूर्व चासट पधारे। वहाँ जवानक स० १८७० जेठ मुदि १० की दिवगत हो गये। विस्तृत वर्णन उनके प्रकरण में पढ़ें।

तेरापदी साधु आये हुए है, ये जहाँ आये है वहाँ दुःखान्त पद आया है, ये वहाँ को पगद नहीं करते अग, उगे गोक देते है। दया के पोर बिरोधी है दान का भी विरोध करने है आदि-आदि। अग, इन्हे शहर में निकलवा दिया जाए तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।'

महाराणा ने उनकी बात पर विचार कर दिया और बिना सोचे-समझे हलकारों को भेजकर आचार्यजी भारीमातली को शहर में रहने की मना कर दी।

भारीमातली स्वामी ने मुकाम वहाँ में बिहार कर दिया और राजनगर पधार गये। इतने आचक सोनी के हृदय में बड़ी चोट मरी। प्रतिपक्षी लोग बहुत गुम हुए और आचार्यदेवर को मेवाड देश में निवासवाने का उपाय सोचने लगे। इस बात का पता चलना सब मंत्राधी आचक बग में बिता को शहर-भी दौड़ गई। वे राजनगर में मँचड़ी की मदद में मुकाम होकर उग समाना पर बिहार करने लगे। सबसे भिन्नकर यह निर्णय दिया कि यदि भारीमातली स्वामी को मेवाड में जाने जाने की आज्ञा या जाए तो हम सबको भी उनके साथ मेवाड छोड़ देना चाहिए।

'बैसा करना बैसा भरना' की मोकोनि के अनुसार उगी समय उदयपुर में प्रहरी का प्रकीर्ण हो गया। शहर में मरी फँस गई। मँचड़ी नागरिक बात-बदलिता हो गए। घर-घर में शोक-ही-शोक छा गया। महाराणा के पाठवी पुत्र और दामार (बोटा बागी) भी घरलोच पहुँच गए। जिनसे महाराणा भयन निराश और वितापन रहने लगे।

केशरजी भडारी को सारी बात अवगत हुई तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे महाराणा के विश्वस्त ध्यनियों में थे अतः महाराणा का सान्निध्य प्राप्त होता उनके लिए मज्जा था। वे सम्पूर्ण महाराणा के गमीन पहुँचे और सारी स्थिति को स्पष्ट करने हुए बोले—'जो साधु भीटी को भी नहीं सताते उनको सताकर आप क्या काम उठावेंगे?' शहर में तो आपने उनको निकलवा ही दिया, पर मैंने सुना है कि मेवाड से भी निवासने का विचार किया जा रहा है। आपको यह क्या सूझा है (जायने भूही कम भूही है)? जिस राज्य में सब जनों को सत्ताया जाता है उसे प्रकृति कभी क्षमा नहीं करती। सत्ता को शहर में निकलवा देने के पश्चात् जो अद्रिघ घटनाएँ घटी हैं वे सब प्रकृति के रोप का ही परिणाम है। आपके पुत्र और आमाता का वियोग हो गया। सारे शहर में मरी के कारण हाहाकार फैल रहा

१. एक प्राचीन पत्र में लिखा है कि केशरजी भडारी मेवाड के प्रख्यात न्यायाधीश थे। ऐसा भी सुना जाता है कि उससे पूर्व वे महाराणा की खोली की सुरक्षा पर नियुक्त अधिकारी थे। वे कुछ समय पूर्व आचक भोभजी द्वारा समझकर तेरापदी आचक बन गए थे पर वे प्रकट रूप में नहीं आए थे।

है। फिर न जाने भविष्य में क्या होने वाला है अतः आपको चिन्तन करना चाहिए।

इस प्रकार केशरजी द्वारा मधुसूतने से महाराणा के दिल की सारी भ्रान्तिया दूर हो गई और वे अपने द्वारा किये कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप करने लगे।

महाराणा ने केशरजी से कहा—‘अब वापस उन्हें आमंत्रित कर बुला लिया जाए तो ? केशरजी बोले—‘यह हाथ की बात नहीं है पर प्रयत्न करना तो साम ही है।’

उसके बाद महाराणा ने खाम रक्का लिखकर भेजा। हलकारा राजनगर गया तो एक बार तो श्रावक समूह में हलचल मच गई। वे सोचने लगे कि गुहदेव की मेवाड़ में निवसवाने का आदेश दिया है। पर ज्यों ही पत्र खोला और पढ़ा तो श्रावक लोग बासी उठकने लगे। उनके हृदय का पार नहीं रहा। समूचा बाटा-वरण ही बदल गया। वह पत्र इस प्रकार है—

प्रथम पत्र की नकल

श्री एक्विगजी

श्री बाणनाथजी

श्री नाथजी

स्वस्ति श्री साध श्री भारमान श्री तेरेपथी साध श्री राणा भीममीथ री विनती माधुम ह्रीं, क्या करे अठे पदारोगा की दुष्ट वे दुष्टाणो कीदो जी सामु न्ही देखेगा मा माधु वा नगर में प्रजा है ज्योरी दया कर जेज न्हीं करेगा बनी काही सधु ओर म्पाचार रहा स्वसात का लप्या जाणेमा संवत् १८३५ वर्ष आषाढ़ वदि ३ शुके।

हिन्दी अनुवाद

श्री एक्विगजी

श्री बाणनाथजी

श्रीनाथजी

स्वस्ति श्री तेरेपथी माधु भारमपजी से राणा भीमसिंह की विनति माधुम हो—कृपा करके आग पठा पधारें। उन दुष्टों ने जो दुष्टता की उत्तरी ओर न देखे। मेरी तथा नगर की प्रजा की ओर देखकर दया करें और आने में विवश न करें। अधिक क्या लिखू। अग्य ममाचार शाह शिवमान के द्वारा विने पत्र से

१ बीर विनोद (भाग २ प्रकरण १५) तथा उदयपुर राज्य का इतिहास (पृ० ७१८) के अनुसार स० १८३८ चैत्र शुक्ला द्वितीया (४ अप्रैल १८२१) को त्रिवेणी संधूदया को उदयपुर राज्य का प्रधानमंत्री बनाया गया था। मधवराव वे ही उदात्त पत्र में उल्लिखित शाह शिवमान थे। प्रधानमंत्री बनने से पूर्व मधवराव वे महाराणाजी के निजी सचिव के रूप में कार्य किया करते थे। महाराणा के पत्र में पता लगता है कि उन्होंने महाराणा के

जानें। सं० १८७५ आषाढ़ कृष्णा ३ शुक्रवार।'

आचार्यप्रवर को यह पत्र मुताबा और उदयपुर पधारने के लिए निवेदन किया। उन्होंने कहा—अब उस पधरीली घरती में जाने का विचार नहीं है।

महाराणा को जब यह शात हुआ तो उन्हें बहुत निराशा हुई और उन्होंने पुनः दूसरा खास स्वका भेजा। उस समय भारीमालजी स्वामी काकडोली विराजते थे—

काकरोली भारीमाल ने, कोई विनति अधिक विशाल।

परवानो निज हाथ सूं, लिख्यो छिहत्तरे वर्ष निहास ॥

(जय मुजश ढा० १० था० १०)

द्वितीय पत्र की नकल

श्री एकलिंगजी

श्री बाणनाथजी

श्रीनाथजी

स्वस्ति श्री तेरापयी साध श्री भारमलजी मू म्हारी कण्ठोत्त वच्चे अप्र आप अठे पदारमो जमा पात्र सू। आगे ही रुको दियो हो सो अवे बेगा पदारोगा संवत् १८७६ वर्षे पोष वीद ११। बेगा आवेगा। श्रीजी रो राज है सो सारां को सीर है जी भी सन्देह काहि बी न्ही लावेगा।

हिन्दी अनुवाद

श्री एकलिंगजी

श्री बाणनाथजी

श्री नाथजी

स्वस्ति श्री तेरापयी साधु श्री भारमलजी से मेरी ददवत् मालूम हो। अपरन्व आप निस्तकोच यहाँ पधारें। इससे पहले भी एक पत्र आपको दिया था, अत अब शीघ्र ही पधारें। सं० १८७६ पोष कृष्णा ११। शीघ्र आयें। श्री जी का राज्य है, जिसमें सभी का साक्षा है। इसलिए किसी प्रकार का सन्देह न करें।

भारीमाल चरित्र में सं० १८७६ के पुर बातुर्नास में महाराणा द्वारा दूसरी बार प्रार्थना करवाने का उल्लेख है—

छिहत्तरे वर्ष पुर मशे, भारीमाल रिपराय।

आई हिन्दुरति नी बीनती, करी घणी नरमाय ॥

कयनानुसार उपर्युक्त घटना से संबंधित कोई पत्र विस्तार से लिखकर भेजा था पर उसमें क्या समाचार थे, इसकी कोई जानकारी इस समय प्राप्त नहीं है।

१. उस समय उदयपुर महाराणा के राज्यघराने में ४ राजकीय विभागों में सं० सावन वदि १ से होना माना जाता था इसलिए इस प्रथम पत्र में अंकित सं० श्रावणादि क्रम से १८७५ एव वि० सं० १८७६ समझना चाहिए।

उदयपुर पधारियें, दुनिया साहमो देख ।
 दुष्ट साहमो नही देखियें, कृपा करो वियेख ॥
 सामी मानी बीणती, बीमार्गो उतरिया मोय ।
 बिचरत-बिचरत आविया, सहर काकरोनी ज्योय ॥

(भारीमाल चरित ढा० ५ दो० ४ से ६)

पर यहा भारीमालजी स्वामी के चातुर्मासो के क्रम से सलग्न उक्त वर्णन किया गया है । वास्तव में पुर चातुर्मास के पश्चात् भारीमालजी स्वामी के काकडोली पधारने पर ही दूसरा खूबन आया था जो उक्त जय मुजस के प्रमाण से स्पष्ट है ।

भारीमालजी स्वामी वृद्धावस्था तथा शारीरिक दुर्बलता के कारण स्वयं उदयपुर नही पधार सके पर उपयुक्त अवसर समझकर जनोत्कार की भावना से महाराणा को वितती स्वीकार की और मुनि हेमराजजी, रायचन्दजी और जीतमलजी आदि तेरह साधुओ को वहा भेजा—

भारीमाल गणपति तदा काई, निज वय वृद्ध विचार ।
 शक्ति थोड़ी तिण कारणे काई, पोते न कियो बिहार ॥
 मेल्या ऋषिराय हेम जय प्रमुख ही काई, तेरे सत श्रीकार ।
 उदियापुरे पधारिया काई, ऋषिराय मुगण निगार ॥

(जय मुजस ढा० १० गा० ११, १२)

३१ मुनि श्री हेमराजजी आदि तेरह सत उदयपुर पहुँचे और बाजार की दूकानों में ठहरे । भारीमालजी स्वामी को निकाले जाने पर वहा के तेरापथी भाइयो को जितना दुख हुआ था अब महाराणा द्वारा निमंत्रित होकर उनके शिष्यों के पदार्पण से उन्हें उतना ही हर्ष हुआ । वहा की जनता बड़े उत्साह से संत समागम तथा प्रवचन सुनने का लाभ लेने लगी ।

मुनि वृन्द का वहा पर एक महीने तक ठहरना हुआ । उस मासिक प्रदान में स्वयं महाराणा ग्यारह बार सतो के पास आये और दर्शन का लाभ लिया ।

महाराणा को जुलूम बनाकर बाजार से आने-जाने की बहुत रुचि रहनी थी । बहुधा अगम्यारी निकलनी ही रहनी थी । मार्ग में जब मनो का स्थान आता तब मशायदा हाथी को टकवा कर नमस्कार करते और फिर आगे बढ़ा करते । एक दिन भूत में हाथी आगे निकल गया, परन्तु ज्योंही उन्हें स्मरण हुआ त्योंही महाविन में हाथी को वापस घुमाने के लिए वहा । वे वापस आये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके आगे बढ़े । उन घटना के पश्चात् जब सतो का स्थान आता तब महाविन मनेन कर दिया करता था ।

बेशरजी मशरी के मार्ग में महाराणा को तेरापथी साधुओं के आचार-विचार तथा मर्यादादि की भी अच्छी जानकारी हो गई—

भडारी थावक पक्को बाँड़, केशरजी सुविचार ।

तास प्रसंग थी समझिया, राणा भीमसिंह सुखचार ॥

(जय गुजरात ० १० गा० १)

एक बार किसी व्यक्ति ने धर्म-वर्चा करते हुए कहा—‘महाराज ! आज एक साध्वी अवेली ही गाव के बाहर घूम रही थी ।’ महाराणा बोले—‘वह और कोई हो सकती है, क्योंकि तेरापय सम्प्रदाय की साध्वी अवेली नहीं रह सकती ।’

इस प्रकार वे तेरापय के आचार गवधी कल्पाकल्प से अवगत हो गए और तेरापय के प्रति अत्यंत निष्ठा रखने लगे ।

जो विपक्षी लोग तेरापयी आधुओं को मेवाड़ में निकलवा देना चाहते थे, उनके लिए महाराणा का तेरापयी मतों के प्रति रवि रखना, उन्हें निमंत्रित कर बुलाना और उस निमंत्रण पर साधुओं का उदयपुर में आना, ये सब कार्य अत्यंत कष्टकर हो रहे थे । व्याख्यान श्रवण के लिए काफी मझपा में जनता का एकत्रित होना तो उन्हें अमर्त्य हो रहा था । अनेक प्रकार के प्रयास करने पर भी जनता को रोक नहीं सके तब राजिकालीन व्याख्यान में बाधाएँ उपस्थित करने लगे । कई व्यक्तियों ने इधर-उधर से छुशकर पत्थर आदि फेंकना प्रारंभ किया । एक बार तो एक पत्थर हेमराजजी स्वामी के पास बैठे हुए बाल मुनि जीतमलजी के पास से होकर गुजरा । श्रावकों द्वारा अनेक उपाय करने पर भी वह हंगामा ज्ञान नहीं हुआ ।

उन्हीं दिनों महाराणा ने केशरजी भडारी से पूछ लिया कि शहर में सत्तों को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?

केशरजी ने निवेदन किया—‘और तो किसी प्रकार का कष्ट नहीं है पर व्याख्यान के समय कुछ लोग इधर-उधर से पत्थर आदि फेंकते हैं ।’

महाराणा यह सुनकर बहुत खिन्न हुए । उन्होंने उसी दिन से कुछ गुप्तचरों को वहाँ नियुक्त किया । रात के व्याख्यान में जब कुछ व्यक्ति घूम या पत्थर फेंक कर भागे तो गुप्तचरों ने भागते हुए सड़के को पकड़ लिया और दूसरे दिन महाराणा के सम्मुख उपस्थित किया । उन्होंने उसे गिरफ्तार कर मृत्यु-दंड का आदेश दे दिया जिससे सारे शहर में खलबली मच गई ।

नड़के की मा ने जब यह सुना तो वह विमापान करने लगी । उसने महाराणा से अपने इकलौते पुत्र को छोड़ देने की याचना की । पंचों ने भी दरबार में जाकर उसे छोड़ने के लिए काफी प्रयास किया । महाराणा ने उन सबको उत्तर देने हुए कहा—‘जोधपुर के महाराज मानसिंहजी ने तो सत्ताईस आश्रमियों को मृत्यु-दंड दिया था पर मैंने तो अब तक किसी को ऐसा दंड नहीं दिया, मेरा तो यह प्रथम ही अवसर है । यह सबों का अपराधी है इसलिए इसने छोटा दंड इसके लिए नहीं हो सकता । पंच निराश होकर वापस आ गये । शहर में इस बात की बड़ी खर्चा

होने लगी ।

मुनि हेमराजजी आदि ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने केसरजी से कहा — 'हम लोगों को कोई गारंटी देना है या पीट भी देना है तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसे सहन करें, परन्तु हमारे लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु-दंड देना उचित नहीं लगता ।'

लोगों की भावना को समझाकर केसरजी ने महाराणा के सामने बात बताने हुए कहा — 'सब परमा रहे थे कि हमारे लिए किसी भाई को मृत्यु-दंड देना ठीक नहीं ।'

महाराणा ने मुस्कराते हुए कहा — 'मग अब तो गौरव के अनुकूल ही करमा रहे हैं और मैं भी किसी को मृत्यु-दंड देना नहीं चाहता । यह तो लोगों के मन में भय पैदा करने के लिए किया है ताकि भविष्य में कोई व्यक्ति साधुओं को बर्बर न दे ।'

महाराणा ने उस व्यक्ति को बुलाया और कहा — 'तुम मृत्यु-दंड दिया जाना-परन्तु सब इस बात से प्रसन्न नहीं हैं अब, इस बार तो तुम छोड़ना हूँ, पर आगे कभी ऐसा काम करेगा तो एकलिंगजी की 'प्राण' (गाय) लेकर कहना है कि फिर कभी नहीं छोड़ूँगा ।'

महाराणा की इस धमकी से विरोधी व्यक्तियों का उपद्रव शान्त हो गया ।
सबों का लगभग एक महीने का वह उदयपुर-प्रवास बहुत ही सफल रहा । बाद में मुनि वृन्द ने आचार्यश्री भारीमालजी के दर्शन कर सब वृत्तान्त सुनाया । इसका भारीमाल चरित्र में सन्निहित वर्णन इस प्रकार है —

हेम रिप रायचन्दजी, तेरे साध तिवार ।
पूज हुकम मू आविया, उदयापुर सेहर मझार ॥
उदयापुर आवे नम्बो, हिन्दुपति हरप सहोत ।
उपहार हूओ ह्यां बनि धणो, जाणें चौया आरा नी रीत ।
एक मास रहि उदियापुर में, गोमूदें राखनियां कर उपहार ।
मुखे समाधे साधजी, भेंटया भारीमाल अणहार ॥

(भारीमाल चरित्र दा० ५ दो० ७ से ९)

स० १८७७ का चानुर्माण भी मुनिश्री हेमराजजी ने उदयपुर में ही किया ।

भारीमालजी स्वामी को उदयपुर से निकालने, खास रुके देकर वापस बुलाने की प्रार्थना एवं मुनिश्री हेमराजजी आदि के वहाँ गमन के संदर्भ में प्राचीन प्रकीर्णक पत्र २८ प्रकरण ४ में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

'पछे स० १८७६ भारीमालजी पधार्या । इव्या भिडाई, पछे भारीमालजी स्वामी नै राणजी रहिवा रो ना कह्यो । पछे पाछा राजनगर आया, बाजहोली पधार्या, उठा मू बाइवा सागा जद केसरजी भहारी प्रगट पणे होय नै अरज करो

तरे खास रुक्को परवाना ने दे ने मेल्या जद ऋषिराय महाराज हेम महामुनि जीतमलजी स्वामी आदि पधार्या । राणेजी महीना मे ११ वार असवारी लगाय ने आया दर्शन कीया, घणो उपहार हुयो । पछे ७७ को सोमासो हेमराजजी स्वामी कीयो ।'

ऊपर जो संवत् १८७६ लिखा है वह पंचांगानुसार समझना चाहिए । जिससे पूर्वोक्त खास रुक्के आदि की संवत् के साथ विसंगति नहीं होगी । सावनादि क्रम से स० १८७५ है ।

'राणा भीमसिंहजी रा रुक्का रो विवरण' शीर्षक पत्रो मे भी उपर्युक्त घटना सकलित की हुई है । देखें पुस्तक भंडार मे 'ध्यात' की पुस्तक सख्या २१० (ख) । महाराणा के हाथ से लिखे हुए रुक्के आज भी मौजूद हैं । देखें 'लिखित व प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तक स १८८ ।

मुनि श्री हेमराजजी ने भारीमालजी स्वामी के केलवा मे दर्शन किये (अनुमानतः १८७८ के चातुर्मास के बाद) । उस दिन दीर्घ विहार करने से उन्हे अधिक पकान आ गई । भारीमालजी से जब ऐसा निवेदन किया तो उन्होंने कहा—'रास्ते के जैतपुरा ग्राम में क्यों नहीं ठहरे, इतना लम्बा विहार क्यों किया ? मुनि जोदनमलजी की इच्छा नहीं थी, अतः नहीं रहे ।' भारीमालजी स्वामी ने मुस्कराकर कहा—'क्या यह आचार्य हो गया था जिससे इसका कहना मानना पडा, अपनी इच्छानुसार ही वहां ठहर सकते थे ।'

(प्रकीर्णक पत्र सख्या २७ प्र० ४)

३३ संवत् १८७७ आमेट में दो श्रावक शंकाशील हो गये । गण के अवगुणवाद बोलकर लोगों को सदिग्ध बनाने लगे । भारीमालजी स्वामी ने जब यह सुना तो उन्होंने हेमराजजी स्वामी से कहा—जिस प्रकार कुछ दिन पूर्व हमने दीपोजी (१२) साधु को गण से पृथक् किया था उसी प्रकार अगर हम उन शंकाशील श्रावकों को चार तीर्थ से अलग कर दें तो दूसरों के शंका न पडे । ऐसी लोकोक्ति भी है कि 'दुश्मनो धाकर दुश्मन सरीखो अर्थात् दोनों तरफ चलने वाला नौकर भी दुश्मन के बराबर होता है । इस प्रकार सन्देशशील दोनों व्यक्तियों को सध से पृथक् मानने का विचार किया ।

(हेम दृष्टान्त ३०)

३४. सं० १८७७ में मुनि जीवोजी (८५) की दीक्षा प्रसंग को लेकर सावा आदि क्षेत्रों में कुछ व्यक्ति सध से विमुख हो गये । वे आचार्यप्रवर तथा साधु-साध्वियों की उग्र रूप से निन्दा करने लगे । भारीमालजी स्वामी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने चिंतन किया कि इस समय सावा में कोई साधु-साध्वी न रहे तो अच्छा है क्योंकि वहां विग्रहमय वातावरण मे रहना अभी लाभदायक नहीं लगता । आचार्यश्री के इस दृष्टिकोण की जानकारी न होने से मुनि

हेम वषण वर रयण समा सुण, गणपति हर्ष सुपाया ।

परम विनीत रु नीतवन्त हृद, आण्या हेम सवाया ॥

(जय सुजश डा० ७ गा० १० से १३)

हेम नवरसा डा० ५ गा० ५४ से ५६ में भी उपर्युक्त वर्णन है ।

मुनि श्री छेतसीजी ने भी मुनि रायचन्दजी को युवाचार्य पद देने के लिए अनुरोध किया—

सतनुगी हेम वषण वदीज रे, रायचन्दजी ने पट दीज रे ।

म्हारी तरफ सू चिन्ता न कीज रे ॥

भारीमाल गुणी मन हरख्या रे, निकलक दोनूई नै निरख्या रे ।

याने परम विनवत परख्या रे ॥

एहवा उभय बड़ा मुनि धीरा रे, गण-स्यमण गैहूर गभोरा रे ।

हृद विमल अमोलक हीरा रे ॥

(शुपिराय सुजश डा० ७ गा० ४ से ६)

दोनों मुनियों के उपर्युक्त निवेदन करने पर भी आचार्य श्री भारीमालजी ने युवाचार्य नियुक्ति के समय लेख पत्र में दो नाम लिखवाये ।

“...सर्व साध-साध्वी छेतसीजी रायचन्दजी री आगन्या माहे चालणी”...

३८. ‘स्वामी भीछणजी री मरजादा बाघी तिण में छोटणी मेलणी पडे तो स्वामी भारीमालजी री आगन्या छे थोड़ी घणी देणी लेणी पडे तो बढा आचार्या-रिक्त नै छे, ए आगन्या ओरा नै नही । ए श्री मुख केलवा मध्ये पुरमायो छे । समय १८७७ रा वेसाख विद ५ रविवार ।’

(प्राचीन पत्र से उद्धृत)

३९. सारौरिक अस्वस्थता तथा दुर्बलता को देखकर आचार्य श्री भारीमालजी ने मलेपन-तप प्रारम्भ कर दिया । सं० १८७८ वैशाख कृष्ण ८ से उन्होंने बौद्धिहार तेला किया । एकादशी को अल्पाहार लिया । तेला करने से कुछ रोग-प्रशान्ति होने से चार तीर्थ में प्रसन्नता हुई फिर दो दिन आहार लेकर चतुर्दशी को उपवास किया और अमावस्या को पारणा किया । वैशाख सुदि १ से जेठ यदि ७ तक अल्पाहार लिया । जेठ यदि ७ को साधुओं को आमन्त्रित कर आचार्यप्रवर ने कहा—‘अब मेरी उपस्था करने की प्रवृत्ति इच्छा हो रही है, अतः शीघ्रानिशीघ्र निवेदना प्रारम्भ करना चाहता हूँ ।’ साधुओं ने गुरुदेव से नम्र निवेदन किया—‘आज थोड़ा-थोड़ा भोजन अवश्य सें त्रिमने हमारा मन प्रभुस्तित रहै ।’ पर आचार्यप्रवर ने उनकी प्रार्थना न मानते हुए जेठ यदि अष्टमी, नवमी और दशमी तक तेला किया । एकादशी को पारणा किया । बाद में दो उपवास, दो तेले और दो पोवा किया । फिर आषाढ़ शुक्ल ६ को उपवास किया । उपवास से तेला देने से तेला, तेले से पोवा इस प्रकार प्रतिदिन एक-एक आये रहते हुए १५

दिन का तप किया। उसका आगाड़ शुक्रवा १५ रविवार (आगाड़ शुक्रवा दसमी से थी) को पारणा किया। गायन यदि १ से ३ तक लेना किया। फिर कुछ दिन थोड़ा-थोड़ा भोजन किया। सावन यदि ८ से एकान्तर चानू किने जो सावन गुदि १० तक चने। गुदि ११ और १२ को बेला किया। तेरम को पारणा किया। दो दिन लगातार आहार करके फिर एकान्तर तप प्रारम्भ किया जो कुछ दिन चला। फिर कुछ दिन ऊनोदरी और कुछ दिन उपवासो का तप चलता रहा।

(भारीमाल चरित्र दा० ६ तथा दा० ७ दोहा १ से ३ के आधार में)
वह लेखपत्र स १६७७ वैशाख यदि ६ गुरुवार को केलवा' में लिखा गया। लेखपत्र की प्रथम तथा अन्तिम पक्ति स्वयं भारीमालजी स्वामी के हाथ की लिखी हुई है, बीच का भाग अन्वय्य होन से अनुमानतः मुनि जीतमलजी द्वारा लिखराया।'।

लेखपत्र में जब दो नाम लिखवाये गये तब उमो समय १७ वर्षोंय वालक मुनि जीतमलजी ने इस प्रणाली को भविष्य के लिए समुचित न समझ कर निरादन किया—'गुरुदेव! भाभी आचार्य के लिए आप चाहे। जमका नाम रखें पर नाम एक ही होना चाहिए।' आचार्यदेव ने फरमाया—'जीतमल! इन दोनों में अन्तर क्या है, ये मामा भालजा ही हैं।'।

मुनि श्री ने वापस यही प्रार्थना की कि नाम एक ही रहना चाहिए।

भारीमालजी स्वामी न जय मुनि की वितांन पर भविष्य के लिए उपयुक्त समझ कर पुनः आचार्य पद के लेखपत्र में एक नाम मुनि रायचन्दजी का ही रखा, मुनि सेतमीजी का नहीं।

वह लेखपत्र आज भी सुरक्षित है। वहा मुनि सेतमीजी के नाम पर—
ऐसा निशान लगाया हुआ है। उसके आगे के भाग में केवल रायचन्दजी स्वामी के नाम का ही उल्लेख है। उस लेखपत्र पर तत्कालीन साधुओं के हस्ताक्षर भी हैं।

उक्त मदमें में पढ़िए निम्नोक्त पद्य :—

१. उस समय आचार्य श्री भारीमालजी के लवा में विराज रहे थे। वहाँ उन्होंने वैशाख यदि ८ के दिन सन्मेलना प्रारम्भ करते हुए सर्व प्रथम लेला किया। वैशाख यदि ४ के दिन उतरे बेला (दो दिन का उपवास) था।

(भारीमाल चरित्र दा० ६ गा० १)

२. लेखपत्र पर पन्द्रहवीं वम मध्या में मुनि जीतमलजी द्वारा लिखे गये हस्ताक्षरों की लिपि के समान ही लेखपत्र की लिपि लगती है, इससे ऐसा प्रतीत होता है।

सेनगीत्री हेमत्री भली, गूछी मे दियो पाट ।

बड़ावारी ज़ुबिरायबंद मे, बिरकर राख्यो पाट ।

(भारीमाल चरित्र डा० ८ गा० ३)

ताम पूत्र ज़ुबिराय मे, दीघो पद मुबराक ।

प्रदट दिका भारी लकी, मरी अचिया काज ॥

(ज़ुबिराय पञ्चदशिनियो डा २ गा. ९)

मुनि श्री सेनगीत्री तो प्रारंभ से ही आचार्य श्री की सेवा में रहते थे। मुनि श्री हेमरात्रिजी अलग विहार करते थे। उनका मृ. १८७८ का चानुर्माण २ माधुओं से आमेट करमाया—

तब मुबराक दियो ज़ुबिराय मै, हेम भणी मुबिमातो ।

नव सता मू खाम भोलायो, गीहर आमेट चौमातो ॥

(जय मुबराक डा० ७ गा० १४)

यद्यपि युवाचार्य पद के लिए दो नाम लिखने और फिर एक नाम रखने की घटना का भारीमाल चरित्र, ज़ुबिराय मुबराक आदि आख्यानों में उल्लेख नहीं है पर युवाचार्य पद के लिए निम्ने पत्र पर दोनों नाम हैं और बाद में प्रथम नाम पर विदिया सगाई हुई है। इससे उपर्युक्त घटना प्रमाणित हो जाती है और ऐसी सुप्रसिद्ध अनुभूति भी है।

शामनप्रभाकर—प्रकरण २ डा. ९ गा. १९ में ज़ुबिराय को युवाचार्य पद देने का सं० १८७६ लिखा है—

सुवनीशी गिर मेहरा, संन सनी प्रतिपास ।

जाणी युवपद आपियो, अठारै छियनरे भारीमाल ॥

पर वह उपर्युक्त लेखन के प्रमाण से मलल है।

४०. आचार्यप्रवर का सं० १८७८ का अन्तिम चानुर्माण बेलवा में था। वहां उनके साथ ८ माधु थे। जो रात-दिन सेवा में सलग्न रहते थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. सेनगीत्री (२२)

२. रायचन्दजी (४१)

३. जीवोजी (४४)

४. रामचन्दजी (६६)

५. बिरघोजी (मुनिश्री वर्द्धमानजी) (६७)

६. हीरजी (७६)

७. शिवजी (७८)

८. सधु जीवजी (८६) ।

(भारीमाल चरित्र डा० ७ गा० २ में ११ के आधार से)

४३ मान बरि ह को आवाजो की भारीमात्र की का चरमो-मग बरी गुणगान से मालिग मग । रात-रात में पूर-पूर तक समानाद गजुनो मे मेराद गग मानाद के हजारों आधी रात मर में लकनित हो गये । सोमाया का ने हिन्दो मरिगो गैरा हो गई । इमका कारण था कि गहरो-गह मरी मरिगो मी पगारी गई थी, परन्तु उसके गहरो में दृष्टि हिमन हो गे पूरगी मरी रातगमर में बनवा सी गई । सोमो ने सामो समया मरी हो गई कि अब की-मी मरी का कारण हिमन जग-जग चाहिए । आधिर परमर सममोता कर मीने का भाग मेराद की मरी का भीर ऊपर का भाग इकगानीय मर माँगे मारगाद की मरी का रग मग और सोमाया का जुगुम मजकर सोम रचाला हुग ।

जुगुम धीरे-धीरे दगाज के समीप पहुचा, पर अधिक ऊँची हो गे मरी दरवाजे में मरी निजग मरी । फिर सोमो ने समगुय निजगीय मरिग मर गई । सब कुछ नीजगनों मे निजग कर उस दरवाजे को तोड़ बागा और वे आगे बढ़े । घोई-दा (राजनगर में एक कोश) के 'बाहो' में पहुचकर दाद-मरकार दिया ।

भारीमालजी स्वामी के दिग्गज होने की खबर जब उदयपुर पहुची तब महाराणा भीमसिंहजी ने बेसरजी भदारी से आग्रह पूर्वक कहा—'सला में होदे वाला मारा ब्यय राग्यकोष से लगना चाहिए।' बेसरजी ने उनगे निवेदन दिया—'जिग प्रकार आप भारीमालजी स्वामी के प्रति श्रद्धा रखने हैं उसी प्रकार तेरागमी श्रावक समान भी उनके प्रति श्रद्धा रखना है वे सबके ही गुन ये । अत इम अवसर पर यदि आप अपने-ही ब्यय का भार वहन करेंगे तो भजानु जनता की भावना को तृप्ति कैसे मिलेगी ? इम विषय में आपको मेरी प्रार्थना माननी पड़ेगी और जनता को भी अवसर देना पड़ेगा ।'

आधिर महाराणा ने भदारीजी की बात को मान लिया । उन्होने कहा—'जितना भी ब्यय हो उसमें 'मिरेनाम' मेरा ही रहना चाहिए।' इम प्रकार महाराणा और जनता के सम्मिलित ब्यय में भारीमालजी स्वामी की अन्त्येष्टी-त्रिया की गई ।

(द्वान)

आधी रात रे आसरे बाल परापत, कहै बीरजी वाली बेला सीधी ।
चरम कल्याण राजनगर में, मेवाड़ देस जाणो परसीधी ।
समत अठारे ने बरस छठनरे, महा बिद आठम भगलदार ।
भारीमाल सपारो सीधो इण रीते, बहु गुण ग्राम करे नर-नार ॥

(भारीमाल चरित्र डा० ६ भा० ११, १२, १४)

१. हेठे माँही मेवार नी, उपर छह हगताली ए । दयाली ए ।

रीत करी मुरघर लणोक, भुनिवर ए ॥

(भारीमाल चरित्र डा० १० भा० ६)

‘बसावे’ में लगभग ग्यारह सौ रुपये लगे ।’

कहा जाता है कि संस्कार के समय भारीमालजी स्वामी की पछेवही नहीं जली । जनता ने उसे एक घमस्कार माना । चद्दर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । जिसके हाथ लगा वही ले गया । आज भी उस चद्दर का एक अढ़ाई इंच का अवशेष खड़ सेरापंच के ‘ऐतिहासिक-संग्रह’ लाइन में विद्यमान है ।

दरवाजा तोड़ तो दिया गया पर बाद में समाज के प्रमुख व्यक्तियों ने सोचा—‘अच्छा होगा कि दरवाजा तोड़ने की घटना को महाराणा तक पहुँचा दिया जाये ।’ इसके लिए उन्होंने केशरजी भंडारी को चुना । वे इस मवाद को लेकर महाराणा के समीप पहुँचे । उन्होंने प्रार्थना की—‘राजनगर में भारीमालजी स्वामी की शवयात्रा के समय मंडी न निकलने के कारण दरवाजा तोड़ दिया गया था । अब लोग उसे पुनः बनाना चाहते हैं ।’ महाराणा ने कहा—‘केशर ! उन्होंने यह अच्छा किया, अब उनकी यादगार में उसे वैसे ही (फूटा हुआ ही) रहने देना चाहिए ।’

बहु दरवाजा आज तक वापस नहीं बना । राजनगर के अधिकांश आदमी अभी भी उसे भारीमालजी स्वामी की यादगार में ‘फूटा दरवाजा’ के नाम से पुकारते हैं ।

(अनुश्रुति के आधार से)

४४. आचार्य श्री भारीमालजी के शासनकाल में कुल ब्यासी दीक्षाएँ हुईं ।
उनमें अड़तीस साधु और चौवालीस साध्वियाँ थी—

ब्यामी हुआ साधु साधवी जी, आमरे अर्थ अमोल ।

(भारीमाल चरित्र ढा० ११ गा० ८)

वे दिवंगत हुए तब संघ में पैंतीस साधु और ब्यालीस साध्वियाँ विद्यमान थी ।
साध पैंतीस इगताली साधव्यो, मेसी ने सामजी मुघ गत में आपसिघाया
हो लाल ।

(भारीमाल चरित्र ढा० १३ गा० ११)

आचार्य भारीमालजी के स्वर्गवास के समय ४१ साध्वियाँ विद्यमान थी ऐसा उक्त पद्य में लिखा है, किन्तु अनुगन्धान से ४२ साध्वियाँ विद्यमान ठहरती हैं । भारीमालजी स्वामी पदासीन हुए तब स्वामीजी के समय की २७ साध्वियाँ थी ।

१. इगताली खंडी मंडी करी, जाणक देव विमाण ।

इग्यारे सौ रे आसरे, रोकड़ लागा जाण ॥

(भारीमाल चरित्र ढा० १० दो० ४)

ऐसा सुना जाता है कि आधा खर्च महाराणा का और आधा खर्च जनता का गया ।

भारीमालजी स्वामी के युग में ४८ साध्वियाँ दीक्षित हुईं। कुल ७१ साध्वियों में भारीमालजी स्वामी के समय स्वामीजी के समय की १७ और भारीमालजी स्वामी के समय की ६ साध्वियाँ दिवंगत हुईं तथा तीन साध्वियाँ गगनवाहर हुईं। उननीम साध्वियों को बाद देने से ६० साध्वियाँ ही ठहरती हैं। जयाचार्य ने मठ गुण माना ६०३—पड़िन मरण ६०२ में भारीमालजी स्वामी के समय २६ साध्वियों के दिवंगत होने का उल्लेख किया है इसमें भी उक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। पड़िये परिशिष्ट १ (क) तथा (ख)

४५ वे दस वर्ष गृहस्थ, चार वर्ष द्रव्य दीक्षा में, पन्द्रह वर्ष मुनि, अट्ठाईस वर्ष युवाचार्य और अठारह वर्ष आचार्य पद में रहे। उनका कुल आयुष्य लगभग पचहत्तर वर्ष का था। जिसमें इकमठ वर्ष सदा छह महीने उन्होंने संयम पर्याय का पालन किया।

हृत्व पूर्ण वर्ष—

१. जन्म सवत्—१८०४
२. द्रव्य दीक्षा सवत्—१८१३
३. भाव दीक्षा सवत्—१८१७ आपाउ पूणिमा
४. युवाचार्य पद सवत्—१८३२ मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी
५. आचार्य पद सवत्—१८६० भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी
- स्वर्गवास सवत्—१८७८ माघ कृष्ण अष्टमी।

पूर्ण स्थान—

- जन्म स्थान—मूहा (बहा)
 द्रव्य दीक्षा स्थान—बागोर
 भाव दीक्षा स्थान—बेनवा
 युवाचार्य पद स्थान—बोडोडा
 आचार्य पद स्थान—मिरियारी
 स्वर्गवास स्थान—राजनगर।

भारीमालजी स्वामी का विहार क्षेत्र भी स्वामीजी की तरह राजस्थान

आमरे पर मे रह्या,
 उनमाने रह्या करे भेष मसारी हो लान।
 आयो इगमड बरस आमरे,
 उनमाने ताया उमर भारी हो लान।

के तात्कालीन राज्य—मेवाड़, मारवाड़, डूंडाड़ और हाडोती ही थे।

उन्होंने आचार्य बनने से पूर्व स्वामीजी से अलग स० १८२४ का एक चातुर्मास बगड़ी (मुधरी) में किया था। शेष सभी चातुर्मास स्वामीजी के साथ किये। आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् अठारह चातुर्मास किये। क्षेत्रों के क्रम में उनकी तालिका इस प्रकार है—

| स्थान | चातुर्मास सत्या | सम्बत् |
|----------|-----------------|--------------|
| दिमांगण | १ | १८६१ |
| पाली | ३ | १८६२, ६८, ७३ |
| खेरवा | १ | १८६३ |
| केलवा | २ | १८६४, ७८ |
| नाथडाग | ३ | १८६५, ७४, ७७ |
| आमेठ | १ | १८६६ |
| बालोतरा | १ | १८६७ |
| जयपुर | १ | १८६८ |
| माधोपुर | १ | १८७० |
| बोरावड़ | १ | १८७१ |
| मिरिपारी | १ | १८७२ |
| कांकरोली | १ | १८७५ |
| पुर | १ | १८७६ |

(भारीमाल चरित्र स० १२ के आधार से)

वर्षों के क्रम से तालिका इस प्रकार है—

| संवत् | स्थान | साधु | नामची |
|-------|----------|------|-------|
| १८६१ | दिमांगण | | |
| १८६२ | पाली | | |
| १८६३ | खेरवा | | |
| १८६४ | केलवा | | |
| १८६५ | नाथडाग | | |
| १८६६ | आमेठ | | |
| १८६७ | बालोतरा | | |
| १८६८ | जयपुर | | |
| १८६९ | माधोपुर | | |
| १८७० | बोरावड़ | | |
| १८७१ | मिरिपारी | | |
| १८७२ | कांकरोली | | |
| १८७५ | पुर | | |

(७) उनके पुग के सत मुनि श्री जीवोजी (८६) ने सर्वप्रथम और सर्वोत्कृष्ट (४४ तक चढ़े) आपम्बिल वर्धमान तप किया।

दीक्षाओं का विश्लेषण

(१) कुमारी कन्या १-साध्वी श्री नटूजी (६२) की दीक्षा हुई जो तैरापय धर्मनग में सर्व-प्रथम थी।

(२) अविवाहित बालक मुनि भोजीरामजी (५४) मुनि सतोजी (५६) मुनि श्री स्वरूपचन्दजी (६२) मुनि श्री भीमजी (६३) मुनि श्री जीतमलजी (६४) मुनि श्री कर्मचन्दजी (६६) मुनि श्री मोतीजी (८३) मुनि श्री सतीदासजी (८४) मुनि श्री जीवोजी (८६)।

(३) एक बहन-भाईयो का जोड़ा-मुनि श्री दीपजी (८५) और मुनि जीवोजी (८६) तथा उनकी बहन साध्वी श्री मयाजी (८६)।

(४) माता सहित तीन पुत्रों की दीक्षा-१. मुनि श्री स्वरूपचन्दजी (६२) २. भीमजी (६३) तथा जयाचार्य एवं उनकी माता साध्वी श्री कलूजी (७४)।

(५) तीन सपत्नीक दीक्षा—१. मुनि श्री रतनजी (७४) और साध्वी श्री पैमाजी (६१)। २. मुनि श्री हीरजी (७६) और साध्वी श्री कमलूजी (६४) ३. मुनि श्री दीपजी (८५) और साध्वी श्री चतरूजी (१००)।

(६) चार सुहागिन बहनों की दीक्षा—१. साध्वी श्री आसूजी (५७) २. चतरूजी (७०) ३. बालूजी (७५) ४. मेनाजी (८१)।

(७) स्त्री को छोड़कर सात भाईयो की दीक्षा—१. मुनि जयचन्दजी (५५) २. पीषलजी (५६) ३. सावलजी (५७) ४. अमीचन्दजी (७५) ५. भैरजी (७६) ६. रतनजी (८१) ७. शिवजी (८२)।

(८) पति पहले दीक्षित—साध्वी श्री कुनणाजी (६२) पति जोगीदासजी (४५)। (आचार्य भिक्षु के समय दीक्षित)।

विशेष

मुनि श्री वर्धमानजी (६७) को भारीमालजी स्वामी ने अर्घरात्रि में, मुनि श्री जीवोजी (८६) को स्वरूपचन्दजी स्वामी ने जगल में गृहस्थ के वेष में तथा साध्वी श्री नटूजी (६२) कुमारी कन्या को मुनि श्री हेमराजजी ने जंगल में गहनों वपड़ों सहित दीक्षा दी।

आचार्य भारीमालजी के शासनकाल में कुल ३८ साधु एवं ४४ साध्वियों की दीक्षा हुई। उनमें १ आचार्य १६ सिंघाडबध साधु एवं १३ सिंघाडबध साध्वियाँ हुई। उनके नाम इस प्रकार हैं—
आचार्य मुनि श्री जीतमलजी (६४)

आचार्य धी भिक्षुगणों के विद्यमान तथा भारीमालजी के समय के साधुओं का न्याय-दर्पण

| आचार्य सख्या | आचार्य नाम | पूर्व विद्यमान तथा | साधु | गणवाहर | विद्यमान |
|--------------|----------------|--------------------|-----------|--------|----------|
| १ | धो भिक्षुगणों | साधु दीक्षा | स्वर्गवास | २ | ६ |
| २ | श्री भारीमालजी | २१ | ३ | ६ | २६ |
| | | कुल ५६ | १६ | ८ | ३५ |

आचार्य धी भारीमालजी के पदाधीन के समय आचार्य भिक्षु के समय के २१ साधु विद्यमान थे। उनमें भारीमालजी के समय में १३ साधु दिवंगत २ गणवाहर हुए और ६ रहे।

रहे।

भारीमालजी के समय में ३८ साधु दीक्षित हुए। उनमें उनके समय में ३ दिवंगत और ६ गणवाहर हुए व २६ साधु विद्यमान

साधु वैतीस इगलाही साधव्यां, मेसी ने सामजी।
गुण गत में आप सिधाय हो साल ॥

[हिम मुनि रचित भारी० प० ५१० १३ गा० ११]

वर वैतीस मुनिस्वरू, समजी इकताविस।
मेसी परभव पांगरूया, भारीमाल जगीस ॥

[आर्य दर्जन ५० १ दो० ५]

पिय आचार्य भारीमालजी के समय दिवंगत साधु

देवलीक सवत्

दीक्षाक्रम

नाम
पशु समय के

१० श्री भारीमालजी

गुजी

रामजी

मजी

मजी

नजी

नीरामजी

गुजी

दयारामजी

गाराचन्दजी

दुर्गामीजी

गोपीजी

मोयजी

भारी समय के

७

८

१०

२१

२३

२६

२८

३५

३७

४२

४३

४६

४८

१८७८

१८६२

१८६१

१८६६

१८७०

१८७१

१८७०

१८६६

१८६०

१८७०

१८६८

१८७१

१८६६

१८६७

१८७६

१८७६

५१

५८

७७

३६६ शासन-गमुद्र

| क्रम | सं० | नाम | गांव | बीता सं० | साधनाकाय स्वर्ग या गगनाह्वर सं० |
|------|-----|-----------------|---------|----------|---------------------------------------|
| ७३ | २४ | टीकमजी | भाथीपुर | १८७२ | १६१५ |
| ७४ | २५ | रत्नजी | सावा | १८७३ | १६१७ |
| ७५ | २६ | अमीचंदजी | गण्डा | १८७३ | १८८७ |
| ७६ | २७ | हीरजी | चंगरी | १८७४ | १८६३ |
| ७७ | २८ | मोनीजी (बडा) | मीवाग | " | १६२६ |
| ७८ | २९ | शिवजी | सावा | १८७५ | १६११ |
| ७९ | ३० | भैरजी | देवगढ़ | १८७५ | १६२५ |
| ८० | ३१ | अमीचंदजी (छोटा) | कोषपा | " | १८६४ |
| ८१ | ३२ | रत्नजी | देवगढ़ | १८७६ | १६०० |
| ८२ | ३३ | शिवजी | देवगढ़ | " | १६१३ |
| ८३ | ३४ | कर्मचंदजी | देवगढ़ | " | १६२६ |
| ८४ | ३५ | गनीदासजी | गोमुदा | १८७७ | १६०६ |
| ८५ | ३६ | दीपजी | गगापुर | " | १८६३ |
| ८६ | ३७ | जीवोजी | गगापुर | " | १६२६ |
| ८७ | ३८ | मोहजी | खन्देरा | " | १६२४ |

द्वितीय आचार्य भारीमालजी के समय दिवंगत साधु

| क्रम | नाम मिळ समय के | दीक्षाक्रम | देवतोका सवत् |
|------|-------------------|------------|--------------|
| १ | आ० श्री भारीमालजी | ७ | १८७८ |
| २ | मुखजी | ६ | १८६२ |
| ३ | अर्जुनरामजी | १० | १८६१ |
| ४ | मामजी | २१ | १८६६ |
| ५ | रामजी | २३ | १८७० |
| ६ | नानजी | २६ | १८७१ |
| ७ | बेणीरामजी | २८ | १८७० |
| ८ | मुखजी | ३५ | १८६४ |
| ९ | उदयरामजी | ३७ | १८६० |
| १० | ताराचन्दजी | ४२ | १८७० |
| ११ | हुगरसीजी | ४३ | १८६८ |
| १२ | ओघोजी | ४६ | १८७५ |
| १३ | भोपजी | ४६ | १८६६ |
| | भारी० समय के | | |
| १४ | जीवनजी | ५१ | १८६२ |
| १५ | वगतोजी | ५८ | १८७४ |
| १६ | पीपलजी | ७२ | १८७८ |

द्वितीय आचार्य भारीमालजी के समय गणवाहर साधु

| क्रम | नाम | बीशाक्रम | गण बाहर सवत् |
|------|---------------|----------|----------------------|
| | मिश्र सभ्य के | | |
| १ | कुसालजी | ३८ | १८६६ |
| २ | ओटोजी | ३९ | १८६० |
| | भारी० समय | | |
| ३ | दीपाजी | ५२ | १८७७ |
| ४ | जयचन्दजी | ५५ | १८६६ |
| ५ | सावलजी | ५७ | १८६६ |
| ६ | नन्दोजी | ६५ | कुछ समय बाद गणवाहर |
| ७ | रूपबन्दजी | ६६ | १८७१ |
| ८ | रासिधजी | ७० | सवत् प्राप्त नहीं है |

**द्वितीय आचार्य श्री भारीमालजी के स्वर्गवास के समय
विद्यमान साधु**

| क्रम | नाम भिक्षु-समय के | दोश्राक्रम | याद में दिवगत या गणबाहर |
|------|----------------------|------------|----------------------------|
| १ | श्री छेतमीजी | २२ | १८८० |
| २ | " हेमराजजी | ३६ | १९०४ |
| ३ | " रायचन्दजी | ४१ | १९०८ |
| ४ | " जीवोजी | ४४ | १८९० |
| ५ | भगजी | ४७ | १८९९ |
| ६ | श्री भागचन्दजी | ४८ | १८९७ |
| | भारी-समय के | | |
| ७ | " जवानजी | ५० | १९०५ |
| ८ | " गुलाबजी | ५३ | १८९५ |
| ९ | " मोजीरामजी | ५४ | १८९९ |
| १० | " पीपलजी | ५६ | १८८३ |
| ११ | " सन्तोजी | ५९ | १९१२ |
| १२ | " ईशरजी | ६० | १९०१ |
| १३ | " गुमानजी | ६१ | १९१० |
| १४ | " स्वरूपचन्दजी | ६२ | १९२५ |
| १५ | " भीमजी | ६३ | १८९७ |
| १६ | आ० श्री जीतमलजी | ६४ | १९३८ |
| १७ | श्री रामजी | ६६ | १९१९ |
| १८ | " वर्द्धमानजी | ६७ | १८९४ |
| १९ | " भवानजी | ६८ | १८८३ गणबाहर |
| २० | " माणकचन्दजी | ७१ | १९०० के आसपास |
| २१ | " टीकमजी | ७३ | १९१५ |
| २२ | " रत्नजी | ७४ | १९१७ |

| क्रम | नाम | कीर्ति क्रम | काद में दिनांक व पा मगवाह |
|------|--------------------|-------------|------------------------------|
| २३ | श्री अमीनगन्धी | ७४ | १८८७ |
| २४ | हीनगन्धी | ७५ | १८८७ |
| २५ | " मोहिनी | ७७ | १८८८ |
| २६ | " गिरनी | ७८ | १८९१ |
| २७ | " भैरवी | ७९ | १८९५ |
| २८ | " अमीनगन्धी (छोटा) | ८० | १८९६ |
| २९ | " रत्नगन्धी | ८१ | १८९९ |
| ३० | " गिरनी | ८२ | १८९९ |
| ३१ | " समंजनगन्धी | ८३ | १८९९ |
| ३२ | " मणीनगन्धी | ८४ | १८९९ |
| ३३ | " दीनगन्धी | ८५ | १८९९ |
| ३४ | " जीवोनी | ८६ | १८९९ |
| ३५ | " मोहिनी | ८७ | १८९९ |

आचार्य श्री भिक्षुगणों की विद्यमान तथा भारीमातृजी के समय की साधियों का न्याय-वर्णन

| आचार्य संख्या | आचार्य नाम | पूर्व विद्यमान तथा साध्वीदोसा | स्वर्गवास | गणबाहुर | विद्यमान |
|---------------|-----------------------------------|-------------------------------|-----------|---------|----------|
| १ | | २७ | १७ | ० | १० |
| २ | श्री भिक्षुगणी श्री भारीमातृजी | ४४ | ६ | १ | ३२ |
| | | कुल ७१ | २६ | ३ | ६२ |

आचार्य श्री भारीमातृजी के पदासीन के समय आचार्य भिक्षु के समय की २७ साधियों विद्यमान थीं। उनमें भारीमातृजी के १ में १७ साधियों दिवंगत हुई और १० रहो। भारीमातृजी के समय में ४४ साधियों दीक्षित हुई। उनमें उनके समय में ६ दिवंगत और ३ गणबाहुर हुई। ३२ साधियाँ तब रही।

तब ऐनीस दगताली साधव्यां, सेवी ने सामजी।

य कप में आप सिधाय हो सात ॥

(हेम मुनि रचित भारी० ब० ढा० १३ गा० ११)

(हेम ममीसा हो० म० ४४ में)

वर ऐनीस मुनिस्वरू, समजी इतना-नीय।

मेनी परभर पानरदा, भारीमातृ जगीम ॥

(आर्य दर्शन ११० १ ८१०४)

द्वितीयाचार्यश्री भारीमालजी के समय दीक्षित साधिवयां

| क्रम | संख्या | नाम | गांव | दीक्षा सं० | साधनाकाल स्वर्ग, गणबाहुर सं० |
|------|--------|-------------------|------------|---------------------------|--|
| १७ | १ | आसूजी | पीपाठ | १८६१-६२ | १८७३-७४ |
| १८ | २ | मूमाजी | पाली | १८६२ | १८८२ |
| १९ | ३ | हस्तूजी (छोटा) | पीपाठ | १८६२ १८६२-६६ के बीच | १८९६ भारी० युग मे गणबाहुर |
| ६० | ४ | राहीजी | | | १८६८ जेठ मुदि ७ और १८७० कार्तिक मुदि ९ के बीच |
| ६१ | ५ | कुशासाजी | जीसवाड़ | १८६२-६६ के बीच | " " |
| ६२ | ६ | कुनणाजी | बेसबा | १८६२-६६ के बीच | |
| ६३ | ७ | दोलाजी | बांररोनी | १८६२-६२ के बीच | १८९७ |
| ६४ | ८ | जनणाजी | बड़ी छाट्ट | १८६६ | १८९६ |
| ६५ | ९ | जगुजी (बड़ा) | बाजोनी | १८६६ | १९१४ |
| ६६ | १० | जगुजी | बीसलपुर | १८६८ | १८८८ |
| ६७ | ११ | कुशासाजी | बोराबर | १८६८ | १८७८ साब बदि ८ के पूर्व |
| ६८ | १२ | दीदाजी | बाजोनी | १८६८ | " " |
| ६९ | १३ | कुशासाजी | देवरुड़ | १८६८ | १८९३ |
| ७० | १४ | जगुजी (छोटा) | लोधीणा | १८६८ | १९१३ |

| क्रम संख्या | नाम | प्रांत | बीजा-सम्पत् | साधनाकारण स्वर्ग, गणबाहुर सं० | |
|-------------|-----|-----------|-------------|----------------------------------|--|
| ७१ | १३ | पान्नी | बोरापड | १८६८ | १८७८ माघ वदि ८ के पूर्ण |
| ७२ | १४ | रमात्री | पीमांगण | १८६८ | १८९५ |
| ७३ | १५ | पन्नात्री | मोड | १८६८ | १८७८ माघ वदि ८ के बाद अगिराय युग में |
| ७४ | १६ | बापूनी | रोयड | १८६८ | १८८७ |
| ७५ | १७ | बापूनी | आउता | १८६८ | १८७८ माघ वदि ८ के पूर्ण |
| ७६ | १८ | मगानी | बोरापड | १८६८ | १८०१ |
| ७७ | १९ | उगेनी | पानी | १८७० | १८७८ माघ वदि ८ के पूर्ण |
| ७८ | २० | रमात्री | बीरनामा | १८७० | १८८७ |
| ७९ | २१ | पन्नात्री | साधोपुर | १८७० | १८८७ |
| ८० | २२ | मेमनी | साधोपुर | १८७० | १८८५ |
| ८१ | २३ | मानी | साधोपुर | १८७० | १८८६ |
| | | (मानी) | | | |
| ८२ | २४ | मगानी | | १८७० | १८७८ |
| ८३ | २५ | मगानी | | १८७० | १८७८ |
| ८४ | २६ | मगानी | साधोपुर | १८७०-७१ | १८७८ के बाद अगिराय युग में |
| ८५ | २७ | मगानी | मगानी | १८७१ | १८७८ माघ वदि ८ के बाद अगि- राय युग में |
| ८६ | २८ | मगानी | मगानी | १८७१ | १८७८ |
| ८७ | २९ | मगानी | मगानी | १८७१ | १८७८ माघ वदि के बाद |
| ८८ | ३० | मगानी | मगानी | १८७१ | १८७८ के बाद अगि- राय युग में |

| क्र.सं. | संख्या | नाम | गाँव | बीता-संख्या | साधनास्थान स्थान, गणबाहर म० |
|---------|--------|------------|---------|-------------|--|
| ८८ | ३३ | अभियात्री | बालोडरा | १८७२ | १८७८ के पूर्व भारी० दुग में गणबाहर |
| ८९ | ३४ | दीपात्री | जोरावर | १८७२ | १८९८ |
| ९० | ३५ | पेमात्री | सावा | १८७३ | १८७८ के पूर्व भारी० दुग में गणबाहर |
| ९१ | ३६ | नटूत्री | सावा | १८७३ | १८४९ |
| ९२ | ३७ | नवमात्री | बटार | १८७३-७४ | १८९६ के पश्चात् जयानार्थ के समय |
| ९३ | ३८ | बमनूत्री | बगरी | १८७४ | १८७२ |
| ९४ | ३९ | नवमात्री | | १८७४-७५ | १८८७ |
| ९५ | ४० | दीपात्री | छोड | १८७५ | १८९९ |
| ९६ | ४१ | दुमेदात्री | बोरावर | १८७६ | १८८८ |
| ९७ | ४२ | बोरात्री | बोरावर | १८७७ | १८९० |
| ९८ | ४३ | मनडूत्री | नामगवा | १८७७ | १८९७ |
| ९९ | ४४ | बनूत्री | बदामुर | १८७७ | १८८० |

आचार्यश्री भारीमालजी के समय दिवंगत साध्वियां

| क्रम | नाम | वोला क्रम | देवलोक सवत् |
|------|-----|-----------|-------------|
|------|-----|-----------|-------------|

मिस्र-समय की—

| | | | |
|----|-------------------|----|------------------------------|
| १ | साध्वीश्री अमराजी | २३ | १८६०-६८ के बीच |
| २ | " तेजुजी | २५ | १८६०-६८ " |
| ३ | " हीराजी | २८ | १८७८ |
| ४ | " नगाजी | २६ | १८६६ |
| ५ | " पन्नाजी | ३१ | १८६०-६८ के बीच |
| ६ | " गुमानाजी | ३३ | " |
| ७ | " सेमाजी | ३४ | " |
| ८ | " सहपाजी | ३८ | " |
| ९ | " बग्नाजी | ४१ | १८६७ |
| १० | " ऊदाजी | ४३ | १८६०-६८ के बीच |
| ११ | " कुशालाजी | ४६ | १८६७ |
| १२ | " वस्तूजी | ४७ | १८७६ |
| १३ | " नोराजी | ४८ | १८७२ |
| १४ | " कुशालाजी | ५० | १८७० |
| १५ | " जसोदाजी | ५४ | १८६० के बाद १८६८-७० के पूर्व |
| १६ | " डाहीजी | ५५ | " " " |
| १७ | " मोखाजी | ५६ | " " " |

| क्रम | नाम | बीदा-क्रम | देवसोक सधत् |
|----------------|-----|------------|----------------------------|
| भारोमास-समय की | | | |
| १८ | " | मामूजी | ५७ १८७३ या ७४ |
| १९ | " | कुशालाजी | ६१ १८६८-७० के बीच |
| २० | " | कुन्नाणाजी | ६२ " " |
| २१ | " | दोलाजी | ६३ १८६७ |
| २२ | " | कुशासाजी | ६७ १८७८ माघ यदि ८ के पूर्व |
| २३ | " | गोपाजी | ६८ " " " |
| २४ | " | फत्तूजी | ७१ " " " |
| २५ | " | बालाजी | ७५ " " " |
| २६ | " | उमेदाजी | ७७ " " " |

आचार्यश्री भारीमालजी के समय गणवाहर साध्वियां

| क्रम | नाम | हीरा क्रम | गणवाहर संवत् |
|-----------------|-------------|-----------|-------------------------|
| भारीमाल समय की— | | | |
| १ | श्री राहीजी | ६० | संवत् प्राप्त नहीं है। |
| २ | „ धमीपाजी | ८६ | १८७८ माघ यदि ८ के पूर्व |
| ३ | „ पैमाजी | ६१ | „ „ „ |

आचार्यश्री भारीमालजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियां

| क्रम | नाम | हीरा क्रम | बाद में दिवगत |
|-----------------|--------------------|-----------|---|
| भित्तू समय की — | | | |
| १ | साठवीं श्री वगनुजी | २७ | १८७६ चैत्र यदि १ के बाद ऋषिराम मुग में |
| २ | „ भजवूजी | ३० | १८८८ |
| ३ | „ वरजूजी | ३६ | १८८७ |
| ४ | „ योनाजी | ४० | „ |
| ५ | „ झुमाजी | ४४ | १८६६ या ६७ |
| ६ | „ हसूजी | ४५ | १८६७ |
| ७ | „ जोनाजी | ४८ | १६०८ |
| ८ | „ नाधाजी | ५१ | १८६७ |
| ९ | „ बीनाजी | ५२ | १८८६ |
| १० | „ गोमाजी | ५३ | १८६० |

| नाम | दीक्षा-क्रम | बाद में दिवसगत |
|---------------|-----------------|---|
| शालीन-समय की— | | |
| साध्वीश्री | शुभाजी | ५८ १८८२ |
| " | हस्तुजी छोटा | ५९ १८८६ |
| " | चनणाजी | ६४ " |
| " | चत्रुजी घटा | ६५ १९१४ |
| " | जसुजी | ६६ १८८८ |
| " | कुशालाजी | ६९ १८९३ |
| " | चत्रुजी छोटा | ७० १९१३ |
| " | रमाजी | ७२ १९१५ |
| " | पन्नाजी | ७३ १८७८ माघ यदि ८ के बाद ऋषिराय युग में |
| " | बल्लुजी | ७४ १८८७ |
| " | नगाजी | ७६ १९०१ |
| " | रतनाजी | ७८ १८८७ |
| " | चनणाजी | ७९ १८८७ |
| " | बेसरजी | ८० १८८५ |
| " | गेनाजी (जानाजी) | ८१ १८९४ |
| " | गयाजी | ८२ १८७९ |
| " | नोखाजी | ८३ १८७९ |
| " | बन्नाजी | ८४ १८८७ के बाद ऋषिराय युग में |
| " | जत्रनाजी | ८५ १८७८ माघ यदि ८ के बाद ऋषिराय युग में |
| " | मयाजी | ८६ १९०९ |
| " | मधुजी | ८७ १९०८ ज्येष्ठार्द्र के समय |
| " | बीखाजी | ८८ १८९६ के लगभग ज्येष्ठार्द्र के समय |
| " | दीनाजी | ८९ १९१८ |
| " | बहुजी | ९० १९४९ |
| " | बन्नाजी | ९१ १९१६ के लगभग ज्येष्ठार्द्र के समय |

८. लिखमोजी

(दीक्षा स० १८१६, १८२४, २५ के पूर्व गणवाहर)

रामायण-छन्द

जयमलजी की संप्रदाय को तजकर अलग हुए गुरुमाथ' ।
नूतन दीक्षा ली है लेकिन चख न सके संयम का ववाथ ॥
शहर केलवा में स्वामीजी आदि साधु कुछ ठहराये ।
कितने साधु अन्य क्षेत्रों में पावस पहला कर पाये' ॥१॥
मिले बाद में की फिर चर्चा पर न मिला है श्रद्धाचार ।
पृथक् हो गये पांच सभी से मामिल आठ रहे अणगार' ॥
लिखमोजी कुछ वर्ष बाद में, दूर हुए भिक्षव गण से ।
बिन क्षयोपशम मोहकर्म के मुक्तिजल व्रत पानन जन में' ॥२॥

दोहा

आठ साधुओं में हुए, दो फिर गण से दूर ।
संयम में दृढ़ संयमी, रहे धोष छह मूर' ॥३॥

१. स्वामीजी आदि तेरह साधु नव-दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए उनमें से एक लिखमोजी थे । तेरह साधुओं में १ आचार्य रत्नापत्री के ६ जयमलजी के तथा २ अन्य दोने के (ममबन नामदासजी के) थे । लिखमोजी जयमलजी की संप्रदाय के थे । मुनि विरपासजी (१) जब जयमलजी की संप्रदाय में थे तब उन्होंने चार ठाणों में स० १८१४ का बाबुर्मास राजनगर में बिताया । उन चारों में एक लिखमोजी थे । (देखें विरपासजी का प्रकरण)

२ स्वामीजी ने केलवा लया अन्य बाबुओं ने जिन क्षेत्रों में बाबुर्मास बिताया वहाँ वही ने स्वामीजी के निर्देशानुसार बाबुर्मास १२ को नई दीक्षा ग्रहण कर ली ।

३. चानुमणि के बाद बापन सब साधु मिले —

हिंसे चोमामो उनर्यो, भेला हुआ सहु आण हो ।

(भिवन्तु जस रमायण का० ८ गा० ७)

उनमें से पांच साधु धडावार न मिलने से स्वामीजी के सप में नहीं रहे ।

आठ साधुओं का सबध शामिल रहा । उनमें एक लिखमोजी थे ।

पांच अलग हुए उनके नाम — १. वयतरामजी. २. गुलाबजी ३. भारमलजी

{द्वितीय} ४. रूपचन्दजी ५. पेमजी ।

आठ शामिल रहे उनके नाम — १. धिरपानजी २. जनेहचन्दजी ३. सीधन

जी स्वामी ४. बीरभाणजी ५. टोकरजी ६. हरनाथजी ७ भारीभासजी

८. लिखमोजी ।

४. लिखमोजी के पुषर्क होने का सबन् प्राप्त नहीं है । १८३२ मृगशर यदि ७ के सामूहिक लेखन सद्यः १ में उनके हस्ताक्षर नहीं मिलने अतः उनके पूर्व के सप से अलग हो गये यह तो स्पष्ट ही है लेकिन भेदाव-गण में स० १८२४, २५ तक दीक्षित होने वाले साधुओं की मर्यादा १५ है । स्वामीजी ने भाव-दीक्षा सी सब १३ साधु थे, उनमें ५ तो चानुमणि के बाद सम्मिलित हुए ही नहीं । फिर कई वर्षों तक १३ की मर्यादा नहीं हुई ऐसा कहा जाता है । इसमें यह सम्भावना की जाती है कि लिखमोजी (८) १८२४, २५ के पूर्व अमरोजी (११) १८२४ या २५ के पूर्व और मोतीरामजी (१३) दीक्षित होने के कुछ समय परचातु चन्द्रभाणजी की दीक्षा के पूर्व ही गणबाहर हो गये थे ।

शासन विलास तथा भिक्षु जस रमायण में केवल उनके पुषर्क होने का उल्लेख है—

तेरा माहिलो ताम रे, लिखमो छूटो गण यकी ।

पामी गण अभिराम रे, चारिन रत्न गमावियो ।

{शासन विलास का० १ सो० ११}

लिखमोजी सत्रम सीध कयें प्रभावे हो गण सू ग्यारो ययो ।

{भिवन्तु जस रमायण का० ४५ गा० ११}

५. उपर्युक्त आठ साधुओं में दो—बीरभाणजी और लिखमोजी बाद में गण में अलग हो गये । छह साधु आजीवन गण में रहे ।

१. रहे बिल भेला रत्ता, मु० वर यट सग बडोण हो ।

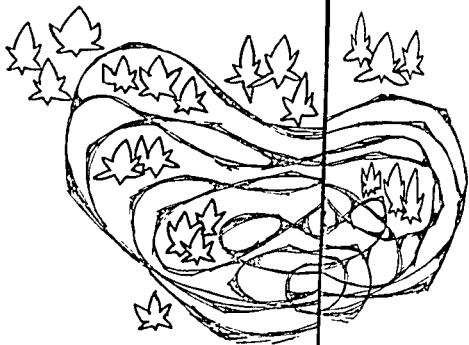
आवजीव सग जाणयो मु० वरय माहोमांही पीग हो ॥

{भिवन्तु जस रमायण का० ८ गा० १०}



शारदा

भाग-११

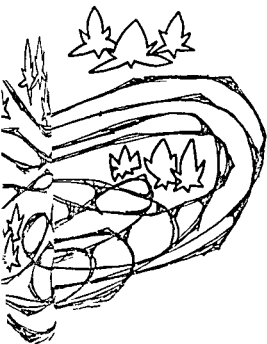


जेन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

मुंबई

शासन समुद्र

भाग-१ (क)



मुनि नवरत्नमल

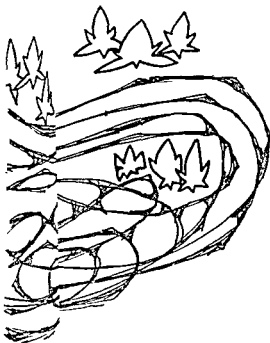
श्री
१९७१



श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

शास्त्र समुद्र

भाग-१ (क)



मुनि नवरत्नमल

□ प्रथम संस्करण १९८१

□ मूल्य - बीस रुपये

□ प्रकाशक :

उत्तमचन्द सेठिया

अध्यक्ष, श्री जैन प्रवेणाम्बर तेरावधी महासभा
३, पोर्चुगीज धर्चें स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००१

□ मुद्रक : गणेश बम्पोजिंग एजेंसी द्वारा
रुपाभा प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

आशीर्वचन

हमारे धर्म-संघ का यशस्वी इतिहास है और वह प्रामाणिक रूप में सुरक्षित है। यह एक विरल घटना है। यशस्वी इतिहास का होना दुर्लभ है, पर उसका सुरक्षित रहना अति दुर्लभ है। तेरापथ धर्म-संघ के सौभाग्य का यह एक समूचन है। यशस्वी इतिहास के बनने में तो समूचा संघ ही निमित्त है, पर इसकी सुरक्षा में संघ निमित्त नहीं बन सकता। इसमें सर्वप्रथम निमित्त बने हैं श्री मज्जपाचार्य, जिन्होंने अपनी सूझबूझ के कारण स्वामीजी से लेकर अपने समय तक का पूरा

उनके आभारी रहेंगे।

इस शृंखला में दूसरा स्थान बड़े कालूजी स्वामी का है, जिन्होंने शासन की कथा लिखकर उस इतिहास को और सुदृढ़ बना दिया। इसके बाद अनेको

धर्म कालगणों के समय तो व्यवस्थित रूप से कथा लिखी जाने लगी। मुनि चौधमलजी, वर्तमान युवाचार्य महाप्रज्ञजी (तत्कालीन मुनि नथमलजी), मुनि दुलहराजजी एवं मुनि मधुकरजी ने इस कार्य में अपना पूरा योगदान किया। श्रावक समाज में श्री सतोपचन्दजी बरडिया तथा श्री श्रीचन्दजी रामपुरिया का नाम भी उल्लेखनीय है। श्रावकों में श्रीचन्दजी ने शासन-साहित्य के क्षेत्र में जितना कार्य किया तथा कर रहे हैं, यह विशेष उल्लेखनीय है। मुनि बुद्धमल्लजी ने प्राज्ञ और सज्जो हृद भाषा में तेरापथ का खोजपूर्ण इतिहास लिखकर आज की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की। उनका कार्य अब भी चालू है।

इन सबके बावजूद एक अपेक्षा अनुभव हो रही थी कि इतिहास का पूर्वापर संकलन कर उसे समग्रता से लिखा जाए। इसमें आचार्य के निर्देश की अपेक्षा तो रहती ही है, पर नैसर्गिक शक्ति वाले लेखक की भी आवश्यकता रहती है। इस दृष्टि से मुनि नवरत्नमल हमारे सामने आया। उसकी अभिरुचि, परिश्रम तथा

भूमिका

अभी हम जयाचार्य की निर्वाण शताब्दी मना रहे हैं। जयाचार्य का सम्बन्ध आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य तुलसी तक रहा है। वे आचार्य भिक्षु के उत्तराधिकारी भारमलजी स्वामी की छत्रछाया में दीक्षित हुए और आचार्य भिक्षु के परम शिष्य मुनि हेमराजजी से उन्होंने विद्या-अध्ययन किया। इन दोनों के माध्यम से उन्होंने आचार्य भिक्षु तथा उनके सच के समग्र व्यक्तित्व को आत्मसात् कर लिया। 'भिक्षु जलरसायण', 'भिक्षु दृष्टान्त' आदि रचनाएँ उसका प्रमाण हैं। आचार्य ऋषिराय उनके दीक्षा गुरु और आचार्य थे। आचार्य ऋषिराय ने ही उन्हें तेरापथ का नेतृत्व सीखा था। आचार्य मधवा उनके उत्तराधिकारी थे। भाणवगणों उनके हाथ से दीक्षित हुए थे। डालगणी उनके शासन-काल में एक प्रसिद्ध साधु के रूप में विद्यमान थे। पूज्य बालूगणी और आचार्य तुलसी के समय तक उनके हाथों दीक्षित साधु-साध्वियाँ विद्यमान थीं। इस प्रकार जयाचार्य का व्यक्तित्व तेरापथ सच की लम्बी अवधि का स्पर्श कर रहा है।

जयाचार्य का वर्तुल्य तेरापथ सच का शाश्वत स्पर्श करने वाला है। उनकी प्रज्ञा की रश्मियाँ चारों दिशाओं में विकीर्ण हैं। वे अतीत और भविष्य—दोनों का स्पर्श कर रही हैं। तेरापथ सच साधना और तत्त्वज्ञान की दृष्टि से जितना समृद्ध है, इतिहास की दृष्टि से भी उतना ही समृद्ध है। हमें इस ज्ञान का गर्भ है कि हमारे धर्मसच का इतिहास बहुत गौरवशाली है। हमें आवश्यक है कि आज से बड़े-सौ वर्ष पूर्व जयाचार्य ने इतिहास-मन्थन का कार्य शुरू किया और उसकी श्रुतता निरंतर चलती रही। बड़ा जाना है कि भारतीय लोग इतिहास लिखना नहीं जानते। यह कहना बड़ा तर गद्दी है। हमकी चर्चा में मैं नहीं जाना चाहता, किन्तु तेरापथ धर्मसच के विषय में यह ज्ञान सही नहीं है, यह बड़ा आश्चर्य है। जीवन चरित, शासन-विनायक, राजा, शासन-प्रभाव, प्रकीर्ण पत्र आदि अनेक रूपों में इतिहास लिखा जाता रहा है।

जयाचार्य की निर्वाण शताब्दी निमित्त बनी इतिहास के प्रगुनीकरण, सफल और पुनर्मूल्यांकन का। आचार्यजी तुलसी के शासन-काल में हमारे धर्मसच से संबंधित दो शताब्दी आयोगों का अवनत उपस्थित हुआ। वि० सं० २०१७

प्रस्तुत कृति की रचना-शैली पद्य-गद्यात्मक है। प्रारम्भ में पद्य है। उनमें लिखित घटनाओं का विस्तार पद्य-शैली में किया गया है। भाषा परिष्कृत होती तो और अच्छा होता। पर इसमें मुख्य ध्यान सामग्री-संकलन पर ही दिया गया है। इस दृष्टि से भाषा मौल्य हो गई है। सामग्री-संशोधन की दृष्टि से प्रस्तुत कृति सचमुच ही शासन-समुद्र है। इसमें मुनि नवरत्नमलजी का थम और अध्यवसाय स्वयं बोल रहा है। आचार्यश्री तुलसी ने उन्हें जैन विश्व भारती (लाइन) में रहकर कार्य करने का अवसर दिया और उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ उसका उपयोग किया। फलस्वरूप हमारे घर्मसंघ के इतिहास का एक बड़ा संकलन पाठकों के हाथों में आ रहा है। आचार्यश्री तुलसी के शासन-काल में अनेक बृहद् प्रकल्प (प्रोजेक्ट) क्रियान्वित हुए हैं। उनमें इतिहास के प्रकल्प का प्रथम चरण भी क्रियान्वित हो रहा है। मुझे आशा है कि इसे पाठक रुचि के साथ पढ़ेंगे, उनका ज्ञान संपर्द्धन होगा और इतिहासकार को इतिहास के लेखन में बढत सुविधा मिलेगी। इस प्रयत्न में मुनि नवरत्नमलजी को साधुवाद देना अनुपयुक्त नहीं होगा। हमारे संघ के अनेक साध्विया और साधु विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएं देकर शासन की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। प्रस्तुत कृति का भी शासन की श्रीवृद्धि में निश्चित ही योगदान होगा।

अनुबन्ध-बिहार,

नई दिल्ली,

१५ अगस्त, १९८१

मुवाचार्य महाप्रज्ञ

साध-साध रो गिलो करै, ते तो आप आपरो मत ।

मुणज्यो से सँहर रा सोक, ए तेरापयी तत ॥

इस प्रकार आचार्य भिक्षु के समुदाय का नाम सहज ही 'तेरापय' विद्युत हुआ और हवा की तरह चारो ओर फैल गया । आचार्य भिक्षु ने मुना तो तन्वाल आमन से नीचे उतर कर धन्दन की मुद्रा में बहा—हे प्रभो ! यह तेरा पय है । (तेरा अर्थात् तुम्हारा पय) । उन्होंने तेरापय शब्द को अभिव्यक्ति देते हुए कहा कि जो पय महाव्रत, पय समिति व तीन गुणों का पालन करे वह तेरापयी—आपके पय का ही पयिक है ।

सत्पञ्चात् वि० स० १८१७ आषाढ़ शुक्ल १५ को बेलवा (मेवाड़) में आचार्य भिक्षु ने अरिहत्तों की साथी में भाव-दीप्ता ग्रहण की, यहाँ से तेरापय की विधिवत् स्थापना हुई । स्वामीजी आदि ५ साधु बेलवा में और ८ साधु अन्य क्षेत्रों में थे । चानुर्मास के बाद सभी का मिलन हुआ पर आचार-विचार में सामंजस्य न बैठने के कारण ५ साधु पृथक् रहे और ८ साधु सम्मिलित हुए ।

आचार्य भिक्षु ने इस प्रकार धर्म-जान्ति का सूत्रपात किया और प्रभु के पावन पद-चिह्नों पर चलने के लिए बटिबद्ध हुए । प्रारम्भ के अनेक वर्षों तक उन्हें भारी संधियों से सोहा लेना पड़ा पर वे सोहपुरूप चट्टान की तरह अट्टम होकर अपने गन्धर्व पय की ओर अबाध गति में चरण बढ़ाते गए । अन्ततोगत्वा उन्हें क्षणनातीत गौरवपूर्ण सफलता मिली और धर्ममय मुद्रुङ्ग बना । उनके समय में ही १०५ साधु-गाइयो दीक्षित हो गए । उसरोत्तर वह तेरापय शतशास्त्री बट-बुद्ध की तरह पक्कता-फूलता गया । मवा दो मो वर्षों में आज वह इतना विस्तार पा गया है कि साधारण शोन्धी से लेकर राजभवनो तक उसकी गूँज पहुँचने लगी है । विरट विषमताओं से आत्रान्त इस आधुनिक युग की नैतिक जागरण का उद्बोधन देने वाला यह प्रमुख केन्द्र बन गया है ।

समय गतिशील है वह आता है और चला जाता है । जो चला गया वह अतीत (पूत), जा रहा है वह वर्तमान और आने वाला अनागत (भविष्य) कहलाता है । तीन काल में होने वाले पदार्थ ज्ञेय है अथ ज्ञान स्वतंत्र विकासवर्ती हो जाता है सर्वज्ञ अर्थात् अधीम ज्ञान-रश्मियों में वैज्ञानिक पदार्थों को जान लेते हैं । परन्तु जो अल्पज्ञ है उन्हें अनुमान आदि साधनों का सहारा लेना पड़ता है । अधीम का अध्ययन करने के लिए इतिहास प्रमुख साध्य है । उसके बिना जन-साधारण तटिगदक ज्ञान में अछूना रह जाता है । सम्राज की आधुनि के लिए वह बहुत अरक्षित है । जिन सम्राज का इतिहास नहीं होना उसकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है । धर्मसंघों की भी यही स्थिति बन जानी है । किन्तु हमें सार्वजनिक दोष है कि हमारे दृग्दृष्टा पूर्ववर्ती धर्माचार्यों ने पुरातन धृगान्धों की भिविबद्ध करने का उपक्रम किया है ।

वर्तमान में ओतेराय का जीरा जगता सम्पत्ति इतिहास में देनी पड़ने को मिलता है उसका माता भैर तेराय के सपुत्र भित्तिवासी भी मन्त्रालय को है। उन्होंने विविध आदरों व गौरीवासी म माधु-माधिका के जीवन वृत्त लिगे और वही गुण-प्राप्ति में उनकी पत्नी विवेकताओं का अन्तरिणा। तत्पश्चात् मधुरागरी माधिकाओं तथा कापुली म कुछ आदरों व गौरीवासी लिये। मुनि वनीरामजी तेरायजी, जीरोजी कापुली मनी मुनि मन्त्रालयजी तथा धीयमलजी आदि अन्तर्गत भी तेरायवासी मामरी मन्त्रों में अन्तर्गत प्रयत्न दिया। वर्तमान आचार्यों की मूर्तों के जो उममें पार पाई समा दिये। माणिक-महिमा, इतिहास वरिष्ठ व कापु मन्त्रालय आदि जीवन वरिष्ठों को सरचना कर पूर्वक सभी आचार्यों की आदरतामक श्रृंखला को पूरा कर दिया। साथ ही अनेक माधु-माधिका के आदरान (मन्त्र वरिष्ठ आदि) गौरीवासी व अधिक-आदिकाओं के मन्त्र व दाह, मोरटे आदि बनाकर भारी पीड़ों के लिए प्रेरणा का प्रश्न माधु ध्येन दिया।

तेराय में अन्तर्गत भी आचार्य हुए—उनका शासनकाल इस प्रकार है—

| नाम | वर्ष | संवत् |
|-----------------------|------|-----------|
| १ आचार्य श्री भीष्मजी | ६४ | १८१७-१८१० |
| २. " " भारीमालजी | १८ | १८६०-१८७८ |
| ३. " " रायचन्द्रजी | ३० | १८७८-१८८८ |
| ४ " " जीवनमलजी | ३० | १८८८-१८९८ |
| ५. " " मधुराजजी | ११॥ | १८९८-१८४६ |
| ६. " " माणिकलालजी | ४॥ | १८४६-१८५४ |
| ७ " " डालचंदजी | १२ | १८५४-१८६९ |
| ८. " " कालूरामजी | २७ | १८६९-१८८३ |
| ९. " " तुलसीरामजी | | |

सं० १८८३ भाद्रप

शुक्ला ६ को आचार्य पद पर आसीन हुए। आपके आचार्य-काल के ४५ वर्ष सन्नि हो रहे हैं जो सर्वाधिक हैं। वर्तमान में आपका ही शासन चल रहा है।

दीक्षा : एक सिंहावलोकन

(वि स० १८१७ आषाढ़ पूर्णिमा से स० २०३८ आषाढ़ पूर्णिमा तक)

| आचार्य का नाम | कुल दीक्षा | | दिव्यत | | गणबाहुर | | वर्तमान | |
|----------------------|------------|--------|--------|--------|---------|--------|---------|--------|
| | साधु | साध्वी | साधु | साध्वी | साधु | साध्वी | साधु | साध्वी |
| १. आचार्य श्री भीमजी | ४६ | ५६ | २६ | ३६ | २० | १७ | ० | ० |
| २. " " भारीमानजी | ३८ | ४४ | ३१ | ४१ | ७ | ३ | ० | ० |
| ३. " " रायचंदजी | ७७ | १६८ | ५३ | १६३ | २४ | ५ | ० | ० |
| ४. " " जीतमनजी | १०५ | २२४ | ७१ | २१३ | ३४ | ११ | ० | ० |
| ५. " " मधराजजी | ३६ | ८३ | २६ | ७८ | १० | ५ | ० | ० |
| ६. " " भाणवचंदजी | १५ | २५ | ८ | २३ | ७ | २ | ० | ० |
| ७. " " दानचंदजी | ३६ | १२५ | २६ | १२४ | १० | ० | ० | १ |
| ८. " " कालूरामजी | १५५ | २५५ | ७० | १५६ | ४६ | ८ | ३६ | ६१ |
| ९. " " तुलसीरामजी | २१८ | ५०१ | १६ | ४७ | ७१ | १५ | १२८ | ४३६ |
| जोड़ | ७२६ | १४८१ | ३३३ | ८८४ | २३२ | ६६ | १६४ | ५३१ |
| कुल सध्या | २२१० | १२१७ | २६८ | ६६५ | | | | |

मेरी प्रारम्भ में ही द्विहास के विषय में सहज अभिरुचि रही है। उसके लिए मैं यथाशक्य प्रयास भी करता रहा हूँ। कुछ समय पूर्व मैंने प्रमण साधु-साध्वियों की पञ्चात्मक जीवनिमा लिखी और यह का नाम 'शासन-समुद्र' रखा परन्तु परिपूर्ण सामग्री के अभाव में वह सागोपाग नहीं बन सका।

वि० स० २०३१ में आचार्यश्री तुमसी ने श्री दूंगरगढ़ में बृहद् मर्यादा महोत्सव किया। उस समय वाली वानुर्माय सम्पन्न कर मैं भी मुद्देव के शरण में पहुँचा। एक दिन मैंने आचार्यश्री के सम्मुख उक्त शासन-समुद्र की चर्चा करते हुए उसे व्यवस्थित रूप में तैयार करने की भावना अभिव्यक्त की। आचार्यश्री ने प्रसन्न मुद्रा में फरमाया—“हा शासन का द्विहास व्यवस्थित लिखा जाना बहुत आवश्यक है।” साथ-साथ ऐसा भी निर्देश दिया—“अपार्षदों की जतावनी निजट आ रही है अतः अपार्षदों द्वारा रचित समग्र साहित्य को संयोजित करना है। लेकिन ये दोनों कार्य यहाँ (आचार्यश्री के साथ) अपना किसी निश्चित स्थान पर रहने में ही हो सकेंगे क्योंकि अनुकूल स्थान, आवश्यक सामग्री और समयावधि होने पर ही स्थायी कार्य हो सकता है।” मैंने दृढ़ संकल्प में साथ

८. अवधान-विष्टा —स्मृति-विज्ञान का धर्म—एक दिन में छौं में ब्रेक
हजार तक अवधान करना ।
९. व्रता —मेष्टन, बिज, मिनाई, रमाई आदि ।
१०. प्रतिनिधि —निरि बीजल, निमित्त पय प्रमाण आदि ।
११. तपश्चर्या —उपवागादिक में चोमासी, छहमासी, बाग्हमासी,
भटोत्तर, महाभटोत्तर, रत्नावली, लघुनिह निष्पी-
डिन तप तथा मनेखना तर, अनशन आदि ।
१२. सेवा —गुरुकुलवाग की तथा अन्य रोगी, तपस्वी, स्थविर,
नव-दीक्षित आदि की ।
१३. विनिष्ट-माधना —भीय-महन, आतापना, स्वाध्याय-ध्यान, मोन
आदि ।
१४. धर्म प्रचार —दूर देश आदि में गमन, यात्रा परिणाम ।
१५. आचार्यों द्वारा पुरस्कृत—गमुक्चय के काम, ब्रोज में मुक्त करना आदि ।
१६. श्वशिनगन महारण —उन्नेष्टनीय घटना आदि ।

भंडव-शामन में अनेक साधु-माधवी महान् साधना के धनी, घोर तपस्वी,
सेवायों, शिक्षा, उक्चकोटि के साहित्यकार लेखक (लिपिकर्त्ता), कवि, वक्ता,
धर्म-प्रचारक आदि हुए । उन्होंने शामन की चतुर्मुखी उन्नति करते हुए स्व-कल्याण
किया और जन-कल्याण के दावित्व को निभाया । भगीरथ प्रयत्नों द्वारा धर्म-सध
की प्रभावना करते हुए जैन शासन को गौरवान्वित किया ।

ऐसे संयमी पुरुषों की ज्वलत कहानियों से 'शामन-समुद्र' स्वतः गरिमामय
बन जाता है । समुद्र अगाध होना है उसकी चाह पाना दु साध्य है, पर मैंने एक

.....
.....
.....

और साधियों के भाग अनन्य-अलग रखे गये हैं ।

इसमें मदांभत ग्रन्थों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

| नाम | रचयिता |
|--|----------|
| १. तेरापथ के तीन आचार्यों ^१ | जयाचार्य |

१. इसमें जयाचार्य रचित भिक्षुशरमायण, लघु भिक्षुशरमायण, ऋषिराय-
सुजग, ऋषिराय पचडालिया गणी गुण वर्णन की डालें तथा मुनि हेमराजजी
कृत—भिक्षु-चरित्र, भारीमाल-चरित्र एवं मुनि बैणीरामजी कृत भिक्षु-
चरित्र है ।

१६. गुलाब-मुकुट मधुमा-मणी
 १७. बालुगणी जीवन-वृत्त आचार्यधी तुलसी
 १८. बालुगणी श्रद्धाश्रित और मस्मरण
 १९. भगन चरित्र आचार्यधी तुलसी
 २०. छोटी मनी का बोझाविया आचार्यधी तुलसी
 २१. शासन प्रभाव यति हस्तातचन्द्री
 २२. सन्तु-मनी दिव्यप्रिया निरामोचद्वी इगर्गवान द्वारा
 विद्या गया मण्ड
 २३. मेडिया-मण्ड महानन्दजी मेडिया व उनके
 पोत्र मोहननाथ द्वारा विद्या
 गया महानन्द ।
 २४. तेरापय का इतिहास मुनिधी बुद्धमलजी
 २५. जय-मोक्ष मुनिधी छत्रमलजी
 २६. जयचार्य की साहित्यिक कृतियाँ मुनिधी मधुकरजी
 २७. माधु-माध्वी द्वारा लिखित एवं प्रकाशित पुस्तकें निम्न आदि ।

इस प्रकार छोटी-बड़ी लगभग द्वादश ही कृतियाँ का हमें उपयोग किया गया है और उनके उद्धरण दिये गये हैं । इनके अनिर्वच्य सुकुर्म माधु-माध्वी एवं थावबी द्वारा मुनकर अनेक पटनाएँ मजोयी गई हैं ।

योद्धा मद्राम में जाता है, उसे पीठ परघसाने वाला साथी मिल जाता है तो उसका धन भोगुना बढ़ जाता है और वह विजय-नाद करना हुआ वापस घर का दरवाजा मटपटाता है । पुत्र छोटी-बड़ी के लिए विदेश की गुरूर यात्रा करता है, उसे अभिभावक गण का शुभ आशीर्वाद मिल जाता है तो वह अपने सद्य को दूर कर मानद अपने माता-पिता के पास लौट आता है । शिष्य जीवन-विकास के किसी भी क्षेत्र में प्रवेश करता है, उसे गुरु का स्नेह-भरा वात्सल्य और भगन सदैव मिल जाता है तो वह दुरुह में दुरुह कार्य को भी हसते-मोहते शान्त कर भाव-विभोर होकर गुरु-चरणों में ओत-प्रोत बन जाता है ।

मैं जो इनके विद्यालय समुद्र के किनारे तक पहुँच गया वह मेरे जीवन-उन्मायक, प्रगति पथदर्शक, श्रद्धास्त्र आचार्यधी तुलसी की अमोघ अदृश्य शक्ति का ही अमिन प्रभाव है वरना हम वृद्ध-वाय, अल्प बुद्धि चरण-रज से पाँच-मात सात की अन्धावधि में इतना बड़ा कार्य होना दुष्कर, महान् दुष्कर था । मैं आचार्यवर के इस असीम उपकार व माह्वय को शब्दों की सीमा में नहीं बाध सकता । आचार्यधी की उत्साहवर्धक प्रेरणा के साथ-साथ युवाचार्यधी महाप्रज्ञानी का मार्ग-दर्शन भी मुझे पाथेय की तरह समय-मसय पर मिलता रहा । इतिहास-विद्वान् मुनिधी बुद्धमलजी, माणरमलजी और मणकरजी का विचार-निर्दिष्ट एवं

प्रकाशकीय

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा तेरापंथी समाज की एक सार्वभौम संस्था है। पिछले पाच दशकों से यह संस्था बड़ी निष्ठा एवं लगन से समाज की सेवा करती आ रही है। संस्था का एक उज्ज्वल इतिहास है। जिन पर हर तेरापंथी को सात्विक गौरव की अनुभूति होती है।

महामभा ने समय-समय पर अनेक प्रवृत्तियों का कुशलता पूर्वक संचालन किया है। इनमें एक प्रमुख प्रवृत्ति है धार्मिक एवं सामाजिक साहित्य के प्रकाशन की। महासभा के द्वारा प्रकाशित साहित्य का हमारे समाज में अच्छा आदर हुआ है। अन्य समाज के प्रबुद्ध लोगो ने भी हमारे साहित्य की भूरि-भूरि सराहना की है।

विगत कुछ वर्षों में महासभा के द्वारा साहित्य-प्रकाशन का कार्य स्थगित था। इस बार हमने थड्यास्पद आचार्य प्रवर से इस कार्य को प्रारम्भ करने के लिए आशीर्वाद मागा। गुरुदेव ने अत्यन्त कृपा करके हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

मुनिश्री नवरत्नमलजी द्वारा लिखित 'शासन-समुद्र' भाग-१ (क) को प्रकाशित करते समय महासभा प्रसन्नता का अनुभव करती है। थड्येय आचार्य प्रवर के निदेशन में मुनिश्री ने इस ग्रन्थ को बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इस ग्रन्थ के दूसरे भाग भी बहुत जल्दी महामभा के द्वारा प्रकाशित होंगे।

हमें पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार अतीत में महासभा द्वारा प्रकाशित ग्रंथों को समाज में आदर मिला है, उसी प्रकार इस ग्रंथ को भी स्वीकार किया जाएगा।

मैं एक बार पुनः थड्यास्पद आचार्य प्रवर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और आशा करता हूँ कि महासभा भविष्य में भी साहित्य-प्रकाशन का काम करती रहेगी।

अमरपुर

१५ अगस्त १९८१

उत्तमचन्द्र सेठिया

अध्यक्ष

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा,

कलकत्ता

अनुक्रम

प्रथमाचार्यं श्री भिक्षुगणी का शासनकाल

| | |
|---------------------------------|-----|
| आराध्य-स्तुति | ३ |
| १. मुनिश्री गिरपालजी (लाबिया) | ६ |
| २. मुनिश्री फतेहचंदजी (लाबिया) | ६ |
| ३. प्रथमाचार्यश्री भिक्षुगणी | १६ |
| परिशिष्ट १ (क) | २६४ |
| परिशिष्ट १ (ख) | २७४ |
| परिशिष्ट २ | २७६ |
| परिशिष्ट ३ (क) | २८४ |
| परिशिष्ट ३ (ख) | २८३ |
| ४. श्री धीरमाणजी (मोजत) | ३०० |
| ५. मुनिश्री टोकरजी | ३०८ |
| ६. मुनिश्री हरनाथजी | ३०८ |
| ७. द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी | ३१३ |
| परिशिष्ट १ (क) | ३६३ |
| परिशिष्ट १ (ख) | ३७१ |
| ८. लिखमोजी | ३८१ |

शासन-समुद्र

प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी का शासन

(वि० सं० १८१७-१८६०)

दोहा

महामना श्री भिक्षु के, युग में ज्ञान के
इष्ट देव स्मृति कर लिख, उन मन्त्र के द्वारा

मुक्तक

वर्तमान का ज्ञान विक्रम से होता है
और अनागत का ज्ञान विश्वाम से होता है।
मनुष्य कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो पर
अतीत का ज्ञान इतिहास में होता है।

आराध्य-स्तुति

श्रीः

'रूपम्' रूपम् नर-रूपम् मे, आदिमं त्रिन अक्षरम् ।
 'अक्षितं' अक्षितं नर-देव मे, स्वयं त्रिनेन्द्रियं दारम् ॥१॥
 'गम्भवं' हरते भव-भ्रमणं, भरते नव-आशंसम् ।
 'अभिनन्दनं' है वस्तुनः, अभिनन्दनं मे योग्यम् ॥२॥
 'गुमतिं' गुमति - दातां यदा, दिग्विजये सत्पथम् ।
 'पथं' पथवन् स्वच्छतरं, भरते गुरामि अनन्तम् ॥३॥
 'श्रीगुणान्' साने यत्नतः, समता श्री को पाम ।
 'चन्द्रप्रभं' नक्षत्रन्दनम्, उज्ज्वलं उन्मादम् ॥४॥
 'गुविधिं' गुविधिं निर्माणं की, यत्नमाने साकारम् ।
 'शोतव्यं' शोतव्यं कर रहे, भर निशा-रम सारम् ॥५॥
 करते हैं 'शेषांग' त्रिन, जन-जन का कल्याण ।
 'वागुपूज्यं' गुर - पूज्य है, तीन लोक के त्राणम् ॥६॥
 विदिनं 'विमलं' की विमलता, स्पष्टिक रत्नयत् स्पष्टम् ।
 चार अनन्त 'अनन्त' के, प्रानिहार्यं गुण अष्टम् ॥७॥
 'धर्म' धर्म - गुरु - देव के, व्यापारता अविकारम् ।
 गानि 'गाति' के नाम मे, मिलती है हर सारम् ॥८॥
 हर कर 'बन्धु' कपास-दान, साते नया यत्नम् ।
 'अर' अरि - चक्रव्यूह का, करते भेद सुरतम् ॥९॥
 'मलिन' महागुण - लोभ के, पहूँचे ऊँचे स्थानम् ।
 'मुनिगुण' हो ध्यान - रत्न, साये अद्भुत शानम् ॥१०॥

१. अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र्य, अनन्त बल ।

२. भोजन-वृक्ष, गुण-वृष्टि, दिव्य ध्वनि, देव-दुन्दुभि, रत्निक-निर्गमन, भाग्यश्रय, छत्र, चामर ।

‘नमि’ वर त्यागी उच्चतम, सब देवों में दृष्ट।
 ‘नेमि’ विरत हो विश्व में, पाये पद उत्कृष्ट ॥११॥
 ‘पार्श्व’ पार्श्वमणि प्रमुखतम, विकसित दर्शन-ज्ञान।
 अन्तिम अहंन् अति यत्नी, ‘महावीर’ भगवान् ॥१२॥

सोरठा

आगम रचनाकार, त्रिपदी के आधार पर।
 एकादश गणधार, इन्द्रभूति आदिक प्रवर ॥१३॥
 गणवीश षट्धार, युगप्रधान पूर्वभुती।
 रही सूत्र अनुसार, बालू जैन परम्परा ॥१४॥

सामायण-छंद

‘भिन्नु’ भिन्नुगण के अधिनेता, ‘भारी’ भारीमान गणी।
 ‘रायचन्द्र’ कृषि शरच्चन्द्रवत् ‘जय’ चिन्मय वैदूर्य मणी ॥
 मध्या माणक इन्तिम कालू तुलसी प्रभु प्रतिभाशाली।
 ए० ए० में हूए अधिपतिर सद्य - प्रभावक गणमाली ॥१५॥
 कर मीथंकर, गणधर, षट्धर, नौ आचार्यों को वन्दन।
 परमेश्वरी पवन को जगता नेता चार शरण पावन ॥
 तेरागण के तरंग गोपिन मुनि जन का वर्णन रुचिकर।
 रचना हूँ मैं गद्गुह—कृपया तन मन में अति स्थिरता धर ॥१६॥
 अगणित गणित-सिन्धु सागर के अगणित कुलवादी के कुल।
 अगणित गणित गिरिहर के मणि अगणित भू के रत्नकण मूल।
 शासन का इतिहास यद्य है ज्यों अम्बर की लम्बाई।
 उचाई है मेहरदरन् महासिन्धुवत् महुराई ॥१७॥
 अण - बृद्ध में प्रण - शक्ति में अण - कणा - षट्पा - समीत।
 अक्षि - भार में आत्मावि हो, स्थिर रहा कुछ-कुछ नवनीत।
 परमात्म्य दृष्ट - देवों को सभागीय में महत्त्व विचार।
 इन्द्र दृढ विश्वास हृदय में कार्य रूप में साक्षात्कार ॥१८॥

ਗੁਰਮਤਿ ਪ੍ਰੀਤ

ਗੁਰਮਤਿ

ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥
 ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ १ ॥
 ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥
 ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ २ ॥
 ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥
 ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ३ ॥
 ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥
 ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ਗੁਰਮਤਿ ॥ ४ ॥

१. मुनिश्री थिरपालजी* (लांबिया)

(समय-पर्याय सं० १८१६-१८३३)*

२. मुनिश्री फतेहचंदजी (लांबिया)

(समय-पर्याय १८१६-१८३१)

समय—यगीची निम्बुआ की...

नींव स्थिर शासन की, शासन की सुख आसन की ।

जम पाई अति सगीन । नींव स्थिर...

थिरपाल प्रथम मुनि पीन । नींव...

सुत फतेहचंद सह लीन । नींव...॥ध्रुव०॥

मरु-भू में पुर 'लांबिया', था ओसवश विख्यात ।

जयमलजी के पास में, दीक्षित पहले सुत तात' ॥नींव...१॥

राजनगर में कर दिया, चौदह का चातुर्मास ।

सच्ची श्रद्धा का प्रकट, दिखलाया कुछ आभास ॥२॥

* आचार्य मिश्र के समय से लेकर अद्यावधि दीक्षित समस्त साधु-साध्वियों की सूची रहती है, उसी सूची का क्रम का सूचक १ अंक है । अतः सर्वत्र साधु-साध्वियों के नाम के पहले या बाद में दी गई क्रम-सूचिका को उक्त प्रकार समझना चाहिए । साधु-साध्वियों की सूची पृथक्-पृथक् है । कही ५०।२।१ हो तो समझना चाहिए कि मूल क्रमांक ५० और दूसरे आचार्य भारीमासजी के समय के प्रथम संत है । सर्वत्र इसी प्रकार समझना चाहिए ।

* विष्णु सवत् चंद्र शुक्ला १ से बदलता है, परन्तु जैन तथा कुछ जैनिक परम्परा में यह भावण कृष्णा १ को बदलता है । इस ग्रंथ में प्रायः इसी सवत् का उल्लेख है । जहां विष्णु सवत् का उल्लेख है वहां स्पष्ट कर दिया गया है ।

पन्द्रह में श्री भिक्षु को हो पाया बोध - विकास ।
 रूपचन्द्रजी ने किया, मोलह का वर्षावास ॥३॥
 कड़ी परस्पर जुड़ गई, पहले से कुछ अमात ।
 सत्य शान्ति के समय में, वे हुए भिक्षु के साथ ॥४॥
 तेरह मुनियों ने ग्रहण, की दीक्षा भाव प्रधान ।
 तीन जगह पावस किये, आचार्य भिक्षु को मान ॥५॥
 एकत्रित मय फिर हुए, पर मिला न श्रद्धाचार ।
 पूयक् पांच तब हो हुए, रह गये आठ अपगार ॥६॥
 पितापुत्र जोड़ी मिली, गण-धनिका खिली विशेष ।
 भाग्यवती गुरु भिक्षु के, सहयोगी रहे हमेशा ॥७॥
 नव दीक्षा के समय में, देकर के गहरा ध्यान ।
 बड़े रंगे श्री भिक्षु ने, मुग मुनि को दे सम्मान ॥८॥
 उभय समय में बंदना, करते थे भिक्षु महान् ।
 विनयवान दोनों श्रुती, रखते उनका बहाना ॥९॥
 भक्ति भाव करते बहुत, धी गुरु सह अन्तर प्रीति ।
 शानन में स्थिर स्तभवन, दृढ़-निष्ठा निर्मल ॥१०॥
 किस टोले के साधु है ? हम भिक्षु-संन ब्रह्मन् ।
 चर्चा पूछो भिक्षु को, वे देंगे उत्तर ॥११॥
 अग्रगण्य हो विचरते, 'कोटा' पहुँचे एक दिन ।
 दशनेच्छु राजा हुआ, तब तत्क्षण किया ॥१२॥
 हम साधारण साधु हैं, आचार्य भिक्षु ज्ञान ।
 दशन उनके कर सही, वे लें प्रतिको ॥१३॥
 निस्पृह निर्मल गरल दिल, निर्लोभी ॥१४॥
 आत्मार्थी अन्तर्मुखी, आदर्श पुरा ॥१५॥
 बूढ़ी वर्षावास में, दिया साम - धन के ॥१६॥
 सहजन्मा बाघव युगल, दीक्षित हो गये ॥१७॥
 पनजी को दीक्षित किया, लो लेखन के ॥१८॥
 वीरभाण पनजी सहित, पावस कर ॥१९॥
 बड़े तपस्वी तप रसिक, महने दे ॥२०॥
 खड़े-खड़े जप ध्यान भी, करते ॥२१॥
 यने सहायक भिक्षु के, जब ॥२२॥
 कहा...आप श्रम कौजिये, तब ॥२३॥
 गुरु आज्ञा से विचरते, ॥२४॥
 आये 'बड़लू' ग्राम में, करने के ॥२५॥

युगल श्रमण की साधना, चली है दिन में रात ।

पत्तेहचन्द मुनि ने किया, तप मग्न मग्न (३७ दिन) का उन्न ॥२०॥

तब—मन्दिर में आई...

मुद्रित ने भिक्षावृत्ति में मिली,

ठंडी बाजरे की यह घाट । मुद्रित ० ।

घाकर ली परम की बाट ॥ मुद्रित ० ध्रुव ० ॥

अग्रिम मुनि को फिरते-फिरते, मिला शीतलाहार ।

जैसा गृहि के घर में होता, वैसा पानाधार ॥२१॥

लिए साधु के कही न बनता, किन्तु भोजन पानी ।

बना बनाया दे दाता तो, से सेते समुदानी ॥२२॥

कठिन साधना कठिन नियम है, जीवन भर एक सार ।

स्वस्थ और अस्वस्थ समय में, है न अलग आगार ॥२३॥

पिता साधु ने कहा पारणा, करो पत्तेह ! घर मोद ।

विकृत अशन से आयु पूर्ण कर, पहुँचे स्वर्ग की गोद ॥२४॥

तब—धनी की निम्नता की...

धिरपाल श्रमण मुनि पाम में, आये कर उग्र विहार ।

नहीं अकेला विचरता, पचम अर में अणगार ॥२५॥

अन्तिम पावस धरवा, कर लाये अधिक निधार ॥

सत्लेखन तप की ग्रही, कर में दृढतर तलवार ॥२६॥

दर्शन कर नर नारिया, देते हैं झुक-झुक धोक ।

विविध त्याग कर भर रहे, आध्यात्मिक नव आलोक ॥२७॥

ऊर्ध्व विचारों में किया, अनशन-व्रत दुःखरुकर ।

दिवस एक दस से फना, उतरे हैं भव जल पार ॥२८॥

अष्टादस तेतीस की, ग्यारस कृष्णा गुरुवार ।

प्रथम सितारे संघ के, स्वर्गों में गये सिधार ॥२९॥

थावक नेमीदास कृत, दो ढाले प्राचीन ।

ध्यात आदि में भी लिखा, विवरण तत्कालीन ॥३०॥

१. मुनि विरपातजी और फतेहचंदजी का गांव साबिया (मारवाड़) और वल ओसवाल था। उनके पिता का नाम राहासिहजी था।

पहले उन दोनों ने स्थानकवासी आचार्य जयमलजी के पास दीक्षा स्वीकार की थी। विरपातजी पत्नी विधोय के परचात् और फतेहचंदजी अनुमानतः अविवाहित वय में दीक्षित हुए थे।

सुत्रानगढ़ निवासी लिखमोचदजी झुगरवाल द्वारा संकलित गत विवरणिका में भी ऐसा लिखा हुआ है।

२. दोनों मुनि जब जयमलजी की सम्प्रदाय में थे तब उन्होंने ४ साधुओं — १. विरपातजी २. फतेहचंदजी ३. वद्यतमलजी ४. भारमलजी से स. १८१४ का चातुर्मास राजनगर में किया। वहाँ उन्होंने राष्ठी थड़ा की कुछ बातें कहीं— 'नब सर्वों के ज्ञान के बिना सम्पत्त्व नहीं सम्पत्त्व के बिना धावकत्व और साधुत्व नहीं। केवलज्ञानी की आज्ञा के बिना धर्म नहीं, व्रत में धर्म, अन्न में पाप। मोह-अनुकम्पा में पाप, सावध अनुकम्पा में पाप।'

जब जयमलजी ने उक्त प्रवचना करने की बात सुनी तो उन्होंने इसका निषेध किया।

स. १८१५ में स्वामी भीखणजी ने ५ साधुओं (१. स्वामीजी २. भारीमालजी ३. टोकरजी ४. हरनाथजी ५. धीरमाणजी) से राजनगर चातुर्मास किया। वहाँ उन्हें बोधि-प्राप्ति हुई।

स. १८१६ में स्थानकवासी रूपचंदजी आदि साधुओं ने राजनगर चातुर्मास किया। उक्त थड़ा की बातें उनके भी जच गयीं।

स्वामीजी ने स. १८१६ का चातुर्मास जयमलजी के साथ जोधपुर किया तब उनके तथा मुनि विरपातजी फतेहचंदजी आदि के पूर्ण रूप से स्वामीजी की थड़ा बैठ गई। ऐसा दृष्टांत १३ में लिखा है।

आचार्य भिदू ने स. १८१६ चैत्र शुक्ला ६ को स्थानकवासी सम्प्रदाय से पूषक होकर धर्म ज्ञानि का सूत्रपात किया तब १३ (५ रूपनाथजी के ६ जयमलजी के और २ अन्य टोले के) साधु मिले। जो प्रायः राजनगर चातुर्मास करने वाले ही थे।

१. साबिया नगर मुहामणी, रया ऊंचे कुल अवतारो जी।

पूर्व पुण्य पसाय थी, सहयो मानव भव सारो जी।

आय ओसवाल घर जनमिया, साहा राहासिहजी घर जामो जी।

(आवक नेमीदास कृत गुण व० डा० १ गा २, ३)

२. हम कृति में मुनि हैवराजजी से सुनकर जयाचार्य द्वारा संश्रुति की गयी स्पष्टकर घटनाएँ हैं।

नई दीक्षा ग्रहण के पूर्व स्वामीजी आदि १३ ही साधु राजनगर में एकत्रित हुए। वहाँ सभी ने नई दीक्षा लेने का निर्णय किया। छोटे बड़ों का प्रथम पहने की तरह ही रखा। सब में रूपचन्दजी बड़े रहे। स्वामी भीष्मजी को आचार्य रूप में माना। जिस गाव में चानुर्मगि कर रहे वहाँ मन्त्री पुनः पञ्च महाग्रन्थ स्वीकार करने का निर्देश दिया गया। १३ साधुओं ने तीन मिथाडों के रूप में निम्नोक्त स्थानों में चानुर्मगि किया।

१. रूपचन्दजी वरनमलजी ठाणा ४ बूरी।

२. भीष्मजी स्वामी ठाणा ५ केलवा

३. विरपालजी स्वामी ठाणा (ठाणें तथा स्थान का उल्लेख नहीं है पर चार ठहरते हैं।)

वहाँ सभी ने आपाङ्ग भुक्ता १५ को नई दीक्षा ग्रहण की।

शुद्ध आचार का पालन न कर सकने के कारण रूपचन्दजी चानुर्मगि में ही अलग हो गये। चानुर्मगि के बाद १२ साधु मिले। उनमें वखनरामजी और गुनावजी कालवादी हो गये। भारमलजी (द्वितीय) और प्रेमजी का आचार-विचार न मिलने से सम्बन्ध साथ में नहीं रहा।

इस प्रकार ५ साधु प्रारम्भ से ही अलग रहे। आठ साधुओं का सम्बन्ध शामिल रहा। उनके दीक्षा-पर्याय के प्रथम से नाम इस प्रकार हैं—

१. विरपालजी २. पतेहचन्दजी ३. आचार्य श्री भीष्मजी ४. वीरभानजी ५. टोकरजी ६. हरनाथजी ७. भारीमलजी ८. लिखमोजी।

(पुर निवासी महात्मा मोहनलालजी से प्राप्त प्राचीन पत्रों के आधार से)

दृष्टान्त १३ में लिखा है कि स्वामीजी ने आचार्य जयमलजी के साथ स० १८१६ का चानुर्मगि जोधपुर किया तब आचार्य जयमलजी के तथा विरपालजी, पतेहचन्दजी आदि साधुओं के दिन में स्वामीजी द्वारा निर्णीत थड़ा बैठ गयी।

स० १८१६ चैत्र शुक्ला ६ को वगरी में स्वामीजी के स्थानरुक्मिणी मन्त्रदाय में अलग होने के पश्चात् मारवाड़ के किमी क्षेत्र में आचार्य जयमलजी के शिष्य विरपालजी, पतेहचन्दजी आदि ६ साधु स्वामीजी के शामिल हो गये। स्वामीजी ने चानुर्मगि नियुक्त कर सभी को आपाङ्ग भुक्ता पूर्णिमा को भाव-दीक्षा ग्रहण करने का आदेश दे दिया। फिर स्वामीजी आदि सभी साधु मेराड़ की तरफ पधार गये और पूर्व निर्दिष्ट नियम को यथास्थान नई दीक्षा स्वीकार कर ली।

उक्त वर्णन आचार्य प्रिय के प्रकरण में विस्तार पूर्वक दिया गया है।

स्थानों में निम्ना है कि मुनि श्री विरपालजी और पतेहचन्दजी ने जयमलजी के सम्बन्ध को छोड़कर स्वामीजी के साथ नई दीक्षा ली और उन्होंने आजीवन

स्वामीजी को प्राणप्रण से सहयोग दिया ।

शासन विलास^१ डा० १ गा० १ में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है—

‘भिदू गण मे पिता पुत्र नी जोड़ कै, स्वामी यिरपाल ने फतेहचंद भलाजी ।

भिदू साथे चरण लियो घर कोड कै, जयमलजी मां मू नीकल्या जी ।’

३. स्वामीजी ने मुनि श्री यिरपालजी और फतेहचंदजी को दीक्षा में अपने से बड़ा रखा । इसका कारण था कि वे दोनों जयमलजी की सम्प्रदाय में स्वामीजी से पहले दीक्षित हुए थे ।^२

(ख्यात)

४. स्वामीजी वंदना के समय धाजोट से नीचे उतर कर इन दोनों सतों को लोगों के सामने विधिवत् वंदना करते थे ।^३

(ख्यात)

५. दोनों मुनियों को कोई व्यक्ति पूछता कि आप किस टोले के साधु हैं । वे निःसंकोच कहते—‘हम भीखणजी के टोले के साधु हैं ।’

कोई उनको चर्चा पूछता तो वे कहते—भीखणजी से पूछो, वे जो कहें वही सत्य है । हमें पूरी जानकारी नहीं है ।’

इस तरह स्वामीजी के प्रति हादिक प्रीति व अखड आस्था थी ।^४

६. मुनि यिरपालजी मुनि फतेहचंदजी के साथ सिवाडबध रूप में विचरते-विचरते एक बार कोटा पधारे । वहा का राजा उनके दर्शनार्थ आने के लिए उत्सुक हुआ । इसका पता लगते ही उन्होंने वहा से विहार कर दिया^५ और कहा—आचार्य

१. जयाचार्य द्वारा रचित ।

२. आगे दूँदिया माहि बड़ा हूता, सो बडा रा बडा राखू ।

यां नै छोटा कर नै हूं बड़ो हुवू इण मे स्यू फल चाखू ॥

(जयाचार्य रचित मुनि यिरपाल गुण वर्णन डा० १ गा० ३)

३. पद आचार्य हो भिक्षु बुद्धि ना भडार जन बहु देखता युक्ति सू ।

आप मूकी हो पद नो अहकार कर जोरी वन्दना करै भक्ति सू ॥

(भिवन्तु जश रसायण डा० ४४ गा० २)

४. कोई पूछै सत दोनू भणी, थे किण रा टोला रा सोय ।

ते कहै भीखणजी रा टोला तणा, ऐसा नियर्वी दोय ।

चर्चा ओल कोई पूछता, दोनू सत भाखतो ।

भीखणजी नै पूछ निर्णय करो, भीखू कहै सो सतो ॥

(मुनि यिरपाल गुण वर्णन डा० १० गा० ५, ६)

५. कोटे आप पधारिया, महिपति जावणहार ।

साभल नै ते सत बिहुं, ततभण कियो विहार ॥

(भिक्षु जश रसायण डा० ४४ दो ८)

भिक्षु यहाँ पधारने वाले हैं अतः उनके दर्शन करना विशेष ठीक रहेगा क्योंकि हम तो साधारण साधु हैं।'

ऐसे निरभिमानी साधु थे।

(ध्यात)

७ मुनि श्री ने बूढ़ी चानुर्मास किया तब उनके उपदेश में युगल-जन्मा दो भाई रामजी तथा रामजी तेरापय के अनुयायी बने और स० १८३८ में आचार्य भिक्षु के पास दोनों ने दीक्षा ली।

(मुनि रामजी रामजी की कथान)

८ सवत् १८३२ के अस्तिगत लेखपत्र क्रमांक ८ में है कि वीरभाणजी (४) ने एक बार पनजी (१७) से कहा — 'तू तपस्वी मुनियो—विरपालजी, फतेहचंद जी का चेला सोलुपता (दाने के लालच) में बना।' इससे झलकता है कि पनजी (१७) ने उनके पास दीक्षा ली। वीरभाणजी तथा पनजी ने मुनि श्री विरपालजी फतेहचंदजी के साथ सवत् १८३१ के पूर्व (मुनि फतेहचंद जी के स्वर्ण-गमन के पहले) एक चानुर्मास किया। उक्त लेखपत्र में ऐसा भी प्रतीत होता है।

९ दोनों मुनि बड़े तपस्वी हुए। वे शीतकाल में शीत सहन करते, उष्णकाल में आतापना लेते तथा खड़े-बड़े ध्यान करते।'

(ध्यात)

१० आचार्य भिक्षु ने लोगो को धर्म न समझते हुए देखकर एकान्तर तप और नदी की घूल में आतापना लेना प्रारम्भ कर दिया। उनकी उत्कट तपस्या एव साधना से लोग आकर्षित होने लगे। तब दोनों मुनियों ने स्वामीजी को धर्म-प्रचार के लिए प्रेरणा दी। बूढ़े साधुओं के कथन को मानकर स्वामीजी जन-कल्याण के लिए उद्यत हुए।'

११ स० १८३१ में मुनि विरपालजी और फतेहचंदजी बिहार करते हुए बरहूँ पधारे। वहाँ मुनि फतेहचंदजी ने ३७ दिन का तप किया। पारण के दिन मुनि विरपालजी मिना में टकी बाजरे की घाट लेकर आये। मुनि फतेहचंदजी

१ तपारा तप मो अधिको विन्यार, कायर मुण कयै घणा।

अति पामे हो मूरा हरय अपार सग्न दोनू ही मुहामणः॥

(भिक्षु जण रमायण दा० ४४ गा० ६)

२ तपमा करा रहै आपन सारणी, अधिक पोहच नहीं और हो।

आन नरो में तारो अजर नै जाओ बुडि नो ओर हो॥

सन बडा रो कवन भीनू मुणी, धारयो घर बिन धीर हो।

ध्याय विशेष बनापना निरमचा, हरयो टिकी होइ हो॥

ने उसे समता-पूर्वक खाया पर विहृति पैदा होने से वे उमी दिन दिवगत हो गए ।'

हलामजी जती द्वारा रचित शासन प्रभाकर डा० २ गा० १२० में ३१ दिन के तप का उल्लेख है जो गलत है ।

१२. क्यात में लिखा है कि मुनि श्री फतेहचंदजी के सं० १८३१ में स्वर्ग-गमन के बाद मुनि धिरपालजी ने खेरवा में साधुओं के समीप आकर 'सलेखना' प्रारंभ कर दी । परन्तु अनुसंधान से ऐसा प्रतीत होता है कि मुनि फतेहचंदजी के स्वर्गवास के बाद मुनि धिरपालजी साधुओं के पास आये और एक वर्ष लगभग विचार कर फिर उन्होंने सं० १८३२ आपाड़ महीने से खेरवा में सलेखना तप चालू किया । ऐसा मानने से आगे दिया गया सलेखना तप का मिलान बराबर बैठता है ।

सं० १८३३ में मुनि धिरपालजी ने खेरवा चातुर्मास किया । उस समय उन की सेवा में मुखरामजी ६ और तिलोकचंदजी १२ थे ।'

क्यात एव शासन विलास डा-१, पा-४ से ६ में उनके सलेखना तप का वर्णन इस प्रकार मिलता है ..

१४, २, ८, ८, २, २, २०, ३, ३, १६, ४, ४, ६, ५, ५, ८ ।

थावक नेमीदास कृत ढाल में इस प्रकार है

१४, २, ८, ८, २, २, २, २०, ३, ३, १६, ४, ४, ६, ५, ५, ८ ।

उत्पुंजन दोनों उद्धरणों में केवल एक बेले का अन्तर है । क्यात और शासन विलास में आठ के बाद दो बेले लिखे हैं और ढाल में तीन बेले हैं ।

शासन प्रभाकर में लिखित तपस्या के अतिरिक्त एक १६ का थोकड़ा अधिक लिखा है जो गलत है ।

शासन-विलास, क्यात एव भिक्षु यश रसायण में उनके सलेखना तप के १४ पारणों का उल्लेख है—'आसरें चवदै किया वही' वह सही नहीं है, क्योंकि जब

१. फतेहचंदजी बरलू जगीस, षीधा तप दिन प्रवर सैतीस ।

ठठी बाजरी भी घाट ताम, आण दीधी धिरपालजी स्वाम ॥

फत्ता पारणों करते एह, मुनि आहार भोगवियो तेह ।

तिण जोग स्यु कर गया काल, अष्टादश इकतीसे म्हाल ॥

२. समाधि मरण की भावना से शरीर को कुश करने के लिए की जाने वाली तपस्या सलेखना कहलाती है ।

(शासन विलास डा० १ गा० २, ३)

३. कनै माधु सुखोजी तिलोकजी, बिनै विषावच रे इधकार जी ।

(था० नेमीदास कृत गु० व० डा० २, गा १७)

शासन-विनाश और ख्यात में तपस्या के अंक १६ बार हैं तो पारणे के दिन १६ कर्म हो सकते हैं ?

दान में तपस्या के अंक १७ बार और पारणे के अंक १७ हैं—'सर्व पारणा सतरे किया' (दा० २, गा० १५)। इस प्रकार ख्यात आदि में तथा दान में तपस्या के एक अंक का फर्क पड़ता है परन्तु दान में तपस्या एवं पारणे की नियतों तथा बारों का भी क्रमशः उल्लेख किया गया है, अतः वह ठीक लगता है।

मुनिश्री ने दान के अनुसार आपाढ़ अमावस्या रविवार को सर्वप्रथम १४ दिनों की तपस्या का प्रत्याख्यान किया।^१ आपाढ़ी पूर्णिमा को पारणा करके बेला किया और उसका पारणा थावण कृष्णा ३ गुरुवार को किया, फिर दो अष्टमियों की और पारणा थावण शुक्ला ७ सोमवार (बीच में एक तिथि घटी है) को किया, फिर क्रमशः २, २, २, २०, ३, ३ की तपस्याएँ की और पारणा प्रथम भाद्रव पूर्णिमा गुरुवार को किया, फिर द्वितीय भाद्रव से क्रमशः १६, ४, ४, ६, ५, ५, ८ की तपस्याएँ की और पारणा आश्विन शुक्ला १४ शनिवार (बीच में एक तिथि घटी है) को किया। उसके बाद समस्त आश्विन पूर्णिमा को आहार किया और कार्तिक वदी १ सोमवार को मथारा (आजीवन के लिए आहार का त्याग) किया। जो ग्यारह दिन का आया एवं कार्तिक वदी ११ बृहस्पतिवार को सम्पन्न हुआ।

तप के ११५ दिन
पारणे के १७ दिन
अधिक भोजन का १ दिन
अनशन के ११ दिन
कुल १४४ दिन

आपाढ़ के १५ दिन
सावन के २६ दिन
प्रथम भाद्रव के ३० दिन
द्वितीय भाद्रव एवं आश्विन के ५६ दिन
कार्तिक के ११ दिन
कुल १४४ दिन

१३. मिश्र यश रसायन, शासन विनाश तथा ख्यात आदि में लिखा है कि मुनि विरपात्मजी का स्वर्गवास स० १८३२ कार्तिक वदि ११ को हुआ। लेकिन यह गदिग्र हो जाता है जब हम स्वासीजी के स० १८३२ मृगशर वदि ७ के प्रथम मर्षादा-अन पर मुनि श्री विरपात्मजी के हस्ताक्षर पाते हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि थावण नेमीदागजी कृत दान में उनका स्वर्गवास स० १८३३ कार्तिक वदि ११ बृहस्पतिवार को माना है। मुनि श्री के स्वर्गरोहण पर रची हुई यह अति प्राचीन दान, पीताह निवामी गुमानजी लुनावन द्वारा हस्तलिखित पोये [पुस्तक] में उद्धृत कर चरितार्थपो पुस्तक में प्रकाशित है। यह गीतिना सम्भव जयाचार्य के दृष्टिकान नहीं हुई हो, जिसमें उनकी तथा अन्य कृतियों में पूर्वभूति के अनुसार

१. सम्भवतः उस दिन संध्या के समय प्रत्याख्यान किया और आपाढ़ शुक्ला १ में तप आरंभ हुआ।

बलीम की साध का अनुकरण होता रहा है। तीसरा प्रमाण फिर यह है कि स० १८३२ में तो स्वयं स्वामीजी का चातुर्मास 'मेरवा' था। ये स्वामीजी के साथ नहीं थे। चौथा प्रमाण तो बहुत ही स्पष्ट है कि स० १८३२ जेठ सुदि ११ को स्वामीजी ने लिखित (व्यक्तिगत क्रमांक ६) किया। जिसमें भुनि धिरपालजी, हरनाथजी, भारमलजी, चन्द्रभाणजी, अर्धरामजी, सुखरामजी, त्रिलोकचन्दजी, अणदोजी—इन ६ साधुओं के हस्ताक्षर हैं। इससे इनका स्वर्गवास स० १८३२ में नहीं हो सकता। स० १८३३ में ही ययार्थ लगता है।

कई क्षेत्रों में सबत् दीपावली से अथवा मृगसर महीने से प्रारम्भ होता है, अतः स्वर्ग सम्बत् १८३३ की जगह किसी कृति में १८३२ लिखा गया हो और अन्य कृतियों में उसका अनुकरण होता रहा हो, ऐसा भी सम्भावित है।

१४. गुगल मुनियों के जीवन सन्दर्भ में श्रावक नेमीदासजी कृत दो ढालें 'प्राचीन गीतिका सग्रह' में तथा 'चरितावली' पुस्तक में प्रकाशित हैं जो स० १८३३ में मेरवा में बनाई गई हैं।

जयाचार्य रचित उनके गुण वर्णन की १ ढाल है। अथवा, शासन-विलास, शासन प्रभाकर ढा० २ गा० ११ से १३० तथा भिक्षु यश रसायण ढा० ४४ गा० १ से १४ में भी संक्षिप्त विवरण मिलता है।

जयाचार्य ने मुनिन्द मोरा ढा० गा० ८ में उनको स्मृति करते हुए लिखा है—

धिरपाल फलचन्द जपिये रे, स्वामी मोरा, प्रेम सू रे मोरा स्वाम ॥

३. प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणो

(ग० १८१७-१८१०)

दीप्ता-गणो १३ वन

दोहा

‘भिक्षु’ भिक्षुगण के प्रथम, धर्माचार्य प्रवीण ।
गरिमा उनकी गा रहा, गोम्बुक मर्वागोण ॥१॥

रामायण-छंद

वीर भिक्षु की सरम कहानी, वीरो की महनाणी है ।
आत्मोन्नति को प्रबल प्रेरणा, देनी बड़ी मुहानी है ॥ध्रुव०॥
मध्यरणी के पूर्व किनारे ‘कटालिया’ गांव गाया ।
पिता ‘बल्लु’ माना ‘दीपा’ की रत्न-कुछि में भुज आया ।
स्वप्न मिहू का भवितात्म - अणगार भुचन परक सबल ।
साल तंयामी सतरह सी की सितापाइ तेरस भगत ।
ओमवान - मंकेचा वणज की अच्छी गानदानो है ॥२॥

दोहा

होलोजी भार्द वहे, छोटे भिक्षु सुदश ।
कुन का परिचय दे रही, वशावलि प्रत्यक्ष ॥३॥

रामायण-छंद

देह दीपंतर वणें दयाम था लाल नयन गति गजवर-सम ।
ये सामुद्रिक चिह्न अनूठे एक एक से सुंदरतम ।
दक्षिण पद मे ऊर्ध्व - सुरेखा मगरमच्छ की धी कर मे ।
रेखात्रय भणिबध - कन्द पर चक्र दमागुलिकान्तर में ।
भय्य ललाट व गर्दन पर भी रेखा तीन सुभानी है ॥वीर...४॥

स्वस्ति ध्वजा आकार उदर पर सम रेखाएँ तीन मिली ।
 कानो पर थे केश निराले तन की आभा खूब खिली ।
 शभ लक्षण हो जिनके ऐसे कहते ज्योतिर्विद् पत्र में ।
 दो हजार वर्षों तक उनका नाम अमर है भूतल में ।
 पुण्यशालिता महापुरुष की रहती नहीं अजानी है ॥वीर...५॥
 बालक-वय में सूक्ष्म बुद्धि थी पढ़े हिसाब महाजन के ।
 चतुर मुख्य थे पचायत के कार्य-सृजन में जन-जन के ।
 समझदार समझे जाते थे बड़ी प्रतिष्ठा पुर जन में ।
 सूझ-बूझ की घटनावलियाँ लाती अद्भुत रस मन में ।
 योग्य पुरुष की महिमा बढ़ती करते सब अगवानों है ॥वीर...६॥
 ठग - विद्या से अन्ध पुरुष जो देव - भक्त बन पूजाता ।

॥वीर...७॥

हुआ विवाहोत्सव लघु वय में सुनी गालियाँ व्यग्रात्मक ।
 छोड़ चले भोजन को तत्क्षण, थी स्त्री से बड़ी शिक्षक ।
 भौतिक भोगों में अधिक रुचि सहज विरति थी अंदर में ।
 सत् संस्कार पूर्व भव के अब जागृत होते अवसर में ।
 लगे खोज में सत्य धर्म की बात मर्म की जानी है ॥वीर...८॥
 कुलगुरु यती, पोतियावध व स्थानकवासी मुनि जन की ।
 सगति से दिल हुआ शीघ्रतर लेने निधि संयम धन की ।
 ब्रह्मचर्य सह तप एकांतर जब तक दीक्षा—ग्रहण नहीं ।
 पत्नी भी थी साथ किन्तु वह तब तक जीवित नहीं रही ।
 बड़ी भावना अधिक भिक्षु की, सोचा काल कृपाणी है ॥वीर...९॥
 कठिन साधना की कुछ दिन तक, पीकर देखा जल कटुतर ।
 हुए तोलकर आत्म - शक्ति को लेने चरण - रत्न तत्पर ।
 'छा लूगी मैं पेट - कटारी' कहा बूझा ने उनसे तब ।
 पूनी क्या वह जो छा लेगी बोल रही बयो बेमतलब ।
 आशा लेते जननी भी तो करती आनाकानी है ॥वीर...१०॥

दोहा

होनहार होगा तनुज, सिंह स्वप्न अनुसार ।
 इसीलिए मैं कर रही, दोषा हित इन्कार ॥११॥

गृहेगा हरि की तरह, करके धार्मिक भ्रान्ति ।
साधु बनेगा उच्चतम, सकल हरेगा भ्रान्ति ॥१२॥

रामायण-छंद

समझाने से मृदु शब्दों में माता अनुमति देती है ।
रूपों एक हजार भिक्षु तज करते समय - भेती" है ।
आठ अठारह सौ में ली है दीक्षा गुरु रघुनाथ समीप" ।
आगम पढ़ने - पढ़ते क्रमशः जला हृदय में चितन - दीप ।
नहीं शुद्ध समय का पालन जैसे प्रभु की वाणी है ॥वीर...१३॥
आधार्कर्म वा स्थापित स्थानक में रहने रोक बिना ।
लेते द्रव्य मोल के, खाते नित्यपिंड भी रोक बिना ।
प्रतिलेखन के बिना पुस्तकें रहती बघ तिजोरी में ।
वस्त्र - पात्र की मर्यादा का ध्यान नहीं कमजोरी में ।
आज्ञा बिना मूँटते चाहे अविवेकी अज्ञानी है ॥वीर...१४॥
स्थाप दोष की ओर कर रहे मिथ धर्म की प्रकट पुकार ।
गोत्रमानसच्ची श्रद्धा में शिथिल-शिथिल आचार विचार ।
पुन पुन प्रश्नोत्तर में भी नहीं तसल्ली मिलती है ।
मीठी - मीठी बातों से कब अंतर कलिया खिलती है ।
फिर भी प्रेम द्रव्य गुरु से, करने न कभी मनमानी है ॥वीर...१५॥

दोहा

पद लायक गुरु जानने, योग्य शिष्य श्रीकार ।
बोना ऐसे समय कुछ, फलता अब सहकार" ॥१६॥

रामायण-छंद

राजमगर के नामी श्रावक तत्त्व - विज्ञ जो कहलाये ।
गाथाचार विचार विषय में पूरे शक्ति हो पाये ।
छांट दिया गुरु-वन्दन करना, सब उनको समझाने हित ।
गुरु ने शिष्य भिक्षु को भेजा, पढ़ूँगे वे मुनिचार सहित ।
बचन सुनिव मे उन्हें शुकामा कही यथा गुरु-वाणी है ॥वीर...१७॥

दोहा

बोले श्रावक हृदय में, नहीं बँटती बात ।
आप विरामी इगलिय, जोड़ रहे हैं हाथ" ॥१८॥

रामायण-छंद

रजनी में ज्वर तनु कम्पन सह आत्मिक बल देने आया ।
 अकस्मात् की इस घटना से रोम-रोम अति कपाया ।
 प्रातः साफ-साफ मैं कह दू बातें जो सिद्धांतों में ।
 होना है वह होगा किन्तु न जीभ दबाऊ दातो में ।
 जाना है परलोक एक दिन पोल न जरा चलानी है ॥वीर...१६॥

दोहा

चितन करते हो त्वरित, उतर गया है ताप ।
 मुबह थावको को दिया, आश्वासन सालाप ॥२०॥

रामायण-छंद

दृढतम निश्चय करने खातिर पढ़े सूत्र फिर दो-दो बार ।
 सत्य झूठ को झूठ सत्य को कहने से बढता संसार ।
 पावस कर गुरु सम्मुख पहुंचे देखा गुरु का बदला रंग ।
 सविनय झुके चरण मे सोचा—अभी बात का नही प्रसंग ।
 समझाऊंगा फिर धृति पूर्वक, उचित न खीचातानी है ॥वीर...२१॥

दोहा

विविध युक्ति युत सूचित मे, भिक्षु महा मतिमान् ।
 गुरु सम्मुख स्फुट रूप में, रखते निज अरमान ॥२२॥

सय—ऊमी ओऊ बाटइसी...

सच्ची श्रद्धा ग्रहण करे जो पालें शुद्धाचार ।
 आप नाथ मैं शिष्य हूँ कर नव दीक्षा स्वीकार ।
 जीवन का करे सुधार ॥२३॥
 मेरा मन संयम में, है एक यही सुविचार । मेरा मन...
 हो सफल मनुज अवतार ॥मेरा... ध्रुव०॥
 'देव' सहो अरिहंत 'सुगुरु' मुनि, पंच महाव्रत धार ।
 धर्म जिनेश्वर द्वारा भाषित, श्रद्धा लें यह धार ।
 होगा इससे निस्तार ॥मेरा...२४॥

मित्र न इन नीनों में होता पागल ॥१॥ ॥१॥
 एक कार्य में गुप्त पाव हो गया है निरोग ॥
 मृत गुप्त नर पाता ॥२॥
 पूजा स्वाधा के लिए छोड़े न स्वजन समार ॥
 आत्म-शुद्धि हिन गिर मृदाया गीर वजन अनुसार ॥
 परमा का करो निहार ॥२॥
 कायगता है रण में हटना, हो गयीं में भीत ॥
 वीर पुण्य तो गाता विजयी मित्रनाद के गीत ॥
 भर हर गौरव अनपार ॥२॥

बोहा

इत्यादिक मधुरोक्ति में, गते हृदय के भाव ॥
 आत्म-प्रसादन के लिए, प्रगुप्त रिया गुमाय ॥२॥
 शामिल चानुमांग कर, निर्णय कर सभायें ॥
 लेकिन वे माने नहीं, न किया निरन मार्ग ॥२॥
 अलग-अलग पात्र रिया, मिले दूगरी वार ॥
 कभी न कहने में रगी, फिर भी अस्वीकार ॥३॥

सय—ऊँची ओझं पादुकी...

नही समझते देख भिक्षु ने, तोड़ दिया सम्बन्ध ॥
 लक्ष्य सिद्धि के लिए चले हैं, छोड़ सत्य प्रतिबन्ध ॥
 हो गये सग मुनि चार ॥ मेरा... ३१ ॥
 साल अठारह सो सतरह की, नवमी शुक्ला चेत ॥
 अभिनिष्क्रमण दिवस आया ने, शुभ दिन शुभ संकेत ॥
 पोला नूतन व्यापार ॥ मेरा... ३२ ॥
 जगह ठहरने को न मिली तब, तत्क्षण किया विहार ॥
 रुके शमशानों की छतरी में, देव वायु - विस्तार ॥
 कर सीना बयाकार ॥ मेरा... ३३ ॥

गीतक-छंद

तहलका मच गया भारी भिक्षु के प्रस्थान से ॥
 लोग से वह छतरियों पर आ गये गुरु स्थान से ॥
 मान भीष्म ! घात मेरी काल पंचम है अभी ॥
 सय के आश्रय बिना तुम निभ न पाओगे कभी ॥३४॥

दोहा

मैंने निर्णय कर लिया, पढ़ कर सूत्र सतकं ।
 तोर्य चनेगा अन्त तरु, अग न इसमे फकं ॥३५॥
 जिन आजा को शीघ्र धर, विधिवत् समय भार ।
 पालूंगा मैं भाव मे, मेरा एक विचार ॥३६॥

गीतक-छंद

वचन सुनकर द्रव्य गुरु के तो निराशा छा गई ।
 बढ़ो बिता मोह आया उदामी अति आ गई ।
 अश्रु गिरते देख बोला एक सहचर सत जो ।
 सघपति हो ले रहे क्यों मोह मय यह पथ जो ॥३७॥

दोहा

जाने से ही एक के, उठती दुख-तरंग ।
 मेरे जाते पांच ये, होना गण में भग ॥३८॥

सय—ऊभी जोऊ पाटझी...

दिलगोरी से गुरु की पथ से, डिगे न तिलभर आप ।
 सोचा—मैंने दीक्षा ली तब, मा ने किया विलाप ।
 भमता वधन का द्वार ॥३९॥
 तूं आगे पीछे रहू मैं, लोग लगाऊ पृष्ठ ।
 नहीं कभी भी डरने वाला, परिपह मे उत्कृष्ट ।
 है मरना आखिरकार ॥४०॥

दोहा

बड़लू में चर्चचिली, पुनरपि उनके साथ ।
 किया परिश्रम भिक्षु ने, किन्तु न मानी बात ॥४१॥
 पूरा पल सकता नहीं, कलि मे समय भार ।
 प्रथम अग में देख लो, (ये) दुर्बल जन उद्गार ॥४२॥
 उमय घड़ी चारित्र से, (जो) पाये केवलज्ञान ।
 (तो) द्वास रोक एकान्त में, बैठूं मैं धर ध्यान ॥४३॥
 बीर शिष्य छत्रस्थ बहु, फिर प्रभवादिक अनेक ।
 कर न सके थे साधना, क्या मुहूर्त तक एक ॥४४॥

पचमार का नाम ले, करने क्यों तकरार ।
हो सकती मत् माधना, हो यदि सखल विचार ॥४५॥
इत्यादिक सवाद मे, सार न निकला अल्प ।
कदम बढ़ाये भिक्षु ने, कर चिन्तन अविकल्प ॥४६॥

सय—ऊँची जोऊ घाटङ्गली...

मरण धार सन्मार्ग मे वे, आये निभय - कोट ।
ऊँखल मे गिर दे दिया, सहने मूसल की चोट ।
साहस भर लिया अपार ॥४७॥

रामायण-छंद

जयमलजी से मिले भिक्षु फिर बडलू जोधनग्र के बीच ।
छह मुनि उनके बने सहायक खुद न सके समय रस र्छींच ।
मिले दूसरे टोले के दो, हो पाये तेरह अणगार ।
वहस परस्पर करके कुछ दिन किया एक श्रद्धा - आचार ।
प्रभु - साक्षी मे, नियत समय पर दीक्षा लेनी ठानी है ॥४८॥

दोहा

रहे जोधपुर कुछ दिवस, समझाये बहु भ्रात ।
श्रायक गेरुलालजी, आदि हुए विध्यात ॥४९॥
विदा जोधपुर से हुए, वीलाडादिक स्पर्श ।
आये काठा क्षेत्र मे, फिर मेवाड़ सहर्ष ॥५०॥
अमुक - अमुक पुर ग्राम मे, कर पावस मुखकार ।
पूनम को आपाढ की, लेना संयम भार ॥५१॥
वर्षा ऋतु के बाद मे, सम जो श्रद्धाचार ।
तो शामल सम्बन्ध है, नहीं अन्यथा प्यार ॥५२॥

रामायण-छंद

नही नाम की भूय जरा कन्याण-दृष्टि से काम किया ।
शहर जोधपुर मे मेवग ने माधु सय का नाम दिया ।
अर्थ अनोपा किया भिक्षु ने प्रभो ! पय यह तेरा है ।
हम अनुपायी अटल तुम्हारे पक्का पण यह लेना है ।

कहा—किराये दो दुकान को, बोला मालिक मुख से साफ ।
 दे न सकूंगा अभी हाट को जड़ दो यदि रुपये से आप^{१६} ।
 करो रवाना भीखणजी को घरना हम जाते अब ही ।
 जा सकते हो, मैं अन्याय न ऐसा कर सकता कब ही ।
 चले गये चुपचाप चाबिया लेकर गलत-बयानी है^{१७} ॥६५॥
 अशन पान की कहा व्यवस्था रूखा सूखा जो मिलता ।
 पांच वर्ष तक नहीं पेट भरती भी रहता दिल खिलता ।
 पूछा प्रश्न किसी ने धूत-गुड मिलता क्या गृह-द्वारो मे ?
 गुरु फरमाते विकता देखा पाली के बाजारो मे^{१८} ।
 घाट साथ मे घी भी वापस लिया पक्ष अति तानी है^{१९} ॥६६॥
 कपड़ा पुस्तक श्रावक जन की नहीं बहुलता दिल धारें ।
 रेजे के खातिर होती थी शिष्य सुगुरु में मनुहारें^{२०} ।
 सूत्र भगवती बहुत वर्ष तक नहीं मिला था पढ़ने को^{२१} ।
 श्रावक भी दो चार सामने आते आगे बढ़ने को ।
 कभी-कभी व्याख्यान निकेवल सुनते साधु सुजानी हैं^{२२} ॥६७॥
 द्वेष-भाव था 'बोलाड़े' मे अशन पान की सकड़ाई ।
 फिर भी एक मास तक ठहरे अधिक गोचरी करवाई ।
 भोजन जल का योग कहो क्या ? है किन्तु न मैं दे पाती ।
 देने से सामायिक करती हुई ननद की गल जाती ।
 ग्यारह सामायिक का कर जो दे यदि भोजन पानी है^{२३} ॥६८॥

दोहा

सन्नी वा सन्नी नहीं ? पृच्छा की निरपाय ।
 मुक्के की देकर चला, उचित न उत्तर न्याय^{२४} ॥४६॥
 सघर्षों का सामना, डटकर किया नितान्त ।
 रहे बहाते शात रस, हुए न कब ही क्लान्त ॥७०॥
 जयमलजी की सामयिक, मानी नहीं सलाह ।
 अतः द्रव्यगुरु-संध की, टूटी शक्ति अयाह^{२५} ॥७१॥
 अगर पुण्य कण-दान मे, तो आज्ञा दें साफ ।
 घरना ब्राह्मण-वर्ग को, क्यों भड़काते आप^{२६} ॥७२॥
 बिना प्रयोजन ही खड़ा, कर लेते उत्पात ।
 गुल्टी कहने ही त्वरित, उल्टी करते बात^{२७} ॥७३॥
 मुह न देखू भिक्षु का, बोला घर कर द्वेष ।
 कुछ दिन से अन्धा हुआ, पड़ा भोगना क्लेश^{२८} ॥७४॥

१. कष्ट सहिष्णुता

बोहा

प्रमुग्य-प्रमुग्य गुण भिक्षु के, नून नून कर्म बगान ।
सह योकिनक दृष्टान्त भी, स्पर्णं गुग्गुलि उगमान ॥६०॥

दृश्य

कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ।
कहलाता मसार में वह बीरों का यीर ।
वह बीरों का योग और बाधाएं देना ।
वन धरणी सम धीर विजय-नक्षत्री घर लेता ।
लाखा लोगो के लिए बनाता एक नजीर ।
कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ॥६१॥
हीरा चढ़कर शाण पर पाता नमक अपार ।
सोना तप कर आव में लाता अधिक निघार ।
लाता अधिक निघार दूध का दही बनाता ।
मन्यन में पय सार रूप में बाहर आता ।
सब कुछ महने से बना सिन्धु बड़ा गंभीर ।
कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ॥६२॥
वीर पृष्ठ इतिहास के आप लीजिए देख ।
बलिदानों के सैकड़ों लिपे वहां पर लेख ।
लिपे वहां पर तेंख रमे जो पौरुष रस में ।
कड़ी जोड़ दी एक भिक्षु स्वामी ने उसमें ।
लाता उनकी सामने तेजस्वी - तस्वीर ।
कष्टों का जो सामना करता नर कोटीर ॥६३॥

रामायण-छंद

छोटी-छोटी जगह ठहरने को मिलती थी कुटिकाकार ।
और स्थान का परिवर्तन भी करना पड़ता कितनी बार ।
शहर उदयपुर से विहरण का नृपादेश वे सुन पाये ।
नायद्वारा से पावस के मध्य विहारी बन पाये ।
कष्ट अनेकों पढ़ने पर भी छाती तो मरदानी है ॥६४॥

कहा—किराये दो दुकान को, बोला मालिक मुख से साफ ।
 दे न सकूंगा अभी हाट को जड दो यदि रुपये से आप" ।
 करो खाना भीखणजी को बरना हम जाते अब ही ।
 जा सकते हो, मैं अन्याय न ऐसा कर सकता कब ही ।
 चले गये चुपचाप चावियां लेकर गलत-बयानी है" ॥६५॥
 अशन पान को कहा व्यवस्था रूखा सुखा जो मिलता ।
 पाच वर्ष तक नहीं पेट भरतो भी रहता दिल खिलता ।
 पूछा प्रश्न किसी ने घृत-गुड मिलता क्या गृह-द्वारो मे ?
 गुरु फरमाते बिकता देखा पाली के बाजारो मे" ।
 घाट साथ में घो भी वापस लिया पक्ष अति तानी है" ॥६६॥
 कपड़ा पुस्तक श्रावक जन की नहीं बहुलता दिल धारें ।
 रेजे के खातिर होती थी शिष्य सुगुरु मे मनुहारें" ।
 सूत्र भगवती बहुत वर्ष तक नहीं मिला था पढ़ने को" ।
 श्रावक भी दो चार सामने आते आगे बढ़ने को ।
 कभी-कभी व्याख्यान निकेल मुनते साधु सुज्ञानी है" ॥६७॥
 द्वेप-भाव था 'बोलाड़े' मे अशन पान को सकड़ाई ।
 फिर भी एक मास तक ठहरे अधिक मोचरी करवाई ।
 भोजन जल का योग कहो क्या ? है किन्तु न मैं दे पाती ।
 देने से सामायिक करती हुई ननद की गल जाती ।
 ग्यारह सामायिक का कर जो दे यदि भोजन पानी है" ॥६८॥

दोहा

सन्नी वा सन्नी नहीं ? पृच्छा की निरपाय ।
 मुक्के की देकर चला, उचित न उत्तर न्याय" ॥४६॥
 सधर्यों का सामना, डटकर किया नितान्त ।
 रहे बहाते शात रस, हुए न कब ही क्लान्त ॥७०॥
 जयमलजी की सामयिक, मानी नहीं सलाह ।
 अतः द्रव्यगुरु-संघ की, टूटी शक्ति अथाह" ॥७१॥
 अगर पुण्य कण-दान मे, तो आज्ञा दें साफ ।
 बरना ब्राह्मण-वर्ग को, क्यों भड़काते आप" ॥७२॥
 बिना प्रयोजन ही खड़ा, कर लेते उत्पात ।
 मुल्टी कहते ही त्वरित, उल्टी करते बात" ॥७३॥
 मुह न देखू भिक्षु का, बोला घर कर द्वेप ।
 कुछ दिन से अन्धा हुआ, पड़ा भोगना क्लेश" ॥७४॥

अब कैसे कहने लगे, तुम स्थानक में दीप ।
 रावण के सामनवत्, वैसा मुख पर घोष" ॥७५॥
 विग्रह बढ़ता देख के, मौन हुए गुरु दक्ष ।
 'शिव' प्रधान की डाट में, दया विपक्षी पक्ष" ॥७६॥
 धैर्य वृक्ष के फल मधुर, विजयी आप भदन्त !
 मथा राव रुघनाथ का, बना जवाई अन्त" ॥७७॥

रामायण-छंद

ग्राम-ग्राम में ऐसे सज्जन लोगपथ भी घर-घर में ।
 बदोषस्त किये कितने ही द्वेष भरा है नर-नर में ।
 देव भावन दूषित जन की एक धार आशा टूटी ।
 मुदिरुल चलना मार्ग वीर का प्रबल मोह की है घूटी ।
 कहां आत्म-कल्याण तपोव्रत से जो दृढ़ कुर्बानी है ॥७८॥

दोहा

को चालू आतापना, तप एकान्तर संग ।
 ध्यान मौन स्वाध्याय में, हुए एक रस रंग" ॥७९॥

रामायण-छंद

गमय बिनाया कितना प्रभु ने हृष्टमना एकान्तर कर ।
 प्रीप्सवान की कड़ी धूप में तप्त धूल पर भी सोकर ।
 देव सुकाय हुआ जन-जन का सत्य माधना वीरों में ।
 धमक स्वर्ण की बढ़नी चाहे, गूब तपाओ पोरों में ।
 उद्यत हुए परोपकार हित मानी मुनि मुग-बाणी है" ॥८०॥

२. धर्म प्रचारक

सय—मोक्षगती स्वामी हो शासन..."

भिभू गनी ने जिन शासन की महिमा गूब बढ़ाई जो ।
 बर-बर धर्म-प्रचार ज्ञान की ज्योति जलाई जो ॥ध्रुव०॥
 अध्यात्मिक उपदेश गविन ने अन्तर प्यास बुझाई जो ।
 नव दृष्टान्त युक्ति में मान्विक नींव जमाई जो ॥भिभू०॥८१॥
 दया दान उपागमिक की गूढ़ रहस्य समझाई जो ।
 थड़ा भ्रम-महाराजों की छान गलाई जो ॥भिभू०॥८२॥

जगह-जगह उपकार अधिक कर विजय-ध्वजा फहराई जी ।
 साधु - श्रावकों की सेना मजबूत बनाई जी ॥भिक्षु" ८३॥
 त्यागमूर्ति सद्गुण-संतति ने सत्य-श्रान्ति दिखलाई जी ।
 श्रान्ति मिटाकर जन - जन की गुत्थी सुलझाई जी ॥भिक्षु" ८४॥
 आये ले अवतार यहां पर शक्ति अलौकिक पाई जी ।
 अलग दूध पानी कर रस की नदी बहाई जी ॥भिक्षु" ८५॥

दोहा

व्याख्या शैली थी सरस, सार भरा व्याख्यान ।
 जिससे जन-जन का सहज, होता केन्द्रित ध्यान ॥८६॥
 वही बात व्याख्यान है, कथन-कथन में फर्क ।
 श्रोताओं को लग गया, शालिभद्र मधुपर्क" ॥८७॥
 व्यक्ति-व्यक्ति को प्रेरणा, देते यथा प्रसंग ।
 ऐसा स्नेह उडेलते, चढ़ जाता था रंग" ॥८८॥
 फना वर्ष छत्तीस से, उद्यम का सहकार ।
 वृद्धि उत्तरोत्तर हुई, वंकचूल अनुसार" ॥८९॥

३. साहित्यकार

छप्पय

. माध्यम धर्म-प्रचार का प्रमुख एक साहित्य ।
 लाता स्थायी रूप से वह नूतन लालित्य ।
 वह नूतन लालित्य व्यक्ति बहु लाभ उठाते ।
 युग - युग तक इतिहास पृष्ठ दुहराते जाते ।
 ज्ञान - रश्मियों के लिए तेजस्वी आदित्य ।
 माध्यम धर्म-प्रचार का प्रमुख एक साहित्य ॥९०॥

दोहा

स्रष्टा सत् साहित्य के, मुधि जन हुए अनेक ।
 पर मेधावी भिक्षु तो अपनी छवि के एक ॥९१॥

रामायण-छंद

राजस्यानी भाषा में साहित्य मुशोभित है सारा ।
 सुंदर सरल सहज भावों की चती बहा अविरल धारा ।

पद अद्वितीय हजार प्राप्ति, तिनो भूतभूत प्रतियो।
‘भिक्षु ग्रन्थ गन्तार’ में है मण्डित मारी कृतिरी” ॥६२॥

दोहा

रचना करने जोधनर, भग्ने भाव गगन।
मुनकर ग्रिने प्रतापजो, रनिन नय तगान” ॥६०॥

सोरठा

करता कुछ उल्लेख, अगो का साहित्य के।
ओर लोजिए देख, मूची ग्रन्थों की बड़ी” ॥६४॥

४. गुण प्राप्ति

दोहा

ग्राहक गुण के भिक्षु थे, पुरपोतम गमरुक्ष।
जिससे वे बढ़ने गये, पिछट गया प्रतिपक्ष ॥६५॥

रामायण-छंद

बोला सज्जन एक तुम्हारे मुख-दर्शन से नरक-गमन।
हस बोले मैंने तेरा मुख देखा है मम स्वर्ग-गमन”।
कहा किसी ने लोग आपके काढ़ रहे अवगुण भारी।
त्याग-तपस्या में मैं कितने, कितने वे मम उपकारी।
अवगुण में भी गुण लेना यह गुणिजन की अह्वानी है” ॥६६॥
मेरे शिर पर ठोला भार, तुम क्यों कृपित हुए इस पर।
बिना बजाए एक टके की हड़िया भी कब लेता नर”।
दोष निकाले भिक्षुराज में मध्या सो ऊपर उनमठ।
रखे सुरक्षित एक पत्र में लिखकर प्रभुवर ने क्षटपट।
एक-एक से उग्र उपनर चले दूर तूफानी हैं” ॥६७॥
एक यहिन ने निज दूकान में रहने को इन्कार किया।
छप्प-भाव में लहर हृदय में आये पर उपकार किया”।
पर्युषण में इन्द्रध्वज सह मजधज सम्मुख हुए खड़े।
गुरु बोले मन रोंको इनको हम भी ‘जिन’ के माधु बड़े।
गुण-प्राप्ति देख भिक्षु की विम्बित प्राणी-प्राणी है” ॥६८॥

६ बुद्धि-वित्प्राणता

रामायण-छंद

ओत्पत्तिही यदि भिन्न की वस्तुजान की निशानी ।
आगम अये यथायं हिमे हैं जगो करो केवलजानी ।
तात्कालिक मग्नित्त उपज मे तरने पत्थर पानी में ।
प्रदत्त जवाब मे भाव भरे थे नई सेना वाणी में ।
चुम्बक रूप नमूना देगो ताने तरण जगानी है ॥१०५॥

बोहा

गुह-पद्म भावार्थ - दत्त, मगे हुए कंठस्थ ।
बिना पढ़े व्याकरण ही, सींचा गार प्रशस्त ॥१०६॥

रामायण-छंद

'कयरे मगे अकप्राया' का गही अये बतलाया है ।
पंडित-मानी एक व्यस्ति का अह दूर हो पाया है" ।
एक जाटिनी बोली—घोवन देना महंगी घेती है ।
भौ को घास खिलाकर वापस बत बहिन क्या लेती है ?
वात समझ में आते ही बहुराया प्रारुक्त पानी है" ॥१०७॥
इनमे साधु-असाधु कौन हैं आप बताए गणना कर ?
देखो तुम में ज्ञानोज्जन से, खोलू आये आभ्यतर" ।
देता वस्त्र, न साधु मानता लाभ भुझे क्या मिल पाया ।
घायी मिथी विष समझा तो क्या वह मानव मर पाया ?
कभी ज्ञान की, शुद्ध दान मे कभी न होती हानी है" ॥१०८॥
एक बहन ने कहा लाभ दू भेंट बियाये जब प्रभुवर !
कय वह भेंट बियाये कय हम आये समाचार सुनकर" ।
माय - भेंट के आगे ज्यादा चारा हो तो ओगाला ।
'दादा' तू तो ज्ञान हमारा चारा, क्यों मुरझित लाला" ।
भोले बालकवत् चर्चा मे करते से मस्तानी हैं" ॥१०९॥
श्रद्धा जमी हृदय मे तो भी हलचल है अरमानों में ।
पक्व-अपक्व परीक्षा होनी पावल के दो दानों में" ।

समता तत्त्व तथापि जानकर फिर गुरु का शिरसा मृगा ।
 आगे गुनी बघाई दुगा पर पयो में पूछूंगा" ।
 क्यापनीय है बड़ि बही जो कम पीनने पाणी है" ॥११०॥
 पके साधु को बिठा महज गाड़ी में साना बैठा है ?
 गाड़ी के बंदने गर्भ पर यदि लाये तो कैसा है ?
 भीखण की थड़ा लेने में बनी यहन यह यदि विधवा ।
 तू भीखण की निन्दा करती फिर भी क्यों न रही सधवा" ।
 लगे डामवत् थड़ा त्याग न बापग लेते प्राणी है" ॥१११॥
 हरियाली तो घाने घानिर ही ईश्वर ने निपजाई" ।
 भय गिह का तुम्हें बनाया क्यों तू भय घाता भाई ।
 आप इतर मुनि हियमिल करके क्यों न एक हो जाते हैं ।
 थड़ाचार विचार मिलन में समोगी बन पाते हैं ।
 पृथक् जानि की परम्परा में मूल पृथक्ता मानी है" ॥११२॥
 गण में पृथक् तिलोक आदि मिल अपना पथ चलाए तो ?
 करामान इतनी होनी तो गण को तजकर जाए क्यों ?
 पिता-पितामह-ज्ञान यथा करते भाटो के पोयो से ।
 भूत भविष्य काल की बातें कहने हम सिद्धान्तो मे" ।
 कारीगर मुनि अल्प अधिक पापाण तुल्य भवि-प्राणो है" ॥११३॥
 नही मानते साधु जिन्हें क्यों साधु नाम से बतलाते ?
 काढा प्रथम दिवाला फिर भी शाह व्यक्ति वे कहनाते" ।
 नहीं तीन को पूरा भोजन कैसे अष्टाविंशति को ?
 नहीं द्वारका में 'ढठण' को मिलता सब श्रुति-सतति को" ।
 पात्र दान को कला सिखाई देय पात्र में पानी है" ॥११४॥

गीतक-छन्द

'साम' 'राम' समान आकृति के सहोदर मूल से ।
 वन्दना में गोल पड़ता घेतसी के भूल से ।
 करो पहले घेतसी को वन्दना तुम रामजी !
 भिदु की नव युक्ति में खिल उठे सन्त तमामजी" ॥११५॥
 जोड़ते क्यों आप इतने गीतिकाव छन्द हैं ?
 जोड़ता वह नन्द प्रिय वा तोड़ता वह नन्द है" ?
 सात देने एक गिनते अर्थ क्या इनका कहें ?
 सात देते हैं सुपारी एक साता गिन रहे" ॥११६॥

रामायण-छन्द

मिश्र पुण्य श्रद्धा का गडन करते क्रमशः सस्कृति से ।
 पकड़े एक जाट ने चारों चोरों को जैसे मति से" ।
 बात न्याय की नहीं मानता करता ननुनच स्वाग्रह से ।
 वाद्य बजाकर चतुर गेठवत् वचता मानव विग्रह से" ।
 पैरो में सिर देते क्यों चोके हित आनाकानी है" ॥११७॥
 निद्रा आती क्या आसोजी ? नहीं-नहीं महाराज ! नहीं ।
 जीते तो हो क्या आसोजी ? नहीं-नहीं महाराज ! नहीं" ।
 छोना शिश के कर से पत्थर उसका क्या फल दो उत्तर ?
 बल-प्रयोग में धर्म नहीं है आया उसके कर पत्थर" ।
 प्राप्तिचित्त मयाविधि होता किन्तु न स्वेच्छादानी है" ॥११८॥
 स्वेच्छा पावम किया साध्वियों ने क्या दोगे दण्ड प्रहार !
 प्रथम दण्ड तो दिया ग्राम ने फिर मेरा भी जरा विचार" ।
 थावक दुष्ट तुम्हारे ऐसे नहीं खोलते गल-फांसी ।
 बात समुच्चय वारने के कुछ बनी प्रथम तुम अभ्यासी ।
 नाम किसी का नेने में बढ जाती तानातानी है" ॥११९॥

गीतक-छन्द

तीर्थयात्रा अगर आबू की न की तो व्यर्थ सब ।
 की न तुमने भी अभी तक विफल तेरा जन्म सब" ।
 अमरु साधु असाधु पर को, दूसरे कहते उन्हें ।
 मन्थ दोनों है कथन ने कहे दोषी हम किन्हे" ॥१२०॥

दोहा

'बहने हमें अमाधु जो' ठीक न वह, सब ठीक ।
 मैं क्या कहता निगुन में, तुम सब हुए शरीक" ॥१२१॥
 पानी के टपके गिरे, की गुरु में फरियाद ।
 रस्मी में जा माप लो, होगा शान्त विवाद" ॥१२२॥
 सोनुपना के विषय में, न करो खीचातान ।
 तुम दोनों परिण्याय कर, दे दो सही प्रमाण" ॥१२३॥

रामायण-छन्द

कौन-कौन मुनि सात पदों के धारक शासन सतति मे ।
 सातों पद का करू कार्य मैं, सप्रति जिन अनुपस्थिति में"
 किये आपने क्या धाली के दो टुकड़े ? तब प्रभु बोले ।
 बारह आने करें प्रथम ही इतने हम न कभी भोले ।
 घड़े घड़ाये उत्तर देने रखने मूह जवानो है"
 ॥१२४॥

७. अवसर के ज्ञाता

सय—महावीर प्रभु के...

अवसर के अच्छे ज्ञाता थे वे भिक्षु भिक्षुगण अधिकारी ।
 प्रश्नों के उत्तरदाता थे वे जनमन को विस्मयकारी ॥ध्रुव०॥
 अवसर से विद्या-यत्न-वाणी, अवसर से मानव अगवान्नी ।
 चातुर वे जग में समझ रहे हैं अवसर को जो नर-नारी ॥१२५॥
 वह मधुर 'लापसी' है कितनी ? उसमें गुड मात्रा है जितनी ।
 खुश हो बोला भीखण ने तो दिया जवाब बड़ा भारी"
 ॥१२६॥
 हरिगढ़ में अन्यमती बोले, मोदक के पात्र सभी खोलें ।
 अत्याग्रह से शोली खोली, जन टोली बिखर गई सारी"
 ॥१२७॥
 कितने घोड़े के पैर कहो, दो उत्तर झट मत मौन रहो ।
 पूछे 'कानखजूरा' के तो सुन फूला वह सुविचारी"
 ॥१२८॥
 मैं दान असयत दू न कभी, तुम त्याग कराओ मुझे अभी ।
 हमें भाड़ने खातिर करता, वा दिल विपुल विरति धारी"
 ॥१२९॥

दोहा

कितने कहो तमुत्तरी—मे 'ता' 'त' हैं वर्ण ?
 'का' 'क' 'खा' 'ख' भगवती—में कितने हैं वर्ण"
 ॥१३०॥
 कितनी तुम हो भूतिया ? हम मुनि तीन पुनीत ।
 पूछो किस ही भाव से, समय गया वह बीत"
 ॥१३१॥

रामायण-छन्द

विजयसिंहजी को क्या पुर में हुआ पडह फिरवाने में ?
 बिना ज्ञान के लाभ न कुछ भी चर्चा बड़ी चलाने में"
 ॥१३२॥

पडिमाधारी भाषा तो देने के यत्न करते रहते।
 हाथी भी न दियाई देते अथ कंधारा को धरते।
 अथवा से न, यत्नो में भाषणा जाती पहिचानी है" ॥१३२॥
 सर्व पाप का त्याग किया क्या उम्र भाषण को देने में ?
 धर्म वस्तुतः बना साधु यह पाप न लिखित लेने में"।
 कहो प्राण पर्याप्ति जीव वा है निजोत्र चर्चा चर्चा।
 तनातनी हो गई परस्पर, शान बिना न फलित चर्चा"।
 मत उलझो शब्दों में श्रमण व यति, दोनों गम स्थानी हैं" ॥१३३॥
 अन्य जाति में श्रमण जाते नहीं गौचरी क्या कारण ?
 द्वेष भाव का प्रकट नमूना देय हेम ! तू जा सत्दाण"।
 'धम्मो मगल' आप मुनाओ, यह न अधम्मो मगल है।
 लक्ष्य निजंरा का तो उत्तम इतर भावना निष्कल है।
 च्यार शरण की स्मृति हित मुनना मगल पाठ विधानी है" ॥१३४॥
 बातें कही विषम यतिजी ने उत्तर गुरु ने नहीं दिया।
 क्या मेरी जंच गई मान्यता ? नहीं मनोगत भाव किया"।
 उत्तर देना योग्य व्यक्ति को नहीं इतर को लाभप्रद।
 मलिन पात्र में दुकन्दार भी नहीं तोलता सर्प विशद।
 अवसरज्ञ के पास निरुत्तर इन्द्र और इन्द्राणी है" ॥१३५॥

८ सत्य न्याय निष्ठा

रामायण-छन्द

सत्य न्याय की सखल मच पर डटे पड़े गुरु बेपरवाह।
 साधु सच में काम वा ज्यादा किन्तु न हो पंडित धत-वाह"।
 भणनहार कहलाने वाले निकल गए तो भीति नहीं।
 पांच साध्वियों को सह छोड़ी अनावार से प्रीति नहीं"।
 लोहपुरुष के वज्र हृदय में जरा नहीं नादानी है ॥१३६॥
 कटु पद है यह स्वामिन् ! इसमें कहा वीर प्रभु भूले हैं।
 शिष्य ! सत्य है तो भय किसका, झूठ पैर चम्बूले है"।
 दोष करेंगे देव आपको इतने जिन्हें निषेध रहे।
 कष्ट साधुओं को यदि दे तो कौन इन्द्र का वज्र" सहे।
 कटु औपधवन् कड़े हेतु है, (क्योंकि) मिथ्या उबर तूफानी" है ॥१३७॥
 चंदर यड़ी हेम की विधि से, गुरु ने माप दिखाई झट।
 चारोगुल कपड़े हित क्या हम कर देंगे समय चोपट"।

मही धर्मों के लिये जाने बड़ी बनावे है ।
 काम परे जब गुरु-गुरु मगने की मगर भावे" है ।
 हम बालिक के लिये उद्योगिता बहने प्रकट बहानी" है ॥१३८॥
 मृग धरे की दास दिलाई, उद्योग मृग मदन दिया ।
 'अवगुण देव रहा बसा मेरे वा मेरे' मृग मदन दिया" ।
 बड़ी बहिन की आज्ञा मे भगवती का बेटा पार दिया ।
 बहिन-गिरि में भग मे पार आज्ञा का मकर" दिया ।
 विगनादिक पर गुरु मगई, जब मो-गुरु" जानी है ॥१३९॥
 मरे उद्योग मे हम प्रभव । गिरि में मध्याह्न दिया ।
 बहाने-बसी कुमा-गुरु ने एक अवन लर राग दिया ।
 बहाने मर ? भिन्न मर बोले—तेगा बहना विषय वचन ।
 बहाने बहाने मे मो-गुरु, मो-गुरु मे राग बहाने" ।
 दुष्ट-द्वन्द्व पट मया गो मही गुरु अगुहानी" है ॥१४०॥
 दोषा मेने हेम विन्नु है ध्यान तम्यारु का इनके ।
 रे ! विवाह क्या बिना बापरी पाती रहने है विनके" ।
 नहीं गिरि-द्वन्द्व ठीकी रोटी, गम विभाग कर गुलनामक ।
 गम अवन, ठीकी रोटी पर गगा योगुनी का मो-गुरु" ।
 नहीं बहिन पोता बहाने तेगा मयत बहानी है" ॥१४१॥

नवीन-सुख

जग मे धर्म न पूजा जाता पर धर्म मदा पूजा जाती ।
 पूनम पादन सांग पूजा पर दूज पाद दुनियां गानी ।
 जाना ध्यान न मग उक्ति में धर्मोक्ति गीतनी मन को मट ।
 गहिर्य बहाने का धमन्तार गुग भिन्न वचन मे मिला प्रकट ॥१४२॥
 जगू गांधी ममता जगमे बहू दूधर जनों की कष्ट हुआ ।
 मुनावन 'मनमो' हृदय मे ता मयमे ज्यादा दुष्ट हुआ ।
 जब विदेह मे गुरु मृग की आती है सब चिन्तित परिजन ।
 मेकिन लक्ष्मी एक पहननी बहू बहन बंठ के एकात्मन" ॥१४३॥
 दे रहे दूधर ध्याम्यान आप कर रहे विरोध उधर कुछ जन ।
 आदन की लाचारी है यह पर नहीं जान उनको किचन ।
 गुला यथा भौकता झालर बजने पर जैसे उच्चैःश्रव ।
 पर न ममता बहू विवाहकी अथवा परमय मे पहुँचा" नर ॥१४४॥
 प्रवचन सुनने कुछ न अधाने लगती कुछ को क्षण एक घड़ी ।
 जैसे सुख की रजनी छोटी दुष्ट की लगती है बहुत बड़ी" ।

मुनते हो व्याख्यान भिक्षु का दाहा तुमको लग जायेगा ।
दादा नहीं 'टूठ' को लगता उम पर न असर हो पायेगा" ॥१४५॥

दोहा

शका क्या निशक यह, भोजन लिया अशुद्ध ।
उत्तर दिया तडाक में, गुरुवर ने अविरुद्ध" ॥१४६॥

८. सिद्ध पुरुष

सिद्ध पुरुष के सिद्ध वचन थे कहा एक दिन बातों में ।
उदयराम की मृत्यु खेतसी । होगी तेरे हाथों" में ।
मिलना कठिन निलोक । मूरिपद, मूरदाम पद मिल सकता ।
छोड़ दिया साथी ने आग्निर जगल में कर निर्दयता" ।
कम आस्था से सम्यग् मणि का रहना क्या आसानी" है ॥१४७॥
एक व्यक्ति ने कहा व्यग में हेतु लगाकर बंदर का ।
थोड़े दिन में साफ हो गया, वचन मिल गया गुरुवर" का ।
कहा भिक्षु ने अग्रयराम की 'आत्मा वश' विश्वास नहीं ।
गणवाहर हो वापस आये किया मुगुरु का वाक्य" सही ।
अति ओपग्र में नजर गवाई हृत्—कलियां अलमानी" है ॥१४८॥
सावत्सर दिन क्षमायाचना करने गया कपूरा है ।
प्रत्युत क्षण्ड लेकर आया मिला भिक्षु वच पूरा" है ।
भोजन में उपकार हुआ अति, कहते बहुजन हिलमिल है ।
पुर बाहर की खेती लोगों ! सावित रहनी मुश्किल" है ।
आश्चर्य मुनि-बाणी मिलती यह लोकोक्ति पुरानी" है ॥१४९॥

१०. जिन जाणो पर कटिबद्धता

मय—प्रभु पार्वं देव...

अग्नि देव की आज्ञा, जीवन धन प्राण है ।
इसमें बद्धर क्या कोई, धन गवता प्राण है ॥ध्रुव॥
वीरराग नीचकर—वाणी अविकार है २ ।
विज्ञान ज्ञान सब उममें, उममें क्याण है । अग्नि... ॥१५०॥
श्रेय मार्ग सर्वोत्तम पुरुषोत्तम दृष्टि में २ ।
यथा ज्ञान-दर्शन मत् तप-चरण प्रधान है ॥१५१॥

सवर धर्म निजरा, सर्वज्ञ विधान में २।
 तीन योग शुभ लेश्या, निर्मल दो ध्यान है ॥१२२॥
 दया दान पारमार्थिक, है धार्मिक-कोटि में २।
 गुरुदेव धर्म असली की, करना पहचान है ॥१२३॥
 सर्व-देश-व्रत सत्पथ, आर्हत उपदेश में २।
 सर्व मूल—उत्तर गुण गुण की सोपान है ॥१२४॥
 शरण चार हैं सहचर, परमेष्ठी पंच वा २।
 इत्यादिक धर्म-क्रिया से, जीवन उत्थान है ॥१२५॥
 इतर सभी कामो में, आदेश न ईश का २।
 यह तत्त्व भिक्षु ने खोजा, कर लिया प्रमान है ॥१२६॥

सय—म्हारे घर पधारो...

सच्ची जिनवर वाणी जी क, सच्ची जिनवर
 पालन कर-कर तरते जो हलुकर्मा
 राजमार्ग है वीतराग का कब ही नहीं
 पाखंडों की पगडंडी का पता नहीं चम
 व्रत में धर्म, नहीं अव्रत में त्याग भोग
 धर्म अहिंसा दया सही है, हिंसा अध
 धर्म अमूल्य, मूल्य में मिलता नहीं
 है उपदेश धर्म पर बल में नहीं
 'राग' असंयम-जीवन-बाछा, द्वेष
 धर्म सही अरिहत देव का, जो
 शिशु के शिर पर चपत लगाना, द्वेष
 मोदक देना राग, समझ में बिरला
 आज्ञा में जिन कथित धर्म है किन्तु
 साहुकार तो पता बताता पगड़ी का
 विधिवत् भोजन करना भुनि का जिन
 बुरा काम कहते मुख से तो करते
 नदी उत्तरना फूल चढ़ाना कहते
 तत्व-दृष्टि से यदि सोचें तो लाभ
 देवालय बयो पूर्वकाल में धर्म
 धन होने से हेया-देय वस्तु का
 (यदि) तार मात्र कपड़ा रखने से
 (तो) भोजन-जल सेवन से खंडित

कठिन क्रिया हो रखे न कपड़ा, पैर आपके पकड़ें।
होने से विश्वास 'दिगम्बर' का छोड़ेंगे कपड़े" ॥१६७॥
हमें मान्य जो जैसी प्रतिमा सोने-चादी वाली।
निर्गुण को गुण कभी न कहते हैं यह सत्य प्रणाली" ॥१६८॥

दोहा

पुस्तक पत्र न ज्ञान है, और न अक्षर ज्ञान।
करता है नर अर्थ की, उनसे तो पहचान ॥१६९॥
चेतन की आशातना, होती है प्रत्यक्ष।
किन्तु नहीं जड़ द्रव्य की, मर्म समझते दक्ष" ॥१७०॥

गीतक-छंद

खोलना वा बन्द करना लिए मुनियों के नहीं।
साध्वियों के लिए आज्ञा है किवाड़ों की सही।
ग्राम सोजत में सुगुरु ने उपाश्रय को खोलकर।
सात सतियों को उतारा कल्प मौलिक समझकर" ॥१६५॥
कहा चूहों को छुड़ाओ बिल्लियों को दूर कर।
गूत्र आवश्यक बिलोको लिया उसमें स्पष्टतर।
भिन्न होने बाद का प्रक्षिप्त है यह अर्थ तो।
नहीं प्राप्त न मूल प्रति में देपिए कर शतं तो" ॥१७२॥

दोहा

वन्दन स्वीकृति में प्रभो ! क्यों कहते 'जी' आप ?
'जीयमेवदेवा' प्रमुख-की आगम में छाप" ॥१७३॥
बरनी मिथ्यादृष्टि की, दाना-दिक जो शुद्ध।
जिन आज्ञा में है सही, स्वयं कह गए युद्ध" ॥१७४॥

११. पाप-भीरता

दोहा

पाप-भीरता थी बड़ी, पग-पग पर अनि ध्यान।
मह आ-माथी गुरु का, सक्षण गर्व प्रधान ॥१७५॥

नवीन-रुद्र

पाश्चात्य की अवध-त्रिया को जो नहीं छोड़ती तु तेरी ।
तो रोटी हित शुद्ध त्रिया को कैसे मैं छोड़ूंगा मेरी ।
कपड़ा से लो, मोल लिया यह, जो नहीं बल्य तो अन्य ग्रहो ।
उनको हमको तुल्य कहेंगे, पर तार निकाले कोन कहो । ॥१७६॥
घोनी विहकी कल्पनोय यह, क्यों हेम । कर रहा तू मगप ।
त्रिजासा मे पूछ रहा हूं, मेरा न दूसरा है आशय ।
दर्जी के घर मे कौन साधु गुड लाया ? गुन इनकार सभी ।
से सबको उसके घर पहुँचे सब निकल गया निष्कार्य सभी । ॥१७७॥
बेला किया सापगी हित क्या ? हा दिन मे तो कुछ-कुछ आई ।
मेना न दूसरे दिवस मिटाई 'आरे' मे जो भी बच पाई ।
दस रुपया का खर्च हुआ है पैदा टोटल में उतनी ही ।
पर घेनी में गुल्ना ! हिसा हो गई निरर्थक किननी ही । ॥१७८॥

१२. यास्तविक दृष्टि

रामायण-रुद्र

नाम साधु पर नहीं साधुता यहां न परभव मे हितकर ।
कान कटाये क्या लोमड़ी ने चौघरपन मे फंमकर ।
नूतन दीशा लो कद्यों ने किन्तु न सत् थड़ा आई ।
राव सिरोही वाला अद्भुत बना पालघा वह भाई ।
बिना साधना फलित न कुछ भी ज्यों कृत्रिम गुरुआनी है । ॥१७९॥
रोटी हिन जो वेप पहनता वह क्या सयम को पाले ।
चढ़ी चिता पर देवी कैसे रोग नेत्ररे का गाले ।
नहीं त्रिया मे हमे प्रयोजन करे वेप को ही वन्दन ।
ऊन भेड़ की वण कपास की, क्यों न करें फिर उन्हे नमन ।
एक महाप्रन मे पांचों की खडित मच्छरदानी है । ॥१८०॥
विषद् दशा में अप्रागुक्त भी लाभ बता मुनि ले लेते ।
बड़ी शर्म की बात वीर हो रण से पग पीछे देते ।
नही शुद्ध संयम क्या बनता केवल बाह्य त्रियाओ मे ।
लाखों का जो पडा दिवाना मिटता कैसे पैसों से ।
खडित तैले मे एकासन-तप सम्यग् फलदानी है । ॥१८१॥

मोदक तब पर मामूली में मानव दिन चढ़ाने है।
 अन्नध्वनि में पड़ितजी भी आभा थी तो पाते हैं।
 कुशल निमोह दिगाने दुःखा, फट गया है अन्दर में।
 गुलो पोल जब 'तू' लोलुप तू लोलुप' कहा परम्पर में।
 'पूरा समय अभी न पलना' दुर्वल जन की वाणी है। ॥१८२॥

बोहा

तेला तो दिन तीन का, नाहे पंचम काल।
 घाने से कण एक भी, टूटेंगा सरकाल। ॥१८३॥

गीतक छन्द

साधना ही साधु का शृंगार संयम देह है।
 वेप भूषा सहज सम्पत्ति सम्पत्ता का गेह है।
 सहायक वे समय में 'मैं रूप में मुनि के अभी'।
 स्वर्ण बहू रुपया न छूना साधु कुत्रिम बन कभी। ॥१८४॥

बोहा

साधु वेप धारण किया, पर न साधु-आचार।
 घर स्कंधी पर बोल वे, भटक रहे बेकार ॥१८५॥
 गुरु युत यदि गण विकृत हो, तो बघार हर स्थान।
 फट जाए आकाश तो, साधे कौन मुझान ॥१८६॥
 बजा लीजिए मन चहे, यहा पोल के दोल।
 राज्य न 'पोपा' का वहां, नहीं चलेगा गोल ॥१८७॥
 रस-लोलुप मुनि ताकता, अच्छे-अच्छे गेह।
 दोड़ा जाता समय पर, लेने रस अवलेह ॥१८८॥
 सूत्र अर्थ समझे बिना, कहते उल्टी बात।
 गालों के गोले बड़े, चला रहे दिन रात ॥१८९॥
 वर्तमान में जो दशा, साधु संघ की दृष्ट।
 चित्रण उसका मिश्रु के, शब्दों में उत्कृष्ट ॥१९०॥

१३. गुरु-परीक्षा

नषीन-छन्द

गुरु के बिना न देव, धर्म की वास्तविक जांच हो पाती है।
 समता में ही मध्य छिद्र के, पलड़ों की काण मिटाती है ॥

दोनों सहृद बिना परीक्षा विषमय निषिध घाने दानता ।
 होने मे साधु-असाधु मुनिर्णय भिर समशदर नर का मुक्ता" ॥१६१॥
 परपो मुगुर-मुगुर की पहले बन शान-नक्ष से चक्षुष्मान् ।
 होने पृथक् काय मणि आगिर पड़ नजर जोहरो की सुनिमान्" ॥
 ताबे के दर्शन अच्छे हैं शरं के तो उममे अच्छे ।
 छोटे शर के प्रभाव में दर्शन कहताने है कच्चे" ॥१६२॥
 सुन्दर जायम बिछो काय पर चारो कोनों पर भार रखा ।
 कोई व्यक्ति भुलावे में आ बैठे तो होता मृगु राखा ।
 भटभूजे के तुल्य मुगुर है है भाड़ सद्गम थड़ा उनकी ।
 अशानो नर बने घरावर वे उन्हें शोक भर चुटकी" ॥१६३॥

होहा

साजी पूटी काष्ठ की, अथवा पत्थर-नाथ ।
 मुगुर-मुगुर के विषय में, की तुलना समभाव" ॥१६४॥

१४. कयनी करनी

रामायण-छन्द

स्यानक रचो हमारे छतिर कहते नहीं, ठहर जाते ।
 नहीं जंवाई हलुआ हित कहते पर गुण होकर घाने" ॥
 जीव बनाते कहते केवल जीव मारने तो छोड़ी ।
 चौकीदार ! आपकी चौकीयम चोरी से मुंह मोड़ो" ॥
 अपनी भाषा नहीं समझने स्वाक्षरवतअज्ञानी है" ॥१६५॥
 मौन रहे सावध दान में अभिप्राय से कह देने ।
 मौनी मुनिवत नहीं मिले तो तीड़ तीड़ केलू लेते" ॥
 स्वयं कपाट खोलते जटते ले न गृहस्थों देता जब ।
 जिसके कर की रोटी खाते हर्ज स्पर्श में है क्या तब" ॥
 पदनी पति का नाम न लेती कहती कर-कर मानी है" ॥१६६॥
 तीन करण हैं तीन योग हैं सम्बन्धित जो इतरेतर ।
 एक भला तो इतर भले हैं एक घुरा तो घुरे इतरे ।
 अपराधी अपराध-सहायक अनुमोदक का एक गणित ।
 नृप ने किये युवक सह फूना और भगेड़ी को दडित ।
 न्याय प्रजा के लिए महिष का बना मुशिता दानी है" ॥१६७॥

मोदक तब पर गामघी में मारा हिा बंटाने है ।
 अन्तर्ध्वेनि मे पदितजी भी आधा पी तो पाते हैं ।
 कुशन निलोक शिरो दुम्ना, कपट रिता है अन्दर में ।
 घुली पोल जय 'तू' तोलुप तू तोलुप' कहा परम्पर में ।
 'पूरा समय अभी न पलता' दुर्वैय जन की वाणी है । ॥१८२॥

बोहा

तेला तो दिन तीन का, चाहे पंचम काल ।
 घाने से कण एक भी, टूटेगा तलाल । ॥१८३॥

गीतक छन्द

साधना ही साधु का शृंगार समय देह है ।
 वेप भूषा सहज गमृति सम्भता का गेह है ।
 सहायक वे समय में 'मैं' रूप में मुनि के अभी ।
 स्वर्ण बहु रुपया न छूना साधु कृत्रिम वन कमी । ॥१८४॥

बोहा

साधु वेप धारण किया, पर न साधु-आचार ।
 घर स्कियों पर बोझ ये, भटक रहे बेकार ॥१८५॥
 गुरुभूत यदि गण विकृत हो, तो वधार हर स्थान ।
 फट जाए आकाश तो, मांघे कौन गुजान ॥१८६॥
 बजा लीजिए मन चहे, यहा पोल के डोल ।
 राज्य न 'पोपा' का बहा, नही चलेगा मोल । ॥१८७॥
 रस-तोलुप मुनि ताकता, अच्छे-अच्छे गेह ।
 दौड़ा जाता समय पर, लेने रस अवलेह । ॥१८८॥
 सूत्र अर्थ ममक्षे बिना, कहते उल्टी बात ।
 गालों के मोले बड़े, चला रहे दिन रात । ॥१८९॥
 वर्तमान में जो दशा, साधु संघ की दृष्ट ।
 चित्रण उमका मिश्रु के, शब्दों में उत्कृष्ट । ॥१९०॥

१३. गुरु-परीक्षा

नवीन-छन्द

गुरु के बिना न देव, धर्म की वास्तविक जांच हो पाती है ।
 समता में ही मध्य छिद्र के, पलकों की काण मिटाती है । ॥१९१॥

दोनों लड़्डू बिना परीक्षा विषमय निर्विष खाते रुकता ।
 होने से साधु-असाधु मुनिर्णय शिर समझदार नर का झुकता" ॥१६१॥
 परबो सुगुरु कुगुरु को पहले बन ज्ञान-चक्षु से चक्षुष्मान् ।
 होते पृथक् कांच भणि आखिर चढ नजर जोहरो की द्युतिमान्" ॥
 तावे के दर्शन अच्छे हैं रुपये के तो उससे अच्छे ।
 छोटे रुपये के प्रभात में दर्शन कहलाते हैं कच्चे" ॥१६२॥
 सुन्दर जाजम बिछी कूष पर चारों कोनों पर भार रखा ।
 कोई व्यक्ति भुलावे में आ बैठे तो होता मृत्यु सखा ।
 भडभूँजे के तुल्य कुगुरु हैं है भाड़ सदृश श्रद्धा उनकी ।
 अज्ञानी नर चने बराबर वे उन्हें झोकते भर चुटकी" ॥१६३॥

दोहा

साजी फूटी काष्ठ की, अथवा पत्थर-नाव ।
 सुगुरु कुगुरु के विषय में, की तुलना समभाव" ॥१६४॥

१४. कथनी करनी

रामायण-छन्द

स्थानक रचो हमारे खतिर कहते नहीं, ठहर जाते ।
 नहीं जवाई हलुआ हित कहते पर खुण होकर खाते" ॥
 जीव बचाते कहते केवल जीव मारने तो छोड़ो ।
 चौकीदार ! आपकी चौकीवस चोरी से मुंह मोड़ो" ॥
 अपनी भाषा नहीं समझते स्वाक्षरवतअज्ञानी है" ॥१६५॥
 मौन रहे सावध दान में अभिप्राय से कह देते ।
 मौनी मुनिवत नहीं मिले तो तोड़ तोड़ केलू लेते" ॥
 स्वयं कपाट खोलते जड़ते ले न गृहस्थी देता जब ।
 जिसके कर की रोटी खाते हर्ज स्पर्श में है क्या तब" ॥
 पत्नी पति का नाम न लेती कहती कर-कर सानी है" ॥१६६॥
 तीन करण हैं तीन योग हैं सम्बन्धित जो इतरेतर ।
 एक भला तो इतर भले हैं एक बुरा तो बुरे इतरे ।
 अपराधी अपराध-सहायक अनुमोदक का एक गणित ।
 नृप ने किये युवक सह फूला और भगेंड़ी को दडित ।
 न्याय प्रजा के लिए महिष का बना मुशिक्षा दानी है" ॥१६७॥

१५. जैसी करनी वैसी भरनी

रामायण-छन्द

अपने कर्म कमाये अब क्या विलापात तुम करते हो ?
कैसे मेह निकलेंगे जब खाद कोष्ठ में भरते हो^१ ।
कर्म भार से जीव नरक में नीचे पतयरवत् जाता ।
हल्केपन से जीव स्वर्ग में ऊँच दाखवत् पहुँचाता^२ ।
तप सयम से ताम्र-कटोरीवत् लघु होता प्राणी है^३ ॥१६८॥
घोर असाता क्यों मुनियों के ? पहले कंका था पापाण ।
सर्व पाप का त्याग किया अब नहीं लगेगा दुःखदवाण^४ ।
सहनशीलता रोगोदम में रखकर विलापात न करे ।
मानों कजंदार कर्मों का कजं बड़ा भारी उतरे^५ ।
बिना प्रदेशों की हलचल के नहीं निर्जरा मानी है^६ ॥१६९॥

१६ जैन-दीक्षा

रामायण-छन्द

काठिन काम जैनी दीक्षा का क्या बातों में जोर पड़े ।
घड़ी धारु से तन में ज्वर कम्पन से रां रां हुए खड़े^१ ।
दीक्षार्थी के आसू आए मोह राग से परिजन के ।
हसी कराए बहु दुलहावत् रोकर पीछे दुलहन के^२ ।
मरी एक मा, मेराणिमा बहु कदा मोह अवसानी है^३ ॥२००॥

दोहा

चौधे गोले की तरह, होता जो भजवत ।
सयम व्रत लेता यही, देता सही सबूत^१ ॥२०१॥

रामायण-छन्द

स्वर्गकार 'ओटा' कुम्भारों 'बीरा' ने सयम धारा ।
टोक न रहने में रुचि उतरी है सयम अमि-व्रत धारा^१ ।
मनेचन-व्रतगन ध्येयस्वर अपछन्दापन ठीक नहीं ।
भारिमात्र हम दोनी कर ले रह करके नजदीक नहीं ।
गुरु बोले हम माय करें तर गहन पत्नी हितानी है^२ ॥२०२॥

टोकम डोसी की शकाएं मिटी थीस छह पत्रों को ।
 गद्गद् स्वर बोला जोडे तो हैं निर्युक्ति सुसूत्रों को ।
 तीर्थकरवत् आप जगत् मे साक्षात् केवलज्ञानी है” ॥२१२॥

दोहा

आया लेकर हृदय मे, शका का अवलेह ।
 गिरा चरण में भिक्षु के, बनकर नि सदेह” ॥२१३॥

२२. योग्यता से असर

दोहा

धान्य सीजते हैं सभी, नहीं ‘कोरडू’ धान ।
 योग्य पुरुष ही समझता, नहीं इतर अनजान ॥२१४॥

रामायण छन्द

सम्पत्की न बिना मति बनता जैसे नग नामक भाई ॥
 मणिया स्वर्णम, धविया मोटी, जब सिद्धान्तों मे आई” ॥
 ‘सम्पत्की को पाप न लगता, कहकर बहकाते जन को ।
 बतलाने से लाल क्रोध में, कैसे समझाए उनको” ॥
 गेहूं दाल समान अवल बिन समझ न पाता प्राणी है” ॥२१५॥
 बोले कुछ जन तार निकालो अयि भीखणजी ! आप जरा ।
 कैसे तार निकालूँ डडा नहीं दीखता दोष-भरा” ॥
 काला वर्तन काली राव व काली निशा अमावस की ।
 खाने और परोसन वाला अंधा निगा रहे किसकी” ॥
 घटी हवा में बैठ चलाती कहलाती न सयानी है” ॥२१६॥

दोहा

मानव बिना विवेक के, कभी न पाता तत्त्व ।
 हठाग्रही बन होश बिन, खोता अपना सत्त्व ॥२१७॥
 जिसके हृदय न आंख है, वह रामभ समकक्ष ।
 पमकर पद के लोभ में, बनता हरि का भक्ष” ॥२१८॥

१६. वर्तमान में सामाजिक

रामायण छन्द

वर्तमान में धन दाता को लाभ हुआ शुभ भागों में ।
मरे चीटिया उसने तो सम्यग् जूझा फिर मुनियों में ।
नियम भग का दोष उगी को नहीं दिखाने वालों को ।
ग्राहक वस्त्र जनाए तो नुकसान जानने वालों को ।
वर्तमान में ही हो जाता प्राणी कर्मशाली है" ॥२०८॥

२०. सम विषम दृष्टि

रामायण छन्द

गुण-प्राप्ति की दृष्टि गुणों पर छिद्रान्वेषी छिद्रों में ।
करते सब तारीफ भवन की पर दुर्जन दुर्ग गुप्तों में ।
ध्यान बिना झुटि बार-बार भी हो जाते छद्मस्थों की ।
किन्तु शुद्ध है नीति व थढ़ा, नहीं स्थापना दोषों की ।
एकम पूनम चन्द्रोपम मुनि श्रेणी में सम-स्थानी है" ॥२०९॥
सम्यग् भी विपरीत दृष्टि में देनी बुरी दिग्राई है ।
वस्तु 'पोलिया' वाले को सब देनी पीत दिग्राई है" ।
साधु समागम से मज्जन गुण दुःप्रित होते दुर्जन नर ।
मन्त्रकार आने से घर-घर खुशिया, डारुनियां घर-घर" ।
मिथ्या-ज्वर-रोगी को लगती कटु मोठी गुड-धानी है" ॥२१०॥

२१. सम्पर्क से भ्रम दूर

रामायण छन्द

कैसे रोग मिटे पीने की दवा पीठ पर रखने से ।
मिथ्या-विष उतरेगा कैसे बिना ज्ञान रस चखने से" ।
बोला मोजीराम वोहरा—रे ! घर सारा लूट लिया ।
पाच महाव्रत टूटे ऊपर चार मास का दण्ड दिया" ।
मुनि सम्पर्क साधने से फिरता सशय पर पानी है ॥२११॥
भृगु ने निज पुत्रों को को थी मुनि सगति दिन प्रथम मनाह ।
मिलने से संयोग अचानक बने श्रुती वे वेपरवाह" ।

टीकम डोसो की शंकाएं मिटी बीरा छह पत्रों की।
 गद्गद् स्वर बोला जोड़े तो हैं निर्युक्ति गुमूत्रो की।
 तीर्थकर बत् आप जगत् में साक्षात् केवलज्ञानी है" ॥२१२॥

बोहा

आया लेकर हृदय में, शंका का अवलेह।
 गिरा चरण में भिक्षु के, बनकर नि सदेह" ॥२१३॥

२२. योग्यता से असर

बोहा

धान्य सीजते हैं सभी, नहीं 'कोरडू' धान।
 योग्य पुरुष ही समक्षता, नहीं इतर अनजान ॥२१४॥

रामायण छन्द

सम्पत्की न बिना मति बनता जैसे नग नामक भाई ॥
 मणियां स्वर्णम, धबिया मोटी, जब सिद्धान्तो में आई" ॥
 'सम्पत्की को पाप न लगता, कहकर बहकाते जन को।
 बतलाने से लाल क्रोध में, कैसे समझाए उनको" ॥
 गेहूँ दाल समान अवल बिन समक्ष न पाता प्राणी है" ॥२१५॥
 बोले कुछ जन तार निकालो अयि भीखणजी ! आप जरा।
 कैसे तार निकासूँ डढा नहीं दीखता दोष-भरा" ॥
 काला बर्तन काली राव व काली निशा अमावस की।
 खाने और परोसन वाला अधा निगा रहे किसकी" ॥
 घटी हवा में बैठ चलाती कहलाती न सयानी है" ॥२१६॥

बोहा

मानव बिना विवेक के, कभी न पाता तत्त्व।
 हठाग्रही बन होश बिन, खोता अपना सत्त्व ॥२१७॥
 जिसके हृदय न आख है, वह रासभ समक्ष।
 फंमकर पद के लोभ में, बनता हरि का भक्ष" ॥२१८॥

नवीन छन्द

गुद की समझ बिना न समझता नरमूढ़ दूसरों के द्वारा ।
छोड़ू अगर घेप तो रोया पीटा जाए निष्फल सारा^१ ।
नर बिना समझ के कहते हैं कब ही कुछ कब ही कुछ स्वर से ।
दृढ रम्सी से वह बाधकर पीपल को खींच रही कर से^२ ॥२१६॥

२३ विनयी अविनयी

नवीन-छन्द

विनयी की विद्या सफल-सफल मिल जाते उमके मधुर वचन ।
है पैर सगर्भा हथिनि के, घर पर आया बुद्धिमानन्दन ।
निष्फल विद्या विनयेतर की तत्क्षण कह देता विनचितन ।
हैं हाथी के पैर बड़े ये, मर गया अरे ! बुद्धिमानन्दन^१ ॥२२०॥
कितना ही शिष्य कृतघ्नी को ऊर्ध्वोर्ध्व चडाओ अम्बर में ।
वह तो तात मारता अपने उपकारी गुरु के भी शिर में ।
योगीश्वर ने मन्त्र योग से झट सिंह बनाया चूहे को ।
वह योगी को खाने आया फिर तो वह खत्म हुआ देखो^२ ॥२२१॥
कुटिबन्ध, कुमति सिखा औरों को गुतरा अपने पर लाता है ।
मर गया वनद, बुढ़कना दुष्ट गाड़ी में जोता जाता है^३ ।
दुहरी बात बनाते मुग्ररी डाकोत क्या-वाचक जैसे ।
बेदा-बेटी बीच नकारा कह देता लेने को पैसे^४ ॥२२२॥
मन्त्री नमकहराम एक को, मिलता है मृत्यु दंड भारी ।
मन्त्री सामग्योर तो पाता, वापस नृप से विमुक्ता सारी^५ ।
कहता नाक कटा कर नरुदा भगवान् दिखाई देते हैं ।
उमके घगुस में फस भोले जन पय वही ले लेते हैं^६ ॥२२३॥
स्वार्थी ब्राह्मण चाहे दूध तो दूह लेने गुश हों बारी से ।
बारा नहीं डालता कोई, पाये धिक्कृति नर-नारी से^७ ।
मुनिज्य प्रवृत्ति बदलता अपनी चाहे ऊपर से बदलो तन ।
बुद्धद्वयम वह प्रवृत्ति हुआ है मारा तब पशुओं ने तत्क्षण^८ ॥२२४॥
गानो में मो बार प्यात्र को घोओ आ गंगा यमुना पर ।
उगरी वामु न मिटती जैमे र्यों प्रवृत्ति अविनयी की बदलर^९ ।
करता जाता दुष्ट दुष्टता फिर दूध घूना सा भी बनता ।
गाना बृणवगोर बृणवी भी दिखाना सम्मुख राजनता^{१०} ॥२२५॥

बोहा

भारम पदियों नर मर्या, खरी मर्या धे खीम ।
दिविग नर अविनीत पर, नरनर है यह हीन" ॥२२६॥

मन्त्री-सद्वद

सोय मुंह में टंटा लपटा मेखिन धमकाता उवाता पर ।
गुरु उपाय नर स्वार्थ मुनि ने, बट मिला मुन होगा पण्डित" ।
जैसे बों बने बों मरति दिने ने बानी-बारी मिलनी ।
उपमा दान और उपाय बों अविनीत पुरन बों है मिलनी" ॥२२७॥

बोहा

निगुग गनुरा गांन गुम, है अविनीत विनीत ।
प्रथम दुष्टता दुष्टता करता मुद में प्रीत" ॥२२८॥

मन्त्री-सद्वद

समसाये मुविनीत शिष्य के भावन-दात्रीरम मिल जाने ।
समसाये अविनीत शिष्य के आनन में मेव न कर पाने" ।
अभिमानि अविनीत संघ में है मद्धित पान गुम शयकारी ।
अनार और दूसरी का यह करता नृमान बड़ा भारी" ॥२२९॥
अभिमानि अविनीत, प्रमगा विनीत की गुन-गुन जमता है ।
अनो कीति स्वयं गा गाकर मन में धर मोद पानता है" ।
विगड न पाता दूध शय में रहता है निर्मल की निर्मल ।
विनीत जान कता का भाजन उपाय पाता है अति उपाय" ॥२३०॥

बोहा

मुनि विनीत अविनीत पर, विविध हेतु दुष्टान्त ।
तद्विषयक वर चौपट, पड़िये आघोपान्त" ॥२३१॥
शिष्य रक्षिका रोहिणी-उपमा में मुविनीत ।
भोगवती युत उगिता-उपमा में अविनीत ॥२३२॥
विनीत को गुद चौपट, सकल संघ का भार ।
जान संघदा आदि में पाता यह विस्तार" ॥२३३॥

रामायण-धनु

मन्त्रविज्ञ ने जहर उतारा अहि का वह लौकिक उपकार ।
 अतश्च दे भव पार उतारा, कृपि ने वह आत्मिक उपकार' ।
 पनि वियोग से एक रो रही एक न रोती धर्म-रता ।
 सोक प्रशसा पहली की पर मुनि गाता पर की क्षमता ।
 सोकोत्तर उपकार सार है इतर राग अहलानी है" ॥२४६॥
 एक बचा नव चोर मरे बदले में दिये नवति नव मार ।
 मातृकार की हुई हेलना ऐसा है लौकिक उपकार" ।
 अमपनी-पोषक छह कायो का पोषक है पाप अतः ।
 देकर नर महयोग चोर को बना सेठ का शत्रु स्वतः" ।
 दीव दया में किया कृपिक को कृपि पर चली कृपाणी है" ॥२४७॥

२८. सायद्य-निरयद्य दया

बोहा

दया-दया सब कठ रहे, कठिन ममक्षता मर्म ।
 मृद दया जो पाया, पाया वह शिव-शर्म" ॥२४८॥

मर्म — धर्म की जय हो जय...

प्राण प्रोद दया, प्राण मदन उजवालो । पायो" ॥
 मोक्ष पार लगायो । पायो ॥ध्रुव०॥
 दया दरमय है कृपयागी, समता तरु-वेनदिया प्यारी ।
 धर्म हो मृपनार्थी भागी, जान-गुरुभि फंसायो ॥पा० २४९॥
 मर्म मर्म प्रोद है सब ही, प्रोने के भी दृष्टिकु सब ही ।
 मृद नम म कतिन सब ही, अन्तर ज्योति जगायो ॥पा० २५०॥

बोहा

दया न प्रोना प्रोद का, मृदु न द्रिमा कथ्य ।
 द्रिमा द्रिमा मर्मना, इतर (नरी मारना) दया है मर्म" ॥२५१॥

मर्म — धर्म की जय हो...

मर्म मर्म न मर्मना, दया - अर्द्रिमा एक प्रगतिशान ।
 मर्म मर्म न द्रिमा मर्मना, उमने प्रेम लगायो ॥पा० २५२॥

कहते जन पर प्राण बचाना, दया धर्म है यही पुराना ।
 भूखे प्यासे को दो खाना, निबल सहाय सज्जालो ॥पा० २५६॥
 (पर) मोह राग का जहा समागम, बल-प्रयोग वा पोष असयम ।
 द्रव्यादिक का लालच लघुतम, दया न वह अजमालो ॥पा० २५७॥
 जब तक सच्ची दया न आई, तब तक सार्यक नही पढ़ाई ।
 बिना बीज की खेती भाई, करुणा बीज उगालो ॥पा० २५८॥
 नेमिनाथ जिनरक्षित उपनय, समझो उभय दया के अभिनय ।
 अभय-दान दो होकर निर्भय, आगम-वचन जमालो ॥पा० २५९॥
 तीन, सात दृष्टान्त दया पर, दिये भिक्षु ने कितने सुन्दर ।
 शीघ्र समझ सकता है हर नर, सुन दिल बीच रमालो ॥पा० २६०॥

रामायण-छंद

चोरों की चोरी छूटी सह महाजन के धन प्राण बचे ।
 हिंसक की हिंसा छूटी सह बकरो के भी प्राण बचे ।
 व्यभिचारी व्यभिचार - त्याग से वेदया मरी कृप मे गिर ।
 हेतु तीसरे मे जब पाप न धर्म उभय मे कैसे फिर ?
 पाप टलाने हित हितशिक्षा देते अन्तर्वाणी है ॥२६१॥
 भैंस चली नाड़े मे बकरे झुलिये कण मे तत्पर है ।
 बैल चले भूकद-स्कंध पर गायें कच्चे जल पर है ।
 पक्षी कच्चे, बिल्ली चूहे मक्खी - दल गुड चीनी पर ।
 धर्म एक को रखने मे तो क्यों न सभी मे दो उत्तर ॥१॥
 धर्म प्राण - रक्षा मे उसकी जो न असयत प्राणी है ॥२६२॥
 कीड़ी को कीड़ी जाने वह ज्ञान, कीड़िया ज्ञान नही ।
 दया कीड़ियों को न मारना, लेकिन वे तो दया नही ॥१॥
 छह कायो के जीव खिलाने - खाने मे जब पाप सही ।
 पानी जिनमें स्वयं आ गया क्यों करते स्वीकार नही ॥१॥
 ज्यो त्यो रखो सभी जीवो को कहने आगम-ज्ञानी हैं ॥२६३॥
 अल्प पाप बहु कर्म - निर्जरा बहते आग वृक्षाने में ।
 तो फिर होगी हिंसक सिंहादिक को भी मरवाने मे ॥१॥
 एकेन्द्रिय जीवों का वध कर पचेन्द्रिय के पोषण मे ।
 धर्म न होता बलात्कार से कबही जीवन जोषण मे ॥१॥
 धर्म न हिंसा बिना कहे तो

इतर पाप (मुषावादादिक) तत्स्थानी है ॥२६४॥

रामायण-सूत्र

मरविज्ञ ने जहर उतारा अग्नि का वह लौकिक उपकार ।
 अग्नि ने वह आत्मिक उपकार ।
 दवि विरोध में एक में रही एक न रोनी धर्म-रता ।
 मोक्ष प्रसन्न पहली की पर मुनि गाता पर की दामता ।
 संकोच उपकार मार है इतर राग अहंलानी है ॥२४६॥
 एक बना नव मोर मने बदने में दिव्य नखनि नव मार ।
 स्फुरकार की हुई हेतना ऐसा है लौकिक उपकार ॥
 कलश की पंख का को का पौषक है पाप आ ।
 देकर जग स्फुरण मोर की बना मोठ का शत्रु स्या ॥
 निह रस में निह रस कृति को कृति पर गयी कृपाणी है ॥२४७॥

२६ मायल-निरयय बया

बोटा

१०९१० वा कद रहे, वज्रिण समझना मर्म ।
२५ वां बः १०९११, १०९१२ गिर-शर्मे' ॥७५॥

मग गर्भ की बात हो मग...

३० ४१ ४२ प्रमद मदन उदयावो । पायो...
लोकोपायकपायो । पायो ॥ ध्रुवः ॥

१. ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 २. ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ३. ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ४. ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

498

[illegible]

भाषा **वृत्त** **चरित्र** **शिल्प**

१. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

कहने जन पर प्राण बचाना, दया धर्म है पही भुगना ।
 भूखे प्यासे को दो खाना, निरक्त गरीब गमावो ॥२४६॥
 (पर) मोह माद का बड़ा समानम, मन-प्रयोग को पोष अग्रयम ।
 द्रव्यादिक का सावध मनुष्यन, दया न यह अजमानो ॥२४७॥
 जब तक मुझी दया न आई, तब तक मार्गक नहीं पड़ाई ।
 बिना बीज की पेड़ी भाई, बरणा बीज उगावो ॥२४८॥
 नेमिनाथ दिनरक्षण उभय, समस्तो उभय दया के अभिनय ।
 अन्न-दान दो होकर निर्भय, आगम-वचन दमानो ॥२४९॥
 मोन, मात दुष्टान्त दया पर, दिने जित ने बिने मुन्दर ।
 शीघ्र गमाव सकता है ह नर, मुन दिन बीम गमानो ॥२५०॥

शामान्य छंद

बोरो को बोरी सूटी गह महाजन के धन प्राण बधे ।
 हिमक को हिमा सूटी गह बररो के भी प्राण बधे ।
 अविचारो अविचार-त्याग मे बेव्या मरी कृप में फिर ।
 हेतु सींगरे मे जब पाप न धर्म उभय मे बने फिर ?
 पाप टमाने हिा हितगिस्ता दो अन्धरांगो है ॥२५१॥
 भेग बनी नाढ़े मे बकरे मुनिग कप मे छतर है ।
 बैन बने भूखद-कप पर गामे बरधे जल पर है ।
 पसी बरधर, बिन्नी गृहे मक्खी-दल गुड़ भीनी पर ।
 धर्म एक को रखने मे तो क्यों न सभी मे दो उत्तर ॥१॥
 धर्म प्राण-रक्षा मे उगकी जो न अगवग प्राणी है ॥२५२॥
 बीटी को बीटी जाने यह ज्ञान, कीटियां ज्ञान नहीं ।
 दया बीटियों को न मारना, मेरिन के तो दया नहीं ॥१॥
 छह काया के जीव पिलाने-खाने मे जब पाप गही ।
 पानी जिनमे म्वय था गया क्यों करते स्वीकार नहीं ॥१॥
 ज्यों र्यों र्यों सभी जीवो को कहने आगम-ज्ञानो है ॥२५३॥
 अन्य पाप बहु कर्म-निजंरा कहने आग मुझाने मे ।
 तौ फिर होंगी हिमक मिहादिक को भी मरवाने मे ॥१॥
 एकेन्द्रिय जीवों का वध कर पंचेन्द्रिय के पोषण मे ।
 धर्म न होना बलात्कार मे कवही जीवन शोषण मे ॥१॥
 धर्म न हिमा बिना बहे तौ

दतर पाप (मुपावादादिक) तटरपानी है ॥२५४॥

दोहा

तनेन्द्र को मार ते पीन्द्र का पोता।
कटना यदि हो भयं ता तना उन्द्र मे दोहा" ॥२६४॥

सामान्य-गुण

यन् दयामाता का कयी तीर मृत्यु भयं भातक।
हिमाधर्मी जो कुमाय है व रतो मर मे भयंक"।
शम्भु बलाने वाता हिमा तान जातु-पा मे न मया।
अहि को चूहा मित्त न मित्त म प्रेरत ता पातक दारा"।
ममसाकर हिमा शृङ्गाना मन्त्रो दया-मतानी है।" ॥२६५॥

२८ पात्र अपना दान

सय—प्रथमानव जहरी जान रे...

है पात्र दान का लाभ रे, दाना को मर निगला।
यह अमली फूल गुलाब रे, गो सोरभ रच-रग माया ॥ध्रुव०॥
देना उपहार से दुनिया मे दान है।
सन्ता शिवपुर का द्वार धर्म दान है।
कर देगो मही हिमाय रे। लो सोरभ... ॥२६७॥

दोहा

आध्यात्मिक दम दान मे, धर्म दान है एक।
मासारिक नव दान है, आगम में उल्लेख" ॥२६८॥

सय—अथ मानव...

समज्ञो विभेद पात्रापात्र में।
घेत उपर-भू, धेनु अहि मात्र मे।
पठ करके ज्ञान किताब रे"। लो सोरभ... ॥२६९॥
प्रथम सुपात्र, शुद्ध द्रव्य, दातार हो।
मँदा घृत चीनी से सोरा तैयार हो।
वरना राव मान पराव रे। लो सोरभ... ॥२७०॥
हलुआ पूड़ी बना के देना पाप है।
ताभ निर्दोष मे गाया अमाप है।
चाहे हो रोटी राव रे। लो सोरभ... ॥२७१॥

नैया तरती है अध्यात्मिक दान से।

सुनो भिक्षु दृष्टान्त कुछ ध्यान से।

सीखो तुम सही जवाब रे। लो सौरभ...॥२७२॥

रामायण-छंद

सौ मन चने भूगडे, गुगरी, रोटो का बहु दान दिया।
 त्याग एक कर पाया, किसने अधिक धर्म का लाभ लिया^{११} ?
 एक भिक्षु को चने सेर भर दिये, एक ने पीस दिये।
 रोटो की, जीताबु पिलाया कौन अधिक धर्मी कहिए^{१२} ?
 अन्न दान में पुण्य न चाहे पिया कही का पानी है^{१३} ॥२७३॥
 पुण्य दया-युत सलिल पिलाना क्योंकि भाव रक्षा के हैं।
 करें परीक्षा हम छरी की नही भाव हत्या के हैं^{१४}।
 असंयमी को देने से जब खुद का समय टूटेगा।
 ऊर्ध्व भीम से गिरने पर सिर क्यों न इतर का फूटेगा^{१५}।
 कहते पुण्य अपर को फिर क्यों खुद न असयम-दानी है^{१६} ॥२७४॥
 श्रावक वेद्या तुल्य किये जब पाप उभय को देने में।
 मा वेद्या सम की तुमने जब धर्म न सलिल पिलाने में^{१७}।
 श्रावक द्वारा जिसे खिलाओ अथवा दो निज पात्रो से।
 करो मनाह किसी को देते वा लो किसके हाथों से^{१८}।
 दान न देते हम श्रावक तो क्यों न खुशी मनमानी है^{१९} ॥२७५॥
 अन्य दान में दोष साधु को क्यों न लगे गृहजन को फिर।
 हाथी उड़ते जिस आधी मे क्यों न उडे पूणी खिर-खिर^{२०}।
 दया - दान - उत्थापक तेरापथी कहते केवल है।
 पर्युषण में बद किया क्यों देना जब धर्म - स्थल है^{२१}।
 रुप्य आदि देने से ममता कभी न होती फानी है^{२२} ॥२७६॥
 वर्तमान सावद्य दान में मौन साधु को हितकर है।
 हलदानी के उभय किनारे छूने से जनता कर है^{२३}।
 प्रवचन में सावद्य दान का फल गाने में तनिक न दोष।
 असयती को देने में एकाग्र पाप यह आगम-घोष।
 लेकिन देते समय न कब ही बन सकते व्यवधानी है^{२४} ॥२७७॥

२६. चर्चा के चमत्कार

दोहा

चर्चावादी भिक्षु ने, चर्चाएँ रसदार।
कर-कर के दिग्रजा दिया, तत्त्व सत्त्व साकार ॥२७८॥

सय—बाज़र की रोटी पोई...

चर्चावादी स्वामीजी के चर्चा-स्थल कुछ बतलाता।
श्रुति-भोचर अथवा दृग्-भोचर चर्चा में तो रस आता ॥२७९॥
'काफरता' में एक बार श्री भिक्षु शिष्य सह ठहराये।
मूर्ति-प्रतिष्ठा करवाने को घतिविजयजी भी आये।
मिलन मार्ग में हुआ सहज ही परिचय पहले हो पाता ॥२८०॥
बतलाओ क्या नाम तुम्हारा ? भीखण मेरा नाम सही।
क्या भीखणजी तेरा पथी ? हाँ मैं साक्षात्कार वही।
माथ तुम्हारे निक्षेपो की चर्चा हित मन ललचाता ॥२८१॥

दोहा

भिक्षु कितने निक्षेपे कहे, बतलाएँ क्रमवार ?
यतिजी—नाम स्थापना द्रव्य फिर चोखा भाव विचार ॥२८२॥
भिक्षु—वदनीय है कौन सा ? यति—चारों वन्द्य हमेश।
भिक्षु—भान्य हमें भी भाव तो, चर्चणीय है शेष ॥२८३॥

सय—बाज़र की रोटी...

भिक्षु—कुम्भकार का नाम दिया भगवान् वन्द्य क्या उसे कहो ?
यतिजी—उमकी क्या वन्दन जिस जन में गुणन देवका एक अहो।
भिक्षु—गुण निष्पन्न नाम तो हम ही जप-जप पाते सुप्रमाना ॥२८४॥
भिक्षु—ग्रन्थ स्थापना का अर्थ प्रतिमा रख स्वर्ण वा रूपे की।
मैं धानु पत्थर की क्रमशः कहो वन्द्य क्या रख ऐसी ?
यतिजी—हा हा मय में पर गोबर की

प्रतिवृत्ति हित मिर डोलाता ॥२८५॥

कोथानुर हो बोने बात न करनी जरा तुम्हारे मे।
करने मूम प्रभु की आशानन सत्य न कभी हमारे मे।
दो बहुर वे गये भिक्षु भी आये अक्कर के जाना ॥२८६॥

पुनरपि लोगों के कहने से चर्चा हित यतिजी आये।
 मध्य दुकान एक थी जिसमें स्वामीजी भी पहुँचाये।
 चर्चा आचाराग पाठ की घने प्रथम गुरु (भिक्षु) आख्याता ॥२८६॥
 नहीं दोष धर्मार्थ जरा भी जीवों की हिंसा करना।
 यह अनार्य पुरुषों की वाणी सुत्र पाठ स्मृति में धरना।
 बोले यतिजी त्रुटि इस प्रति में मैं अपनी प्रति दिखलाता ॥२८७॥
 वही पाठ निकला तब थर-थर धूज रहे दोनों कर हैं ॥
 क्या कारण पूछा चारों में, तब तो बड़ा कोप ज्वर है।
 साले का सिर छेद अब ही खून नयन से टपकाता ॥२८८॥
 भिक्षु—तीन लोक की सब महिलाएँ मेरे माँ-भगिनी सम हैं।
 तुम घर में यदि गृहिणी हो तो सबमें उसका भी क्रम है।
 इस हिंसा से कहा, अन्यथा वितथ वाक्य यह ठहराता ॥२८९॥
 रखा भारने का क्या मुझको कुछ आगार नियम लेते ?
 सुनकर खिन्न हुए हैं अति हो, सकुचाते उत्तर देते।
 'क्यों हमको लज्जित करते' यो कहकर थावक ले जाता ॥२९०॥

दोहा

आये फिर पीपाड में, किन्तु न चर्चावाद।
 पीछे पाली में हुई, चर्चा कुछ दिन बाद ॥२९१॥

सय—बाजरे की रोटी...

भिक्षु—मिश्री के बदले भिक्षा में प्राप्त नमक का क्या करना ?
 यतिजी—पडा पात्र में जिससे मुनि को खा लेना वह शान्तमना।
 तब तो खा लेना यदि गुड के बदले में दे विष दाता ॥२९२॥
 नहीं जवाब आया दिल में भी कष्ट स्पष्टत पाया है।
 ऐसे प्रश्नोत्तर में गुरु ने अच्छा सुयश कमाया है।
 सत्य-न्याय-युक्त तर्क युक्ति से ऊँचा शब्द फहराता ॥२९३॥

दोहा

भय खाते हम भिक्षु में, करते चर्चा बात।
 जोड़ सिखाते विषय वह, गृहि को हायोहाय ॥२९४॥
 थावक मोहक अकबरी, गोगूदा के साथ।
 समझाये हैं भिक्षु ने, चर्चा कर सायास ॥२९५॥

एकलडा क्यों जीव है पचलडा है जीव ।
 चतुरात्मा सब सिद्ध में, कहें चौलडा जीव" ॥२६६॥
 आत्मा सात व आठ की ? श्रावक जन में छाप ।
 सत्य अपेक्षा उभय की, न करो आप्रहृ आप" ॥२६७॥
 पट्ट चरचा में भिक्षु सम, दुर्लभतम मुनि-पाद ।
 कट्ट चरचा के समय में, आएंगे वे याद" ॥२६७॥

३०. दूरदर्शिता

रामायण-छंद

प्रभु का पय चलेगा गुरुवर ! इस कलियुग में अब कब तक ?
 दूढ-श्रद्धा आचार-त्रिया फिर स्थिर सीमा में मुनि जब तक" ॥
 प्रतिक्रमण क्यों पड़े-पड़े कर रहे बुढ़ापे में प्रभुवर ।
 भावी शिष्य करेंगे बैठे-बैठे तो कुछ स्मृति कर कर ।
 दूर-दर्शिता बड़ी भिक्षु की चिन्तन तो अवधानों है" ॥२६८॥
 नीने लेने आप कहों क्या करना लग्न सगाई है ?
 भूय लगे तब यादगार में खाना-त्याग मिठाई है" ॥
 बाटी की घाटी पर चढ़ते खूब यकावट आई है ।
 जानू पर दे हाथ मुगुरु ने गाया एक मुनाई है ।
 दूढ अवस्था भोषण रास्ता दुविधा दोनों कानों है" ॥२६९॥

३१. अध्यवसायी

रामायण-छंद

ज्ञान-ध्यान का उद्यम हृदय अद्विरल गति से चलता था ।
 'समय गोपम मा पमाय' आगम पद यह फलता था ।
 गारो-गारो रात पश्चिम करते जन समझाने में ।
 कभी-कभी तो निशा पड़ी दो रहती सूर्य उगाने में ।
 ऐसे जोरत शौका तर ही गण-बाड़ी विक्रमानी है" ॥३००॥
 नेत्रन की मदन तर अपने स्वप्नों दोष उटाने थे" ॥
 धर्म अवस्था में भी स्वेच्छा भिक्षा लेने जाने थे" ॥
 शिष्य बड़े मुनिनीन गाय में मेवा खूब बजाने थे ।
 विविध ब्रह्मण मोक्ष-मोक्ष कर परमानन्द मनाने थे ।
 लेने खाता पात्र खाटिए गुरु गुरुनय समदानी है" ॥३०१॥

दोहा

जमी छाप साधुत्व को, पौरुष की अत्यंत ।
कहते साधु विपक्ष के, हैं भीखणजी सत" ॥३०२॥

३२. शिष्यों का योग

दोहा

शिष्य गुगुरु जोड़ी मिली, क्या उमका उल्लेख ।
दंग रह गया ज्योतिषी, दिव्याकृति को देख ॥३०३॥
भिक्षु व भारी घेतसी, वेणी हेम पवित्र ।
महापुरुष पाचों मिले, एक स्थान में चित्र ॥३०४॥
सहयोगी धिरपाल मुनि, तत्पुन पतह प्रतीत ।
नेवाभावी प्रमुखनर, टोकर हर मुविनीत ॥३०५॥
मिले भिक्षु को भाग्य से, शिष्य बड़े अनुकूल ।
जिसने थी जिन धर्म का, गया बगीचा फूल" ॥३०६॥

६३. स्वामीजी के प्रमुख श्रावक

गीतक-द्वन्द्व

जोधपुर के थे निवासी व्यास गेरनालजी ।
समस्त कर गुरु भिक्षु से श्रावक बने मुविशालजी ।
कच्छ 'चंदर माइवी' थे गये अपने कार्य बग ।
गोत्र डोगी-नाम 'टीरम' बोध पाये कर बहुर" ॥३०७॥
विदित श्रावक गोभजी पुर बेनवा के उच्चतम ।
अटल थड़ा हृदय में थी भिक्षु स्वामी ने परम ।
परिस्फिति बग गये बारा, भिक्षु ने दर्शन दिये ।
सोह की जंजीर टूटी मुख शट विधि ने बिये" ॥३०८॥
विजयचन्द पट्टापासी के थे पहले स्थानस्वामी ।
रजनी में बर्षा कर समस्त भवन बने दूध बिस्वामी ।
शायिक गम्भिर-दृष्टि बहाये गये गुरु ने गुण अवशान ।
पस्चिम दिशा बग निष्ठा का बग-बरजन में बर्षा बाज" ॥३०९॥
पुर पीताड निवासी श्रावक गोत्र मुनाबन नाम गुमान ।
दुइधमी दुइनिठ दृष्ट के प्रति थड़ा क्षति साक्षि बगान ।

भिक्षु रचित साहित्य प्रायशः धारा कर विधिवत् कंठस्थ ।
रत स्वाध्याय मनन मे रहते करते गुरु की सेवा स्वस्थ" ॥३१०॥

३४. विहार-स्थल

रामायण छन्द

रहे विचरते शेष समय तक नहीं रहे स्थिरवास कहीं ।
अग स्वस्थ परिपूर्ण इन्द्रियां आधि-व्याधि का नाम नहीं ।
धार्मिक जागृति चार देश मे स्थली देश भी स्पर्श लिया" ।
आदिम जिन वत् धर्म बता कर जन-जन का उद्धार किया ।
दी है देन बड़ी इस युग को युग की नञ्ज पिछानी है" ॥३११॥

बोहा

प्रभु ने अन्तिम वर्ष मे, स्पर्श ग्राम अनेक ।
किया बड़ा उपकार तो, दी दीक्षा दश एक" ॥३१२॥

३५ वात्सल्य भाव

रामायण-छन्द

अन्तिम पावस सिरियारी मे सप्त श्रमण सह कर पाये ।
श्रावक हुक्मचन्द आछे की आपण में गुरु ठहराये ।
सावन मे दस्तों का कारण हुआ असातोदय से कुछ ।
फिर भी कुछ परवाह न करते साहस रस शरता सचमुच ।
साधारण उपचार चल रहा पर न व्यथा छितरानी है ॥३१३॥
पर्युषण का पर्व आ गया तीन समय होता व्याख्यान ।
शुक्ल चोष को देख क्षीण तन कहते शिष्यो को साह्वान ।
तुम तीनों के साहचर्य से पाला संयम मुख-मूर्ख ।
चित्त-समाधि रही है अच्छी विनय किया तुमने भरसक ।
शिष्य भारमल से तो भानो प्राग्भव प्रीति पुरानी है ॥३१४॥

बोहा

गुण ग्राहक श्री भिक्षु के, वचन इक्षु सम मिष्ट ।
भुनकर गद्गद् हो गए, विनयी शिष्य विशिष्ट" ॥३१५॥

३६ अन्तिम शिक्षा

दोहा

अंतिम शिक्षा दे रहे, भावभरी गण-छत्र ।

मुनिगण श्रावक-श्राविका, सुनते हैं उभयत्र ॥३१६॥

रामायण-छन्द

जैसा मुक्तको समझ रहे तुम रखते मेरी पूर्ण प्रतीत ।
 वैसे भारीमाल-चरण मे रहना बन कर परम विनीत ।
 इसकी आज्ञा मे ही चलना, देना देख-देख दीक्षा ।
 सयम रत्न सुरक्षा करना सेना भाधुकरी भिक्षा ।
 रखकर एकीभाव परस्पर शोभा अधिक बढानी है ॥३१७॥

विनय प्रणाली कायम रखना जो ऋषि-संस्कृति की जड़ है ।
 अविनय उच्छृंखलता की स्खलना से होती गड़बड़ है ।
 भद्र अस्व वत् विनयी भुनि है विनयेतर गर्दभ क्रम मे ।
 दोनों को उपमा यथार्थतः दी प्रभुवर ने आगम में ।
 विनयी-भुनि शृंगार सघ मे चाहै अल्पज्ञानी है ॥३१८॥

गीतक-छन्द

प्रभो ! है तकलीफ क्या कुछ ? नई तो बिल्कुल नही ।
 मुझे लगता आ गया नजदीक अब आयुष्य ही ।
 पर न तिल भर मृत्यु का भय, परम पुलकित-हृदय में ।
 सत्य प्रभु का पथ बताकर हो गया कृत कृत्य मैं ॥३१९॥

जा रहे हैं आप स्वर्गों मे अहो गुरु-देवता ।
 छटा अद्भुत है वहां पर देवता ही देवता ।
 है न पुद्गल-सुख-पिपासा क्योंकि वे निस्तार हैं ।
 मन लगा है मोक्ष-सुख से जुड़े उनसे तार है ॥३२०॥

३७ आत्म समाधि-रत

दोहा

की विचित्र आलोचना, क्षमायाचना और ।

मंत्रो रस भरकर बने, आत्मानन्द विभोर ॥३२१॥

रामायण-छन्द

सावत्सरिक पर्व दिन भाद्रव शुक्ल पंचमी का आया।
 चौविहार उपवास किया अति तृपा परीपह सह पाया।
 किया पारणा अल्प छठ को किन्तु अपच से हुआ वमन।
 त्याग किया उस दिन फिर दो दिन नाम माय ही लिया अशन।
 क्रमण चिन्तन कर भोजन के बनते प्रत्याख्यानी हैं ॥३२२॥
 नवमी दसमी को शिष्यों की केवल मानी है मनुहार।
 बोले निराहार अब रहना दृढतम मेरा हुआ विचार।
 ग्यारम बारम को कर बेला, बेले में फिर आजीवन।
 विधिवत् अनशन ग्रहण किया है चमकाया समम-जीवन।
 फँसी उस उत्कृष्ट त्याग की सौरम चारों कानी है ॥३२३॥
 दर्शन हित जन आने अति ही त्याग विराग बढ़ाते हैं।
 महामना की चरण-धूलि में जीवन सफल बनाते हैं।
 तेरम के दिन अवधि-ज्ञान का चित्र सामने लाते हैं।
 सम्मुख जाओ साव आ रहे फिर सतिमा, गुरु गाते हैं।
 दोनों बातें मिलीं अचानक अद्भुत हुई कहानी है ॥३२४॥
 चार सीधें का मेल मिला है भिक्षुराज के अनशन पर।
 धन्य-धन्य सब कहते कैसा कलश चढ़ाया जीवन पर।
 बैठे-बैठे ध्यानासन में ध्यान तीन प्रभुवर अपलक।
 चले गये गुरुजीक ओक में रहे देखते मुनि श्रावक।
 अब तो रही हृदय में स्मृति की एक मात्र महनाणी है ॥३२५॥

दोहा

तेरम-मगनवार था, डेढ़ प्रहर दिन सोप।
 मान माम का आ गया, अनशन यन मुविशेष ॥३२६॥
 मंडी नेरह गड की, मानों देव-विमान।
 बनने हो श्री भिक्षु ने, छोड़े शटपट प्राण ॥३२७॥

उपसंहार

मनोहर-छन्द

तेरस के दिवस ही भिक्षु का महान् जन्म,
 तेरह ही साधु शुद्ध पथ के प्रस्थान में।
 तेरह श्रद्धालू मिले सामायिक पौष में,
 तेरापथ नाम अर्थ अनोखा विधान में।
 तेरह नियम मूल साधु के बताए मुख्य,
 रचे हैं तेरहद्वार गूढ़ तत्त्वज्ञान में।
 ले के 'नवरत्न' तिथि आधिर मे तेरस की,
 तेरापथ नाम किया अमर जहान में ॥३२८॥

दोहा

मंगल को गुरु भिक्षु का, जन्म हुआ साकार।
 मंगल को गुरु भिक्षु का, स्वर्गगमन अवधार ॥३२९॥

रामायण-छन्द

धर्मवीर ! निर्भीक ! सहिष्णु ! जग-उद्धारक ! ज्योतिर्मय !
 प्राण-यत्र अभिनदन का है अर्पित तुमको तू स्मृतिमय।
 भक्ति भाव की जल-लहरों से हृदय भरा है ओत-प्रोत।
 तेरे पद चिह्नों पर खतने से होता आत्मिक उद्योत।
 अमर कीर्ति क्या कृतिषा तेरी गण में गण-मेनानी ! है ॥३३०॥

दोहा

समाचार मुरवात के, मुन जन मन में गेद।
 हीरविजय यति ने कहा, टूटी दिल उम्मेद ॥३३१॥
 भरत क्षेत्र में एक थे, प्रश्नोत्तर दानार।
 भिक्षु गए मुरघाम में, बष्ट हुआ अनपार ॥३३२॥

समाप्त-पद

मातमरिष तरे दिन भाइर दार परमी का आया।
 चौरहार उरराम तिरा अति पूरा परीगत मह पाया।
 किया वाग्गता अन्त छट को तिरा आर मे दूभा गमन।
 त्याग किया उम दिन फिर दो दिन नाम मान हो तिरा अगन।
 प्रमग निगन तर भोजन के बने प्रयागनामी है ॥३२२॥
 नवमी दममी को निगना को केना मानो है मनहार।
 बोलें निराहार भर रत्ना दूरम मेरा दुभा विचार।
 ग्यारग वाग्ग को कर येना, नेो मे फिर आजीवन।
 विधिवन् अनगन बहग किया है गमकाया गनम-जोवन।
 फैली उम उगूट रवाग को गोरम चारा कानी है ॥३२३॥
 दर्शन हिन जन आने अति हो रवाग रिगम बानी है।
 महामना की चरण-धुवि मे जोवन गफन बनाने है।
 तेरम के दिन अवधि-ज्ञान का निष मामने साने है।
 मम्मुर जाओ माधु आ रहे फिर गनिषा, गुरु गाने है।
 दोनों बानें मिलो अचानक अर्मुन हुई कहानी है ॥३२४॥
 चार तीर्थ का मेन मिना है मिशुरात्र के अनगन पर।
 धन्य-धन्य सब कहने कंगा बनग बढ़ाया जोवन पर।
 बंटे-बंटे ध्यानामन मे ध्यात योन प्रभुवर आपनक।
 चले गये मूरुलोक ओक में रहे देखने मुनि थावक।
 अब तो रही हृदय मे स्मृति की एक मात्र महनामी है ॥३२५॥

दोहा

तेरम-अगनवार था, टेढ़ प्रहर दिन दीप।
 मान दाम का आ गया, अनगन ग्रन मुखिदीप ॥३२६॥
 मही तेरह ग्रड की, मानो देव-विमान।
 बनने ही श्री मिशु ने, छोड़े शटपट प्राण ॥३२७॥

उपसंहार

मनोहर-छन्द

तेरम के दिवस ही भिक्षु का महान् जन्म,
 तेरह ही साधु गुड पथ के प्रस्थान में।
 तेरह थडालू मिले मामाधिक पौषध मे,
 तेरापथ नाम अर्थ अनोग्रा विधान में।
 तेरह नियम मूल साधु के बनाए मुख्य,
 रचे हैं तेरहद्वार गुड तत्त्वज्ञान में।
 ते के 'नवरत्न' तिथि आशिर में तेरम की,
 तेरापथ नाम किया अमर जहान में ॥३२८॥

दोहा

मंगल को गुरु भिक्षु का, जन्म हुआ गावार।
 मंगल को गुरु भिक्षु का, स्वर्गगमन अवधार ॥३२९॥

रामायण-छन्द

धर्मवीर ! निर्भीक ! सहिष्णु ! जग-उद्धारक ! ज्योतिर्मय !
 प्राण-यत्र अभिनंदन का है अति तुमको लूँ ममूनिमय।
 भक्ति भाव की जल-महरो मे हृदय भरा है ओत-प्रोत।
 तेरे पद बिड़ो पर चलने मे होता आत्मिक उद्योत।
 अमर कीर्ति क्या कृतियां तेरी रज में गज-जेतानी ! है ॥३३०॥

दोहा

गमावार गुरुवार के, गुन जल मन मे गंद।
 होरविजय यति मे कहा, टूटी दिव उम्मेद ॥३३१॥
 भरत धेन मे लूँ थे, अनोख राजार।
 भिक्षु गए गुरुधाम मे, बन्द हुआ अन्तार ॥३३२॥

द्वेषी मुख से कह रहे, ढोली के घर पुत्र।
पैदा हो यह रो रहा, पाया फल उत्तम ॥३३३॥
यतिवर ने निज यश की, स्मृति कर पूछा भेद।
हाल कहा गव देव ने, हुआ सशयोच्छेद ॥३३४॥
ब्रह्मरूप में 'हरि' हुए, नृत्य कर रहे आप।
सीमधर प्रभु ने कहा, न करो मिथ्यालाप ॥३३५॥

सोरठा

मुनिवर कुल जनचास, पूज्य भिक्षु के समय में।
छपन था अवकाश, साध्वियां दीक्षित हुई ॥३३६॥
एक बीस अणगार, श्रमणी सत्तावीस कुल।
गण में तज गणधार, गये स्वर्ग की गोद में ॥३३७॥

दोहा

पचवीस गृहवास में, साधु वेप में आठ।
वर्ष तीन चालीस तक, धर्माचार्य विराट् ॥३३८॥

चातुर्मास-प्रवास

रामायण-छंद

सात प्रमुख पानी नगरी में पुर सिरियारी में भी सात।
ग्राम केलवा में छह पावन पाच धेरवा में विख्यात।
नाथद्वारा तीन और फिर गुधरी में भी तीन उदार।
जन्म-भूमि पीपाड़ शहर 'पुर' माधोपुर में दो दो वार ॥३३९॥
बड़तू राजनगर अम्यापुर सोजत पादू को गुरुवर।
एक एक ही चतुर्मास का दे पाये सुंदर अवसर।
चतुराधिक चालीस किये कुल पन्द्रह क्षेत्रों में पावस।
महामनस्वी भिक्षुराज ने बरगाया अध्यात्मिक रस ॥३४०॥

गीतक-छंद

हेम बेगौराम मुनि वृत्त भिक्षु चरित्र महान है।
जिये उनमें विविध उपमा युक्ति युक्त गुणगान है।
और त्रयगणि रचित मधु-गुरु जीवनी अभिराम है।
विश्व भिक्षुशरणाग्र साथे उनके नाम है ॥३४१॥

आरती

सय—ओम् जय कालू गुरुदेव...

ओम् जय दीपानंदन ! चरण कमल में तेरे, करता अभिनंदन ।

ओम् जय दीपानंदन ॥ध्रुव०॥

भविजन भाग्य योग से, कलियुग में आये ।

सतयुग की सर्वोत्तम, सस्कृति को लाये ॥ओम्...३४२॥

जिनवाणी पर डटकर, कष्ट सहे भारी ।

सत्य साधना से ही, कर नी इकतारी ॥३४३॥

जंनागम में नाम तुम्हारा, पद-पद पर आया ।

‘से भिखू वा’ सार्थक, करके दिखलाया” ॥३४४॥

महा-अणुव्रत बोधि ज्ञान दे, जन-जन को तारे ।

लौकिक - लोकोत्तर पथ बतलाये न्यारे ॥३४५॥

मुनि उनचास व छप्पन, सतियो की दीक्षा ।

मर्यादाएं बांधी, दी सुन्दर शिक्षा ॥३४६॥

युग-युग तक तुम जीवित, साहित्यिक कृति से ।

शासन - सिन्धु तुम्हारा, लहराता धृति से ॥३४७॥

मन्त्राक्षर सम नाम तुम्हारा, पल-पल में ध्याते ।

जन विश्राम मानकर, दिल में बिठलाते ॥३४८॥

१ स्वामीजी का जन्म राजस्थान के जोधपुर राज्य में कटालिया नामक ग्राम में श्रावणादि क्रम से सवत् १७८२ आषाढ सुदि १३ (विक्रम संवत् १७८३ आषाढ शुक्ला १३) मंगलवार को हुआ । उस समय कटालिया (मारवाड) के

१. आचार्य भिक्षु तेरापय के प्रथम आचार्य हुए थे । वे स्वामी भीखणजी, आचार्य भिक्षु के नाम से भी प्रसिद्ध थे । भक्तजन उन्हें केवल स्वामीजी ही कहा करते थे ।

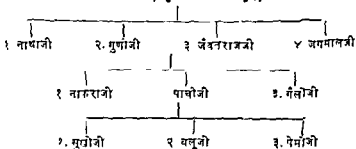
२. विक्रम संवत् चैत्र शुक्ला १ से बदलता है परन्तु जैन तथा कुछ जैनतर परम्परा में वह श्रावण कृष्णा १ को बदलता है । इसलिए मुनि हेमराजजी विरचित ‘भिखु चरित’ ढा० १ गा० २ में, मुनि वेणीरामजी विरचित ‘भिखु चरित’ ढा० १ गा० ५ में तथा जयाचार्य विरचित लघु भिखु यश रसायन’ में स्वामीजी का जन्म सं० १७८२ लिखा गया है वह जैन गणना क्रम (श्रावणादि) से और जयाचार्य विरचित ‘भिखु जश रसायन’ ढा० १ गा० ६ में सं० १७८३ लिखा गया है, वह विक्रम संवत् (चैत्रादि क्रम से) समझना चाहिए ।

तेरापय में प्रायः श्रावणादि क्रम से सवत् का उल्लेख करने की परम्परा रही है । यही-यही विक्रम संवत् भी मिलता है ।

कमधज (राठीड वशी दानिय) यणनमिहजी अधिगारी थे। स्वामीजी के पिता का नाम शाह बल्लूजी और माता का दीया बाई था। वे जाति में ओवसाल (बड़े साजन) और गीब में सकनेवा थे। आनार्थ भिक्षु जब गर्भ में आये तब उनकी माता ने तेजस्वी गिह का स्थान देगा था।

(वेणी मुनिवृत्त भिक्षु चरित्र वा० १ भा० १ में ५ के आधार से) बपोबृद्ध महात्मा जेपमलजी हैं। उनके पास वशावलि की जो हस्त-लिखित पुरतक है उसमें स्वामीजी की वशावलि इस प्रकार उल्लिखित है।

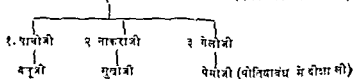
वीरदासजी (बहुत प्रभावशाली हुए)



राजनगर के महात्मा दाख्तालजी के पास वशावलि की एक पुस्तक है, उसमें स्वामीजी की वशावलि का कम अवधिन् अन्तर से इस प्रकार है :—

वर्तमानशाहजी (वीरदासजी के स्थान पर)

गुणोशाह—कपूरजी (दूडिया में दीशा लीधी, ४३ दिन की तपस्या में १३ दिन को सयारो आयी)



होलोजी—भीष्मजी

1. पनेहबदजी 2. रामोजी 3. टीरमजी।

८. पैट के ऊपर तीन रेखा बराबर की ।

९. पैट ऊपर सूटी पागे माथिया को आकार ।

१०. पैट ऊपर घमा की आकार ।

त्रिण रो पल दोय हज्जार बरस लोई नाम रहै ।

इन शारीरिक शुभलक्षणों से स्वामीजी के विराट् व्यक्तित्व का सहस्र विज्ञापन होता है ।

उन शुभ लक्षणों का उत्त्प्रेष शासन प्रभाकर डा० २ के अन्तर्गत दोहा १-२ बल्लभ १ से ३ में भी मिलता है ।

४. स्वामीजी से ही बड़े निपुण और कुशाग्रबुद्धि के धनी थे । महाजनी हिमाचल में बहुत दस थे । पंचापत आदि के कार्य इनने पानुर्य में करने कि जिसका पुरातन पर अच्छा प्रभाव पड़ता ।

५. स्वामीजी के गृहस्थ याग की घटना है कि एक बार बटालिया में किसी धर्मिक के गहनों की खोरी हो गई । तब उसने शांत के गाँव 'खोरनरी' से एक अघे कुम्हार को बुलाया । वह कुम्हार कहा करता था कि मेरे शरीर में देवता आते हैं । अतः उसे गहना चुराने वाले का नाम बचाने के लिए बुलाया गया । कुम्हार दिन में स्वामीजी के पास आया और धपर धपर की बातें कर खोरी के प्रसंग को छेड़ते हुए पूछने लगा—'यहाँ किस पर मदेह किया जाता है ?' स्वामीजी उसकी टंग बिया की समझ गये और बोले—'मदेह तो मजने पर किया जाता है ।'

राग की खोरी बाने के पर लोग एकत्रित हुए । वह कुम्हार भी आया । उसे पूछा गया कि गहने किमने चुराए हैं ? तब अपने पूर्व निश्चय के अनुसार शरीर की अकलना हुआ बोला—'झाल दे रे झाल दे, गहने झाल दे' परन्तु इस तरह बहने से गहने बौन झालना । सोमो ने खोर का नाम बचाने के लिए कहा तब वह लड़कना हुआ बोला—'खोर मजना हूँ उसी ने गहने चुराये हैं ।' घर के मातृक ने कहा—'मजना तो मेरे बहने का नाम है उस पर झूठा आरोप क्यों लगाने हो ?' यह सुन-कर लोग उसके प्रसंग की समझ गए ।

१. अमम विन्यास गया पछे रे साज, साज भाव सुहाय ।

उपरविषा बुद्धि अति घनी रे साज, विविध मेमबै ग्याय ॥

(भिरपु जल० रसायन डा० १ गा० ६)

शाक बर मराजन लनी रे, पड़िया बिद्या लेट ।

'रु' बगल पानुर गता रे साज, उपविषा बुद्धि अट्टे ॥

११. आर्य लनी रे, सब बाप हुमिहार ।

१२. 'रु' ने रे साज, अट्टेजरी अट्टिहार ॥

(रसायन प्रकाशक डा० २ गा० १९, १७)

मृत्यु के बाद होतोजी अलग रहने और भीषणजी माना दीपाजी के साथ रहने थे।

गिरियाजी के उपाधय के महात्मा (मंथरण) स्वामीजी के परिवार में कुल-गुरु माने जाते थे, वे वंशावलिवां रहते थे। स्वामीजी के समय उस उपाधय में महात्मा रूपचन्दजी थे।

३ स्वामीजी का शरीर दीर्घ, वर्ण श्याम, आँखें भाल और गति श्रेष्ठ हाथों के समान थी। अनेक सामुद्रिक शुभ लक्षण थे।

स० १८८८ में आचार्य मिश्र जयपुर पधारे। उम समय वहाँ के समुद्र-शास्त्र वेत्ता पंडित देवकीनन्दनजी बोहरा (शास्त्रज्ञ) ने स्वामीजी के विलक्षण शारीरिक लक्षणों को देखा और उन्हें निश्चय लिया। उनके पास से जयपुर के व्यापक माली-रामजी नूतियां ने उनकी नकल कर ली। उम पत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

१. जीवना पग में उड़द रेखा।
२. जीवना हाथ में मूच्छ के आकारे रेखा।
३. पोंहवा ऊपर तीन रेखा मणिवध की जीवना हाथ में।
४. हाथ की दग अंगुलियों में दस चक्र।
५. गुदी नाड री निण में तीन रेखा लम्बी।
६. लिलाट में तीन रेखा लम्बी।
७. काना ऊपर बाल।

१ भीषणजी स्वामी रा पिता माह बल्लूजी दोय परष्या। पेहली रा होतोजी, फेरदूजी बार परष्या तथा दीपाजी रा भीषणजी। तिण स्यू होतोजी न्याग जुदा रहता।

(मुनि कालूजी [१६३] बडा द्वारा लिखित प्राचीन पत्र बोल सख्या १७)

२. मावली मूरत दीर्घ देह सुविनाल, साल नयण गज हस्ती नी चाल।

(भिक्यु जग० दा० ६ गा० २७)

३ ऋषिराय गुजरा दा ६ दो० ३ में लिखा है कि स्वामीजी अनुमानत स० १८४७ में जयपुर पधारे और वहाँ लगभग बार्स राति रहे।

जय छोय गुजरा विनाग दा० १ दोहा २ में भी स्वामीजी का स० १८४७ में जयपुर पधारने का उल्लेख है।

पशु स० १८४८ फागुन शुक्ला १५ गुरुवार को मुनि भारमलजी ने गवाई जयपुर में 'माधु-अणाचारी' की एक दास (साधवाचार की चउपई डा० २३ 'तीन बोना बरे जीव रे...') की प्रतिलिपि की थी और वे स्वामीजी के साथ थे। इसमें प्रमाणित होना है कि स्वामीजी स० १८४८ के माघीपुर धानुमोंग के पश्चात फागुन महीने में जयपुर पधारे।

८. पेट के ऊपर तीन रेखा बराबर की ।

९. पेट ऊपर सूई पागे मापिया की आकार ।

१०. पेट ऊपर घड़ा की आकार ।

जिन रो फन दोय हजार बरस लाई नाम रहे ।'

इन शारीरिक शुभलक्षणों से स्वामीजी के बिराट व्यक्तित्व का सहज विज्ञापन होता है ।

उक्त शुभ लक्षणों का उल्लेख शासन प्रमाकर डा० २ के अन्तर्गम दोहा १-२ श्लोक १ से ३ में भी मिलता है ।

४. स्वामीजी ने ही बड़े निपुण और कुशाग्रबुद्धि के धनी थे । महाजनी हिमाय में बहुत दक्ष थे । पचासत आदि के कार्य करने चानुर्य से करने कि जितना पुर जन पर अच्छा प्रभाव पड़ता ।'

५. स्वामीजी के गृहस्थ वास की घटना है कि एक बार कश्मिरिया में किसी व्यक्ति के गृहों की चोरी हो गई । तब उसने वास के गांव 'बोरनदी' से एक अधे कुम्हार को बुलाया । वह कुम्हार कहा करता था कि मेरे शरीर में देवता आते हैं । अतः उसे गहना चुराने वाले का नाम बताने के लिए बुलाया गया । कुम्हार दिन में स्वामीजी के पाग आया और इधर उधर की बातें कर चोरी के प्रसंग को छेड़ते हुए पूछने लगा—'यहाँ किस पर मदेह किया जाना है ?' स्वामीजी उसकी ठग विद्या की समझ गये और बोले—'सदेह तो मजने पर किया जाना है ।'

रात को चोरी जाने के घर लोग एकत्रित हुए । वह कुम्हार भी आया । उसे पूछा गया कि गहने कितने चुराए हैं ? तब जाने पूर्व निश्चय के अनुसार शरीर की अकड़ना हुआ बोला—'ढाल दे दे ढाल दे, गहने ढाल दे' परन्तु इस तरह कहने से गहने कौन ढालता । लोगों ने थोर का नाम बताने के लिए कहा तब वह सहजता हुआ बोला—'थोर मजना है उमी ने गहने चुराये हैं ।' घर के मालिक ने कहा—'मजना तो मेरे बकरे का नाम है उस पर झूठा आरोप क्यों लगाते हो ? यह सुनकर लोग उसके प्रपंच की समझ गए ।

१. जन्म कल्याण तथा पछे रे लाल, बाल भाव भूकाय ।

उत्पत्तिवा बुद्धि अति धनी रे लाल, विविध भेनवै न्याय ॥

(भिक्षु जश० रसायण डा० १ गा० ९)

बालक वय महाजन लणी रे, पढ़िया विद्या सेह ।

वाक्य बना चानुर धणा रे लाल, उत्पत्तिवा बुद्धि अछेह ॥

ममारिब दाता लणा रे, सर्व वयम हृसियार ।

पच पंचायन माहि मे रे लाल, अपेशरी अधिकार ॥

माधोजी ने कहा कि कुम्हार ने हुई बात को सुनाते हुए कहा—'तुम सोचो कि कुम्हार ने यदि ही जो लोगों का जो कुम्हार ने सोचने का पता है और कुम्हार ने ही जो ही के ही में मिल सकते हैं।'

इस जालमय स्थिति में ने कुम्हार की दोन गीत कर मारे गांव को उगले दम में डाल दिया।

(भारत दुःशास्त्र १०१)

[illegible]

(1947-48 3rd yr 1st sem)

[illegible]

(1997)

[illegible]

(1) $\mathcal{F}_1 \subset \mathcal{F}_2 \subset \dots \subset \mathcal{F}_n \subset \dots$

स्वामीजी संयम ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए तब माता की मुख्यवरणा के लिए उन्होंने जमीन जायदाद के अतिरिक्त एक हजार नगद रपया अपनी माता को दिया। उस समय के भावों को देखते हुए वह रकम एक अच्छी खासी बही जा सकती थी।

वि० सं० १८०८ में मारवाड़ में वस्तुओं के जो भाव थे, उसका पता तो नहीं लगा। पर वि० सं० १८४३ की पुरानी बही में कच्चे मन (२० सेर = ४१ पौंड लगभग) के आधार पर वस्तुओं के भाव यो दिये गये हैं —

| वस्तु | तोल | मूल्य |
|-------|--------|----------------------------|
| गेहूँ | १ मन | १२ आना |
| भूग | " | " |
| तिल | " | ६ " |
| चना | " | ८॥ आना |
| जुरा | " | ४ " |
| कपाम | " | १ रुपया (१६ आने = ६४ पैसे) |
| दाल | " | " |
| बाजरा | " | " |
| गुड | " | २॥ आना |
| घी | १ सेर | ११ पैसे |
| मूत | ३ छटोक | |

सं० १८६६ की बही में भाव प्राप्त हुए, उससे पता लगता है कि वस्तुएं क्रमशः महंगी होती गई।

| वस्तु | मूल्य |
|-------|----------|
| गेहूँ | १ मन |
| भूग | " |
| मोठ | " |
| चना | " |
| घी | १ सेर |
| | ११ रुपया |
| | १ रुपया |
| | १४ आना |
| | १३॥ आना |
| | ८ आना |

१. दिना नै ह्यारी बया रे साल, अनुमति न दियै माय।
रुपनायजी नै इम कसो रे साल, मूँ तिह मुपन देखाय।
तब बोल्या रुपनायजी रे साल, सांभल बाई बाय।
तिह तणी परि गूजगी रे साल, ए मुपनों छै चबदा माय।
अनुमति मा आपी लदा रे साल, सहस रोकड उन्मान।
भिकर दिया जननी भणी रे साल, थारित लेदा ध्यान।

(भिकरु जश० २० का० १ गा० १६, १७, १८)

तक समय ग्रहण नहीं कर पाता तब तक स्थानान्तरण नहीं किया जाता।

कुछ समय पश्चात् स्त्री का विधोष हो गया तब स्वामीजी ने श्रीधामिनीजी की दीक्षा लेने की तैयारी कर ली।

११ स्वामीजी का जब दीक्षा लेने का विचार हुआ तब उन्होंने अपनी आज्ञा-माइश के लिए कैंरा का ओगाया हुआ (कैंरा उखाल कर जो जल निहाल दिया जाता है) जल एक तावे के सोटे में डाल कर हड्डियों की जेठ में रख दिया। बहुत देर बाद उसे निकालकर दिया तो बड़ा बन्दूआ और बेगुनार लगा। मन में सोचने लगे—‘साधु जीवन इतना कठिन है तब ही तो उसमें मुक्ति मिलती है।’

नई दीक्षा लेने के पश्चात् म० १८५१ में हेमराजजी स्वामी (उस समय गुरुस्य थे) ने इस घटना का उल्लेख करते हुए स्वामीजी ने कहा था—‘साधु बनने के बाद आज तक धमा नीरस जल पीने का काम नहीं पड़ा।’

इस प्रकार उन्होंने परीक्षण के रूप में अनेक प्रयोग किये और अपनी आत्मा को तोलकर देखा। (भिवरू दृष्टांत १०७)

१२ स्वामीजी दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए तब उनकी बुआ ने भय दिखाते हुए कहा कि यदि तुम दीक्षा लोगे तो मैं पेट में कटारी खाकर मर जाऊंगी। तब उन्होंने निर्भयतापूर्वक अपनी बुआ में कहा—कटारी क्या कोई पूछी है कि की उमे (कातने के लिए बनाई गई रुई की लच्छी) पेट में मार ले। ऐसी व्यर्थ की बातों से मुझे अटकाने का प्रयास करना निरर्थक है।

(भिवरू दृष्टांत २४०)

१३ स्वामीजी ने अपनी जननी से दीक्षा की अनुमति मांगी तब वे इन्कार ही गई। इसके लिए स्वयं आचार्य रूपनाथजी दीपावार्द को समझाने लगे। दीपावार्द ने कहा—‘मैंने सिंह का स्वप्न देखा है, अब यह बंभवशाली पुत्र होगा। मैं अपने होतहार पुत्र को दीक्षा की अनुमति कैसे दे सकती हूँ?’

आचार्य रूपनाथजी बोले—‘बहन! तुम्हारा स्वप्न मिथ्या नहीं होगा। यह साधु बनकर जैन शासन की प्रभावना करता हुआ सिंह की तरह गुजेगा।’

इस प्रकार समझाने से माता ने सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी।

१. काल कितो क बीता पछै रे साल सोल आदरियो सार।

भिवरू नें तसु भारज्या रे लाल चारित्र नी चित्त धार।

सेवा सजम त्या लगी रे साल एकान्तर अवधार।

अभिग्रह एहवो आदरयो रे साल विरक्तपणै सुविचार॥

(भिवरू जग० २० वा० १ गा० १३, १४)

२. तडा पछै श्रिया तणो रे पडियो साम विजोग।

कर सगणन मिलता बहु रे लाल भिवरू न वध्या भोग।

दिशा नें थारी घया रे साल... (भिवरू जग० वा० १ गा० १५, १६)

उस समय आचार्य स्थनाथजी मारदार में थे, उन्हें इस बात का पता लगा तब उन्होंने अपने बुद्धिमान् शिष्य भीष्मणजी को उन थावकों की शका भिटाने के लिए राजनगर भेजा। साथ में अन्य साधु-टोकरजी (४) हरनाथजी (५) वीर-माणजी (६) और भारीपालजी (७) थे।

स्वामीजी ने गुरु आदेश को शिरोधार्य कर म० १८१५ का चानुमांग राज-नगर में किया।^१

स्वामीजी ने वहाँ के प्रमुख भट्ठासु चतुरोजी पोरवाल के पुत्र ब्रजलालजी और लालजी तथा पौत्र जवेरचंदजी (ब्रजलालजी के पुत्र), जो धर्म के अष्टछे धर्मज्ञ थे, को वाक् चतुर्यं से गमनाया और गुरु की विचार धारा के अनुसार जवाब दिया। थावकों ने कहा—‘आप वैरागी हैं, आपका पूर्ण विश्वास है, अतः आपको वन्दना करते हैं पर हमारी शकाए निरस्त नहीं हुई है।’

१. मुरघर में स्थनाथजी, सामलो सहू बात।
भिक्षु नै तिहाँ भेजिया, सका भेटण साधरात।
बुद्धिवन विण भ्रम ना मिटै, तिण सू ये बुद्धिमान्।
जाय सका भेटो जेहनीं, हम कहि भेल्या से स्थान।
टोकरजी हरनाथजी, वीरमाणजी साथ।
भिक्षु शिष भारीपालजी, दिशा दी निज हाथ।
ऐ साथ तेई भिक्षु आविया, राजनगर मसार।
सक् अटारै पनरै मगै, सोमागो गुणकार॥
(भिक्षु जश० २० दा० २ गा० ३ से ६)

२. कला विविध केजनी करी, त्यान पया लगाया।
ते कहै सक मिटी नही, पिण निमुगो मुझ बाया।
आप वैरागी बुद्धिमत छो, आप री परतीत।
तिण कारण वन्दना करा, आप जगल में वदीत॥
(भिक्षु० जश० २० २ दा० २ गा० ११, १२)

उक्त थावकों के सवध में ‘पाणेराम’ के महादमा मागीलालजी के पोथे में लिखी गई पोरवाल वणाबलि के अनुसार चतुरोजी के चार पुत्र—तिलोकजी, मूरजमलजी, ब्रजलालजी और लालजी थे। ब्रजलालजी के दो पुत्र—जवेरचंदजी और लिखमीचंदजी थे।

वहाँ ऐसा भी लिखा है कि राजनगर में ओसवालों की अपेक्षा पोरवालों का आधिक्य था। बालान्तर में वे सब व्यापारियों उदयपुर, गोमुदा, साधरा में चले गये।

इस समय राजनगर में प्रायः ओसवालों के ही घर हैं, पोरवालों का केवल एक घर है।

१४ बगलो घोग्गवो रि० म० १८०८ मुगगर यदि १२ को बगो मे
बगवो घोग्गवो के पम दी। [१८०८]

इसका विचार करके वह मेरे पिताजी की हँसी भिन्न होती है।

१३ गाम्भीरी की बुद्ध गीतग और सङ्ग-गति प्रवच थी। आचार्य गम्भीरी के मार्ग-दर्श में उन्होंने छोटे दिनों में ही अनेक ग्रन्थों का वाचन कर उच्चतर ज्ञान प्राप्त कर लिया। भिक्षु, आचार्य एवं दान दान आदि मूलभूत गानों को हृदयगत कर आचार्यता बन गये। उनके मन में विचार आया कि भविष्य देश के विकासमें यह बुद्ध मार्ग का वाचन नहीं किया जा रहा है।

१-३ साहू अपने स्वार्थित और अत्याचारी स्वभाव के रहते हैं।

१. मनु के विहित मंत्र की गई वस्तु का उपयोग करो ।

१. निम्नलिखित के लिए निम्नलिखित में से एक चुनिए।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः अष्टादशोऽध्यायः ॥

१. काल विच्छेद को रसा विच्छेद ही अयोग्य अस्ति को दीक्षा

→ जन्म-मरण चक्र से निवृत्ति के लिए योग्य होना है।

[illegible][illegible]

^१ (कन्य भय मः दृष्टः न शीतः इ मे ह मे अभासते)

[illegible]

(२५५)

३. स० १८११ बलुन्दा ।

४. " १८१२ जेतारण ।

५. " १८१३ बागौर ।

६. " १८१४ सादडी ।

७. " १८१५ राजनगर ।

८. " १८१६ जोधपुर ।

स० १८१६ के जोधपुर चालुर्मास के पश्चात् स्वामीजी का आचार्य रुघनाथ जी से बगडी (भारवाड) में दूसरी बार मिलन हुआ । उन्होंने अपनी विचारधारा प्रस्तुत करते हुए शुद्ध श्रद्धा व आचार को स्वीकार करने के लिए कहा तथा भरसक प्रयास भी किया । पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया तब स्वामीजी ने आचार्य रुघनाथजी से आहार-पानी का सम्बन्ध विच्छेद कर लिया ।

(भिक्षु जश० २० डा० ४ गा० २२ से २५ के आधार से)

२१. स० १८१६ (वि० स० १८१७) चैत्र शुक्ला ६ को बगडी में स्वामीजी आदि पाँच साधुओं (स्वामीजी, टोकरजी, हरनाथजी, बीरमाणजी और भारीमाल जी) ने स्यानक का परि त्याग किया ।

स्वामीजी के अभिनिष्क्रमण के समय रामनवमी का भगल दिन मंगल-सूचना लेकर आ गया और सत्य धर्म की नई दुकान का शुभारम्भ स्वतः हो गया ।

उक्त तिथि चैत्र शुक्ला ६ का भिक्षु चरित्र, भिक्षु यश रामायण आदि मूल मूल ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता पर परम्पर-श्रुति के अनुसार पुष्ट एवं प्रमाणित है । स० १८१५ को राजनगर चालुर्मास के प्रारम्भ से स० १८१५ आपाड़ पूर्णिमा तक स्वामीजी को द्रव्य गुरु आदि को समझाने में दो वर्ष करीब लग गए ।

रुपात तथा शासनप्रभाकर में दो वर्ष से अधिक (दो वर्ष जास्ता) कहा है ।^१

स्वामीजी स्यानक को छोड़कर रवाना हुए पर सेवग द्वारा निषेध करवाने से शहर में ठहरने के लिए जगह नहीं मिली तब स्वामीजी ने वहाँ से विहार किया । यही रात्र के बाहर पहुँचे कि जोर से आधी आने लग गई । तेज आधी में विहार करना उचित न समझकर वे श्मशान स्थल पर जेतसिंहजी की छतरी में ठहर गए ।

(भिक्षु जश० २० डा० ५ दो० १ से ८ के आधार से)

२२. स्वामीजी के पृथक् होने से आचार्य रुघनाथजी बहुत चिंतित हुए और श्रावक लोगों को साथ लेकर छतरियों में पहुँचे । उन्होंने स्वामीजी से कहा... 'तुम टोने को छोड़कर मत जाओ इस पथम कलिबाल में इस प्रकार निभ नहीं सकोगे, अतः मेरी बात को मानो ।'

१. दोष वर्ष के आसरे किया अनेक उपाय ।

केतलायक न समझायवा, द्रव्य गुरु न पिण ताया ।।

(लघु भिक्षु ज० २० डा० २ गा० ३१)

स्वामीजी बोले— 'तुम तो जो कहना चाहिये वह कहना है कि यह कि प्रकृत रूप 'मीने' इस गुण के अन्तर्गत होगा और मैं मुझ भाग्य की मज्जा करूँगा।'

यह सुनते ही उसकी 'गला टूट गई और मोहनजी भाँपे भर आई। उस समय सामन्ती के शेर के साथ उद्भाषत्री (उसके भाग में थे) ने कहा— 'आज टोने के नाशक बटवारे हैं जो फिर प्रकृति की भाँपों में आँखें खोले जा रहे हैं?' वे बोले— 'किन्हीं का एक भी साथ चला जाता है तो उसे दुष्ट होता है। मेरे तो एक साथ ३ साथ चला रहे हैं, क्रियान्तरण में संतुलन रहता है, इसलिए मुझे अधिक वेद हो रहा है।'

दुःख की मोलानमक मार में स्वामीजी अपने लक्षण से विचलित नहीं हुए। उन्होंने सोचा— 'मैंने दीक्षा भी ली है मेरी माँ ने बहुत धन दिया था तो इसी समता में साथ मार्ग छोड़कर पापम इनसे नाशित हो जाऊँ तो मुझे परलोक में विविध सुखों का उदयनी पड़ेगी।'

(भिक्षु जग० २० डा० ५ दो० १ गा० १ मे १० के आधार से)

जब उनके सामान्यक वक्तों का स्वामीजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब उन्होंने भय दिखाने हुए स्वामीजी से कहा— 'देखो! तुम त्रिज-त्रिज शेरों में आगे-आगे जाओगे, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आऊँगा और लोगों के द्वारा भरतक विरोध छड़ा करवाऊँगा तब तुम्हारी स्थिति विषम और दयनीय बन जायेगी।' स्वामीजी बोले— 'मैं इस प्रकार की बातों से डरने वाला नहीं हूँ। मेरे मे सही प्रकार के परिपक्व सहने की क्षमता है अतः मेरा मार्ग स्वतः प्रगट होता जायेगा।'

१. एक वन सुणी द्रव्य गुण भगी रे, लूटी आग निवार।

मोह बायो निग अवगरे रे, चिन्ता हुई अवार ॥

सामन्ती श्रुत नो साध धो रे, उद्भाष कहे एम।

टोना तणा धनी वाज न रे, आसुपच करो केम ॥

किण रो एक जावँ तरँ रे, आवँ किकर अवार।

महारा पाच जावँ तरँ रे, मण में पटे वधार ॥

(भिक्षु जग० २० डा० ५ गा० ५, ६, ७)

२. द्वेप स्यू तुरत नर ना हिमँ रे, राग दै तुरत चलाय।

द्रव्य गुण मोह बायो सही पिण कारी न लागी काय।

फेर बोन्पा दयनायत्री रे, जामी कितियक दूर।

आगो पारो नै पूटो माहुरों रे, लोक लगावमँ पूर।

परीपह धमण रो मुझ मन मर्त रे, भिक्षु भायँ विशाल।

इस तो डरायो नहीं डरु रे, जीवणु जितोएक काल।

(भिक्षु जग० २० डा० ५ गा० ११, १२, १३)

२३. स्वामीजी बगड़ी से बिहार कर बड़लू पधारे । आचार्य रघनाथजी भी उनके पीछे-पीछे बड़लू आये । वहाँ फिर हटकर चर्चा हुई । रघनाथजी ने कहा— 'अभी दु पम बाल में बल, सहनन आदि हीन हो रहे हैं अतः शुद्ध समय नहीं पाला जा सकता ।'

स्वामीजी— जो शिदिनाचारो एव पुरपार्थ होन होंगे वे ही ऐसा कहेंगे कि इन काल में बल, सहनन आदि हीन हो रहे हैं अतः शुद्ध समय नहीं पाला जा सकता ।' ऐसा जिन भगवान् ने आचारांग सूत्र में कहा है ।'

रघनाथजी— 'इस समय यदि कोई साधु केवल दो घड़ी एकाग्र चित्त से शुद्ध चारित्र्य का पालन कर लेता है, उसे केवल ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।'

स्वामीजी— 'अगर ऐसा है तो मैं दो घड़ी तक ब्रवात रोककर भी शुद्ध ध्यान कर सकता हूँ । भगवान् महावीर के दूसरे पट्टधर जम्बू स्वामी (केवली) के बाद प्रभव स्वामी और शम्भुज स्वामी आदि को तथा साग सौ केवलज्ञानी साधुओं के अतिरिक्त शेष साधुओं को एव स्वयं बर्द्धमान को छत्रस्थावस्था में केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ था, तो क्या उन्होंने दो घड़ी के लिए भी शुद्ध समय का पालन नहीं किया ?'

इस प्रकार परस्पर में विविध चर्चाएँ चभी पर कोई निष्कर्ष नहीं निकला ।

(भिक्षु जश डा० ५ गा० १४ से २६ के आधार से)

२४ स्वामीजी मृत्यु की परवाह न करते हुए दूढ़ आम्षा, दूढ़ सकल्प व अपूर्व साहस से प्रभु के पद चिह्नों पर चलने के लिए बटिवद्ध हो गए । उनके इस शौर्य के लिए जयाचार्य लिखते हैं :—

भारी गुण भिक्षु तणा, कहा कटा लग जाय ।

मरण धार भूद मग लियो, कुमिय न राखी काय ॥

(भिक्षु जश० डा० १० दो० १)

२५. बड़लू से बिहार कर स्वामीजी जोधपुर पधारे ।^१ बीच के किसी ग्राम में स्वामीजी का जयमलजी से मिलन हुआ । सारी स्थिति उनके सम्मुख रख दी गई ।^२ परब्रह्म आचार्य जयमलजी के शिष्य मुनि विरपालजी आदि छह साधु

१. आचारांग प्रथम श्रुत अध्यायन ६ उद्देशक ४ ।

२. बरलू सू कीघो बिहार, आया जोघाणा सँहर मझार ।

उठे तेरे भाया पोमा किया ए ॥

(नाडोल निवासी थावक गिरधरजी कृत पूजगुणी की डा० २ गा० ३०)

३. जयमलजी से मिलन कहाँ हुआ इसका प्रमाण तो नहीं मिलता पर जयमलजी का बिहार क्षेत्र, गाँधी, जोधपुर, बीलाडा तथा उनके चोतरफ के क्षेत्र ही प्रमुख रूप से रहे हैं, अतः यह मिलन उन्हीं में से किसी एक क्षेत्र में हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है ।

स्वामीजी के साथ गई दीक्षा लेने के लिए कटिबद्ध हुए। जयमलजी का स्वामीजी के विचारों के साथ सामंजस्य होने पर भी आचार्य रुपनाथजी के दबाव से वे वैसा नहीं कर सके।

मिश्र यश रसायण दा० ६ गा० १ से ६ में 'दृष्टान्त १३' की तथा बाद की घटना का वर्णन साथ में ही किया गया मालूम देता है।

स्वामीजी आदि ५ रुपनाथजी के टोले के, धिरपालजी आदि ६ जयमलजी के टोले के तथा अन्य टोले (संभवतः सामदासजी) के दो साधु और मिलने से कुल तेरह की संख्या हो गई।

तेरह साधुओं के नाम इस प्रकार हैं—

रुपनाथजी के टोले के—

१. स्वामी भीखणजी
२. वीरमाणजी
६. टोकरजी
४. हरनाथजी
५. भारमलजी

जयमलजी के टोले के —

१. धिरपालजी
२. फतेहचन्दजी
३. लिखीमचन्दजी
४. वज्रतरामजी
५. गुलाबजी
६. भारमलजी (दूमरे)

अन्य टोले के —

१. रुपचन्दजी
२. पैमराजजी

(भिक्षु जल० दा० ८ गा० ३ ले ७)

२६. स्वामी भीखणजी आदि तेरह साधु जोधपुर पधारकर बाजार के बीच एक दुकान में ठहरे। वहाँ उन्होंने गेहलालजी स्वाम आदि अनेक श्रद्धालुओं को

१. स्वामीजी जोधपुर पधारे उस समय तेरह साधु थे, ऐसा भिक्षु यश रसायण दा० ७ गा० १ के तथा रुपाय के उल्लेख से तो स्पष्ट स्वतंत्र नहीं होता, पर शासन-प्रभाव में स्पष्ट है।

जिन जोधपुर नगरे आय नै रे, बाजार में दुकान में उतरया स्वाम।

आय सहित हुआ निमै रे माय, तेरा मन अभिराम॥

(शासन-प्रभाव दा० २ गा० ७१)

समझाया ।' गेरुनालजी स्वामीजी के प्रथम श्रावक बने । स्वामीजी ने कुछ ही दिनों में वहाँ नई ज़ानि का सूत्रपान कर दिया ।

२७. स्वामीजी जोधपुर से विहार कर विलाडा पधारे ।' वहाँ भारीमालजी स्वामीजी के पिता किसनोजी आये । उन्होंने अपने पुत्र भारीमालजी के साथ ही स्वानकवामी सम्प्रदाय में स्वामीजी के पास दीक्षा ली थी और उस समय वे अन्य साधुओं के साथ विचरते थे । उन्होंने स्वामीजी से सम्मिलित करने के लिए कहा पर कठोर प्रवृत्ति होने के कारण स्वामीजी ने उन्हें शामिल नहीं किया । तब वे अपने पुत्र भारीमालजी को उठाकर ले गये । किन्तु उनके हाथ से भारीमालजी ने दो दिन तक आहार-पानी नहीं लिया । आश्विन तीसरे दिन किसनोजी ने भारीमालजी को सुपुर्न करने हुए स्वामीजी से कहा—'मेरा भी कुछ ठिकाना कर दीजिए ।' विलक्षण-बुद्धि स्वामीजी ने उन्हें जयमलजी को सोप कर तीनों घरों में 'बधावा' (आनंद) कर दिया ।'

(भिक्षु जग० ६ तथा भिक्षु दृष्टान्त २०२ के आधार से)

स्वामीजी वहाँ से काठे के क्षेत्रों का स्वर्ण करते हुए मेवाड की तरफ आगे बढ़े । चातुर्मास का समय निकट समझकर सहयोगी साधुओं को अमुक-अमुक स्थानों में चातुर्मास करने का तथा आपादी पूर्णिमा को नई दीक्षा ग्रहण करने का निर्देश दे दिया । साथ में यह भी सूचित कर दिया कि कई बोलों की चर्चा तो कर ली है और कुछ बाकी है, अब चातुर्मास के बाद मिलने पर थोड़ा ब आचार का

१. निहा गेरुनालजी व्यास आदि दे रे, अन्य भाया पिण जाण ।

तेरे जणा नै समझाय नै रे, श्रावक करी नै अन्यत्र विहराण ॥

(भासनप्रभाकर डा० २ गा० ७२)

२ भारीमाल चरित डा० १ गा० ६ में तथा भिक्षु दृष्टान्त २०२ में 'बीलाडा' की जगह 'भीलोडा' लिखा है—'विचरत-विचरत आविया, शहर भीलोडा मत्तार ।' 'भीलोडा' में भारमलजी स्वामी ने कहा ।'

इससे मेवाड के प्रसिद्ध नगर भीलवाडा का भ्रम हो सकता है पर स्वामीजी उस समय मारवाड में विहार कर रहे थे अतः उपर्युक्त नाम 'बीलाडा' (मारवाड) ही समझना चाहिए जो जोधपुर के लगभग ४२ मील दूर दक्षिण पूर्व में है ।

३. जैमलजी बोल्या तिन बारी, देखो भीखणजी री बुद्धि भारी ।

सूप्यो किमनोजी म्हाने सोप, तीना घरा बधावणा होय । मु०॥

किमनो हरप्यो ठिकाने हू आयो, म्है पिण हरप्या चेनो एर पायो ।

भिक्षु हरप्या टलिपो ओगालो, तीना घरा बधावणा न्हालो । मु०॥

(भिक्षु जग० डा० ६ गा० १६, १७)

मिलान होगा तो हम शामिन रहेंगे, अन्यथा हमारा सम्बन्ध नहीं रह सकेगा।'
(मिश्र जग ६० ८ दो० ८, ९ गा० १, २ के आधार में)

पुर (मेवाड़) के महात्मा सोहनलालजी के पास में प्राप्त प्राचीन पत्रों में इस मन्दमं में निम्नोक्त उल्लेख मिलता है —

'तेरह ही साधु राजनगर (मेवाड़) में सम्मिलित हुए। सबने नई दीक्षा लेने का निर्णय किया। पहले हमारे में न तो मच्छी श्रद्धा थी न चारित्र्य। छोटे-बड़ों का प्रेम पहले की तरह ही रखा। सबमें बड़े रूपचन्दजी रहे। आचार्य पद पर स्वामीजी को नियुक्त किया। जहां चानुर्माण करें वहां आपाड़ शुक्ला १५ को पुन पंच महाग्रन्थ स्वीकार करने के लिए कहा गया। फिर इन स्थानों में चानुर्माण किये।

स्वामी भीष्मजी ने ५ ठाणों से बेलवा।

रूपचन्दजी बखतमलजी ने ४ ठाणों से बूदी।

विरपालजी फनेहचन्दजी (ठाणों तथा स्थान का पत्र में उल्लेख नहीं है पर चार ठहरते हैं।)

उन पत्रों में एक विशेष बात यह लिखी है कि जयमलजी के शिष्य विरपालजी, बखतमलजी, फनेहचन्दजी, भारमलजी इन चार साधुओं ने स० १८१४ का राजनगर चानुर्माण किया। वहां उन्होंने मच्छी श्रद्धा अभिव्यक्त की — 'नौ तत्त्वों के ज्ञान के बिना सम्पत्त्य नहीं, सम्पत्त्य के बिना साधुत्व और श्रावकत्व नहीं। केवलज्ञानी की आज्ञा के बाहर धर्म नहीं। धर्म में धर्म, अग्रन में पाप। मोह-अनु-बन्ध में पाप।' जयमलजी ने जब यह सुना तो उनको उस प्रवृत्ति के लिए उलाहना दिया।

स्वामीजी ने स० १८१५ में राजनगर चानुर्माण किया। वहां आगमों का वाचन करना प्रारम्भ किया। कई भाई भी सुनने लगे। एक दिन एक मन्दिर मार्गी भाई घरपोत्री ग्राटेक तथा लालजी पोरवाल ने स्वामीजी से कहा — 'विशेष ध्यान पूर्ण सुत्रों का पठन करवाए।' जब स्वामीजी ने पूर्ण उपयोग एवं मनन पूर्णक सूत्र पढ़े तब उनके भी बड़ी श्रद्धा हृदयगत हो गई। स्वामीजी ने मोखा — 'हमारे में साधुत्व नहीं है, केवल साधु का वेप है। अब मुझे जीवन को व्यर्थ नहीं खोना है। श्रीगुरुदेव गुरु के गमीय जाकर कहना है कि मिट्टान्तानुसार गुरु श्रद्धा व

१ मिश्र मुद्र मृ १५ मर्ण, मुनिन्द मोरा चोमामो उतरवा जाण हो।

गरथा आचार मोठ्या पठै, मु० भेवी करस्या आहार पाण हो।

ओ गरथा आचार मित्री नहीं, मु० तो भेवी न करा आहार हो।

२५ वैद्व्या समजाविद्या, मु० आपा देग मेवाड हो॥

(मिश्र जग ६० ८ गा० १, २)

आचार का पालन करें।

ऐसा विचारकर चानुमांस के बाद राजनगर में बिहार किया और मोजत में आचार्य रघुनाथजी से मिलकर अपनी भावना रखी। आखिर विचारों की सगति न होने से बयड़ी में पृथक् हो गए। इत्यादि...

सं० १८१६ में रघुचन्दजी आदि साधुओं ने राजनगर चानुमांस किया। उनके हृदय में भी उपर्युक्त श्रद्धा जम गई।

इस प्रकार राजनगर में सं० १८१४ में थिरपालजी आदि, सं० १८१५ में स्वामीजी आदि एवं १८१६ में रघुचन्दजी आदि ने चानुमांस किया।

सयोग ऐसा मिला कि नई दीक्षा स्वीकार करने वाले १३ साधु प्रायशः घुण-क्षर न्याय की तरह राजनगर चानुमांस करने वाले ही मिले।

२८. स्वामीजी जब जोधपुर में चले तब यह निर्णय करके ही चले थे कि मुझे जिन-भाषित पथ पर चलना है। कोई साधी बने या न बने, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपने समूह का कोई नया नाम भी नहीं दिया।

एक दिन जोधपुर के तेरह श्रावक बाजार के मध्य एक दुकान में बैठकर सामायिक (एक मुहूर्त के लिए सावध प्रवृत्ति का त्याग) पोषध (एक दिन रात के लिए सावध प्रवृत्ति का त्याग) आदि धार्मिक अनुष्ठान कर रहे थे। उस दिन दीवान फर्गमलजी का उधर से निकलना हुआ। उन्होंने बाजार के चौहाटे पर श्रावकों को सामायिक आदि करते हुए देखा तो उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। वे नजदीक आकर पूछने लगे—'आप लोगो ने आज स्थानक में सामायिक न करके दुकान में कैसे की है?'

श्रावकों ने आचार्य रघुनाथजी से स्वामी भीष्मजी के पृथक् होने की मारी बात सुनाई तथा अनेक मतभेदों के साथ स्थानक के विषय में भी स्वामीजी के विचार बतलाये।

दीवानजी श्रावकों के मुख से सब वृत्तान्त को सुनकर बहुत सतुष्ट हुए और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। दीवानजी ने जिज्ञासा की मुद्रा में पूछा—आप

१. सिधीजी सं० १७६३ से सं० १८३३ तक जोधपुर राज्य के दीवान थे। उनका नाम यद्यपि फतहचन्दजी लिखा मिलता है पर वस्तुतः वह फतहमलजी ही होना चाहिए। जोधपुर में समानान्त नाम देने की पद्धति चालू रही है। अब तक भी वहां काफ़ी रूप में चालू है। मानमलजी मिथी आदि उनके वंशधर 'मल्लोन' ही रहे हैं।

२. तब थानक मन बिर कियो, मुझ गुरु महिमावन !

भीक्यु ऋष भारी भणा, परहर दियो कुपय ॥

(प्रियम्बु जषा० दा० ७ दो० ५)

कितने थावक है ? थावको ने उत्तर दिया—तेरह । दीवानजी यह सुनकर बोले—
यह अच्छा सयोग मिला कि तेरह ही थावक और तेरह ही माधु ।

उम समय पास में खड़े हुए एक मेवरु जानि के कवि ने इस प्रसंग को सुनकर
एक दोहा जोड़ दिया ।

साध-साध रो गिलो करै, ते तो आप आपरो मत ।

मुण्णयो रे सैहर रा लोका, ए तेरापयी तन ॥

इस प्रकार स्वामीजी का सच स्वतः ही तेरापयी नाम से प्रसिद्ध हो गया ।

स्वामीजी ने जोधपुर से 'बीलाडा' की तरफ बिहार किया था । नामकरण के
समय वे सभवन बीलाडा आदि मारवाड़ के किमी क्षेत्र में थे । उन्होंने जब यह
नामकरण की उक्त मारी घटना को सुना तो तत्काल आमन से नीचे उतर कर
अरिहत देव को वदना करते हुए अपनी प्रत्युत्पन्न बुद्धि में तेरापय का अर्थ
किया—'हे प्रभो ! तेरापय, अर्थात् हे प्रभो ! यह तुम्हारा (आपका) पय है, इस
सब उम पर खजने वाले तेरापयी है ।'

दूसरा अर्थ यह भी किया कि पाच महाजन, पच समिति और तीन गुप्ति—
इन तेरह नियमों का पालन करने वाला तेरापयी कहलाता है ।

(मित्रजु जग० दा० ७ दो० २ से ६ तथा गा० १ मे ७)

स्वामीजी ने उम समय निम्नोक्त दो छन्द रचकर फरमाये ।

मित्र कृत छन्द

एग बिन भेद्य कू मूल न मानत जीव अजीव का किया निवेरा ।

पुन्य पाप कू भिन्न भिन्न ज्ञानन आवर कर्मा कू तेन उरेरा ।

अवता कर्मा नै गहर रोजन निबेरा कर्मा कू देन बिबेरा ।

बय ता जीव कू ब्रिषा रागन मानता गुण तो मोक्ष में डेरा ।

इसी धर प्रकाश किया भव जीव का मेढ़ा निध्यान अघेरा ।

नियन जान उद्योग किया अ तो है पय प्रभु तेरा ही तेरा ॥

जैन सी लखत पायड जगन में थी बिन धर्म सू सर्व अनेरा ।

इच्छा-नको रूढ़ माय कटावन त्यागिन पकट्या त्यारा इव केरा ।

न-रि कू दुर लखे ते मन बिड सू उदरेग दिया दरेरा ।

हिन अन्धम और प्रमाण किया उर पायड पय में पदिया बिबेरा ।

पय अरुन दन दता वनवन मावन निरवद कवन बिबेरा ।

ओ बिन अन्धम माय धर्म वनवन नै तो है पय प्रभु तेरा ही तेरा ॥

२१ २२ दो० १ न मारवाड़ में मेरा हमे पदार्थ कर आता थातुमान 'देव'।

थी।' उसी आधार पर ज्योतिषियों ने तेरापंग की जन्म-कण्डली तैयार की, वह निम्न प्रकार है —

विक्रम सं० १८१७ आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा इष्ट ३१३६ समय ७।२५ माय-
काल तदनुसार सन् १७६०, १ जुलाई मनिवार, केलवा नगर।

ग्रहस्थिति —

| | | |
|--------|---------------|-------|
| ११ वृ० | १० | ८ के० |
| | ६ चं० | ७ |
| १२ श० | | ६ मं० |
| १ | ३ सू० शु० बु० | ५ |
| २ रा० | | ४ |

३० प्रथम चातुर्मास केलवा में स्वामीजी की ठहरने के लिए विपक्षी लोगो ने 'अधेरी ओरी' वाले (जहाँ न हवा और न प्रकाश) एक जैन मंदिर का स्थान बताया। वह इतना भयानक था कि रात्रि में कोई मनुष्य वहाँ रह जाए तो सुबह बचकर बाहर नहीं आ सकता। सम्भवत उन्होंने 'साप भी मर जाय और लकड़ी भी न टूटे' वाली कहावत को चरितार्थ करने के लिए वह स्थान बतलाया था।

स्वामीजी सानंद वहाँ पर ठहरे। दिन निर्विघ्नता से व्यतीत हुआ। रात्रि के समय देव-वृत्त उपसर्ग हुआ। बाल साधु भारीमालजी जब परिष्ठापन के लिए बाहर गए तब एक सर्प उनके पैर में लिपट गया। वे निर्भय होकर खड़े हो गए।

१. कश्चिद् ऐसा भी कहा जाता है कि पूर्णिमा के प्रातः काल उपवास का पारणा करने से पूर्व स्वामीजी ने भाव-दीक्षा ग्रहण की थी।
२. यह मंदिर भगवान् चंद्रप्रभ का है। इसमें एक शिलालेख भी है जिसके अनुसार हमका निर्माण काय सं० १०२३ आषाढ़ शुक्ला तृतीया है। अब उस अधेरी ओरी को गुंघार कर ठीक कर दिया है अब वहाँ अंधेरा नहीं रहा।

कुछ समय तक वापस नहीं आये तब स्वामीजी दरवाजे पर आकर बोले—
'भारीमाल ! बाहर क्यों खड़ा है ?' वे बोले — 'स्वामिन् ! पैर में सर्प लिपट रहा है।' स्वामीजी ने नजदोक्त आकर मंगल मंत्र सुनाया कि सर्प उतर कर चला गया। भारीमालजी स्वामी को अन्दर लाकर मुला दिये। स्वयं ध्यान-स्वाध्याय में मग्न होकर विराजे रहे। अकस्मात् एक दिव्य पुरुष (यक्ष) प्रकट हुआ। स्वामीजी ने उसे देखा पर मौन रहे। उसने कहा—'महाराज ! मैं मनुष्य नहीं हूँ।' स्वामीजी—
'हां मैं जान गया क्योंकि मनुष्य तो यहाँ दिन में भी आता हुआ सकुचाता है रात में तो आये ही कौन ? पर मेरा कहना है कि यह आपका स्थान है, आपकी अनुमति हो तो हम यहाँ निवास करें, वरना विहार करके अन्यत्र चले जाएँ। लेकिन इस प्रकार उपद्रव होने में कोई साधु भयभीत हो सकता है, अतः जैसी इच्छा हो वैसे स्पष्ट बहने में कोई आपत्ति नहीं है।'

यक्ष ने कहा—'आप अच्छी तरह पावसवाला सम्पन्न करें। स्थान के बाहर एक सर्प लकीर खींचेगा, उस जगह मल मूत्रादिक के परिष्ठापन का कार्य न करें एवं मकान में दो छोटी चौकियाँ हैं, उनमें एक पर आप बैठ सकते हैं, अन्य साधु न बैठें।' ऐसा निवेदन कर थड़ा भावों से झुकता हुआ वह यक्ष अदृश्य हो गया। स्वामीजी के पुण्य प्रभाव से उपसर्ग उत्पन्न के रूप में परिवर्तित हो गया।

स्वामीजी ने वह रात्रि विशेष धर्म-जागरण में व्यतीत की। प्रतिव्रमण के समय सत उठे तब स्वामीजी ने रात्रिकासीन समय घटना सुनाई। माधुओ ने मंदिर के बाहर आकर गिप्पी हुई रेखा देखी तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ।

प्रातः काल जब ग्राम के लोगों ने स्वामीजी आदि सत्तों को सकुशल देखा तो बहुत चकित हुए। धीरे-धीरे लोग समझने लगे। चातुर्मास के अन्त तक बेलवा के अनेक परिवार श्रद्धालु बन गए। वहाँ के कोठारी, चोरडिया परिवार के व्यक्तियों ने स्वामीजी के पाम सर्वप्रथम तत्त्व समझा। उनमें मुख्य व्यक्ति 'भूषदासजी' जो बेलवा ठिकाने के प्रधान थे, 'भैरोजी' जो कि थावक शोभजी के दादा के छोटे भाई थे और भी 'केसोजी' आदि थे।

थावक शोभजी उस समय गर्भ में थे। उस वर्ष देश में वर्षा अच्छी होने से सर्वत्र मुकाल था।

१. ये नाम उनके वंशजों को वही से प्राप्त हुए हैं।

२. सोमो भरभ माहे वरस सतरे, जब बादल ज्यादा शरिया जी।

जनम कित्याण थी पूज बेलवे, साध धई सचरिया जी॥

(पूज गुणी डा० १४ भा० १७)

समन अठारो सतरो जी, काइ मुधरो ममो आपो त्रहा।

सबलो हवो गुणम।

(हेममुनिहृन्-भक्तगुचरित डा० १ भा० १२)

केनवा के ठाकुर भोजपगिहजी अनेक बार स्वामीजी के सम्पर्क में आये। तत्त्व-चर्चा, व्याख्यानदिक से बहुत मन्तुष्ट हुए। स्वामीजी के प्रति अगाध श्रद्धा रखने लगे। उम भक्ति के प्रभाव से उनका मारा परिवार श्रद्धानु बन गया।

उक्त घटना का मकेन मिश्र, यश रमायण तथा क्वात में इस प्रकार मिलना है।

सुतरोत्तरं वेत्तवा मजे, प्रयम चोपायो वेत्त ।

देवम अघारी ओगी निहो कष्ट सहयो मूविगेस ॥

(मित्रजु जग रमायण ढा० ८ गा० १)

‘अधारी ओगी में उपमर्ग गहूँ, देव दर्शन यथा, जेतवा में उगार घरी
घरी, घना मग थावत रागी हुय गरा, ठाकुर मोखमहित्री मुलभवीधि यथा।’
(श्रुत)

बहा जाता है कि स्वामी भीष्मजी आपाङ्ग शुक्ला १३ को बेमवा प्यारे उग दिन उनके उवाग, चौदग का बेना और पूणिमा के दिन तेला था। माउन बसि १ को र दगा मे टाङ्गु मोनममिहूजी के हाथ मे भिक्षा लेकर उन्होंने पारणा दिया।

३. शत्रुमर्त्य के पञ्चात् मय माधु एकवित दृष्टः। कुछ योन चवित हो चुके थे, जो अश्विनी के दिन पर खरी पड़ी। पर एक मान्यता न होने में वज्ररामजी और दुर्गाजी 'जावनी' हो गए तथा द्वितीय भारमन्त्री, स्वयंदरी और ऐश्वरी भी शामिल नहीं रहे।

पुनः निर्यागी मरणमा मोक्षप्राप्त्यर्थी द्वारा प्राप्त वस्तु मे विद्या है—'मुद्र
व पत्र का वाचन न कर मरने के बाद भी तो वातुर्मात्र मे ही प्रयत्न हो गया।
वातुर्मात्र के दृष्टिकोण से विद्या मे वातुर्मात्र की वातुर्मात्र ही मरने।'

उक्त नियुक्ति का अर्थ यह है कि ५ गा० ७ के अनुसार आनुमार्गिक के बाट १३
होना चाहिये और मद्रास प्रांत सरकार की ओर से ५ गा० ७ के अनुसार आनुमार्गिक में
कटौती ८ अर्थात् ४० प्रतिशत होनी चाहिए।

कुछ भी नहीं, वह कहती निरन्तर तो है कि मैं साधु तो मेरे से ५ साधु प्राप्त
हैं ही हैं, मैं नहीं हूँ।

नि. पु. प्र. १०२३ १०२३ सामान विभाग काय ? कदाच तदा सामान

१. विधि का अर्थ है, मनुष्य के द्वारा प्रयुक्त होने वाला विधि।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

(विषयः अथवा कृ. ६ अ. ३)

१०३-४। श्री महाशयः कर्मकाण्डेन आचार्यैः विप्रकृतः साधनादी
५०३-५। वदति ।

प्रभाकर डा० २ गा० ६५, ६६, ६७ में सभी दीक्षित साधुओं के तथा बाद में ब्रह्म होने वालों के नाम गिनाये हैं, वहा किन्हीं में भी उन पाचों के नाम नहीं हैं। हमने यह स्पष्ट हो जाता है कि ५ साधु पहले से ही अलग रहे और ८ सम्मिलित रहे।

शासन रहने वाले ८ साधु —

१. मुनिश्री विरपालजी
२. " फतेहन्दजी
३. आचार्यश्री भीखणजी
४. मुनिश्री वीरभाणजी
५. " टोकरजी
६. " हरनाथजी
७. " भारीमालजी
८. " लिखमोजी

प्रारम्भ से अन्य रहने वाले साधु —

१. बखतरामजी
२. गुलाबचन्दजी
३. भारमलजी (डूमरे)
४. रूपचन्दजी
५. पैमजी

सम्मिलित रहने वाले ८ साधुओं में से वीरभाणजी और लिखमोजी बाद में वन से पृथक् हो गए। शेष ६ साधु जीवन पर्यन्त शासन में दृढ़ रहे।

मुनिश्री विरपालजी और फतेहचन्दजी पहले दीक्षा पर्याय में स्वामीजी से बड़े थे वन गई दीक्षा के समय में भी स्वामीजी ने उनको बड़ा रखा। जिससे भिक्षु

१. विरगानजी फतेहचन्दजी, मु० भीक्षु श्रद्धा जयमाण हो।

टोकरजी हरनाथजी, मु० भारीमाल बहु जाण हो॥

रहे चित भोता रह्या, मु० घर पट सत वदीत हो।

बाबखोद मग बाणजी, मु० परम माहो माहि प्रीत हो॥

साठ जना भेता नां रह्या, मु० केयक घुर ही यो न्यार हो।

बोरक पाखे न्यारो धवो, मु० येठ न पोहवा पार हो॥

(भिक्षु जश० डा० ८ गा० ६, १०, ११)

२. टोता में छग बडा स्वाम भीक्षु पकी, त्या नै बडा राकडा भीक्षु स्वाम हो।

राने छोड कर नै ह बड़ो होइ, इन में स्यू परमारव ताम हो॥

(भिक्षु जश० डा० १० गा० २)

केलवा के ठाकुर मोघमसिहजी अनेक बार स्वामीजी के सगके में आवे । तत्व चर्चा, व्याख्यानदिक मे बहुत सन्तुष्ट हुए । स्वामीजी के प्रति अगाध श्रद्धा रखने लगे । उस भक्ति के प्रभाव मे उनका सारा परिवार श्रद्धालु बन गया ।

उक्त घटना का सोते भिक्षु वन रसायन तथा कथान मे इस प्रकार मिलता है ।

सतरोत्तरे केलवा मने, प्रथम चोमासो पेय ।

देवल अधारी ओरी तिहो कष्ट सह्यो मुखिसेछ ॥

(भिक्षु जश रसायन दा० ८ गा० १)

‘अधारी ओरी मे उपसर्ग सह्यो, देव दर्शन यथा, केसवा मे उपहार यथो यथो, यथा पुरा श्रावक रागी हुय गया, ठाकुर मोघमसिहजी मुखभवोधि यथा ।’
(कथान)

कहा जाता है कि स्वामी भीष्मजी आपाङ्ग शुक्ला १३ को बेलवा पधारे उस दिन उनके उपवास, चौदम का बेला और पूणिमा के दिन तेला था । सावन यदि १ को रावता से ठाकुर मोघमसिहजी के हाथ से भिक्षा लेकर उन्होंने पारणा किया ।

३ चातुर्मास के पञ्चात् सब साधु एकत्रित हुए । कुछ योल चर्चित हो चुके थे, जो अवशिष्ट थे उन पर चर्चा चली । पर एक मान्यता न होने से बखतरामजी और गुलाबजी कालवादी हो गए तथा द्वितीय भारमलजी, रूपचंदजी और पेमजी भी शामिल नहीं रहे ।

पुर निवासी महात्मा सोहनलालजी द्वारा प्राप्त पत्रों मे लिखा है—‘शुद्ध आधार का पालन न कर मकने से रूपचंदजी तो चातुर्मास मे ही गृह्य हो गए । चातुर्मास के बाद विचार न मिलने से बखतरामजी कालवादी हो गए ।’

उक्त भिक्षु वन रसायन दा० ८ गा० ७ के अनुसार चातुर्मास के बाद १३ ही साधु इकट्ठे हुए और महात्मा सोहनलालजी के पत्रों के अनुसार चातुर्मास मे रूपचंदजी के अतिरिक्त शेष साधु मिले, ऐसा शान होता है ।

कुछ भी हो, पर यह तो निश्चित ही है कि १३ साधुओं मे से ५ साधु प्रारम्भ से ही सम्मिलित नहीं हुए ।

भिक्षु वन रसायन दा० ५२ शासन विलास दाल १ द्यात तथा शासन

१. द्विरे चोमासो उत्तरो, मु० भेला हुआ गहु आण हो ।

बखतराम ने गुलाबजी, मु० कालवादी हुआ जाण हो ॥

(भिक्षु जश दा० ८ गा० ७)

वाचसपिथों की मान्यता के सम्बन्ध मे आचार्य भिक्षु कृत ‘कालवादी को चोर्द’ पन्नीय है ।

प्रभाकर दा० २ गा० ६५, ६६, ६७ में सभी दीक्षित साधुओं के तथा बाद में बलग होने वालों के नाम गिनाये हैं, वहाँ किन्हीं में भी उन पाचों के नाम नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ५ साधु पहले से ही अलग रहे और ८ सम्मिलित रहे।

शामिल रहने वाले ८ साधु —

१. मुनिथी धिरपालजी
२. „ फतैचन्दजी
३. आचार्यश्री भीखणजी
४. मुनिथी वीरभाणजी
५. „ टोकरजी
६. „ हरनाथजी
७. „ भारीमालजी
८. „ लिखमोजी

प्रारम्भ से अलग रहने वाले साधु —

१. वखनरामजी
२. गुलाबचन्दजी
३. भारमलजी (दूसरे)
४. रूपचन्दजी
५. पैमजी

सम्मिलित रहने वाले ८ साधुओं में से वीरभाणजी और लिखमोजी बाद में मरण से पृथक् हो गए। शेष ६ साधु जीवन पर्यन्त शामन में दृढ़ रहे।

मुनिथी धिरपालजी और फतैचन्दजी पहले दीक्षा पर्याय में स्वामीजी से बड़े थे अतः नई दीक्षा के समय में भी स्वामीजी ने उनको बढ़ा रखा। जिससे भिक्षु

१. धिरपालजी फतैचन्दजी, मु० भीखण्ड ऋषि जगमाण हो।
टोकरजी हरनाथजी, मु० भारीमाल बहु जाण हो॥
रहे चित्त मोना रह्या, मु० वर पट सत बदीत हो।
जावजीव लग जाणज्यो, मु० परम माहो माहि प्रीत हो॥
सात जणा भेला ना रह्या, मु० केयक घुर ही घी न्यार हो।
बोवक पाछे न्यारो घयो, मु० थेट न पौहता पार हो॥
(भिक्षु जग० दा० ८ गा० ६, १०, ११)
२. टोना में छना बड़ा स्वाम भीखण्ड यकी, त्या नी बटा राठग भीखण्ड स्वाम हो।
याने छोटा वर नी हू वडो होवू, हण में रूप परमारय ताम हो॥
(भिक्षु जग० दा० १० गा० २)

केनका के ठाकुर मोहनमिह्रजी प्रतेज बार म्यामीजी के सम्पर्क में आये। तत्कालीन व्यावसायिक ने बहुत सम्पुष्ट हुए। म्यामीजी के प्रति अत्यन्त प्रेम रखते थे। उस भक्ति के प्रभाव में उनका मारा परिवार थड़ा-बुझ गया।

उक्त घटना का सर्वत्र मिश्र दश रमायण तथा शान्ति में इस प्रकार निवृत्त है।

मत्तरोनने केनका मने, प्रयत्न बोमसो देय।

देवन अघारी ओगी जिहा कष्ट मरुयो मुक्तिमेय ॥

(मिहिरू जग रमायण डा० ८ भा०)

'अघारी ओगी में उपमर्ग मरुयो, देव दर्शन दया, केनका में उपहार' पारी, घना खरा यावक राणी हुए गया, ठाकुर मोहनमिह्रजी मुनमवोधि दया (५)

कहा जाता है कि म्यामी श्रीवाजी आपाड शुक्ला १३ को केनका में उन दिन उनके उपवास, चौदन का व्रत और पूणिमा के दिन सेवा था। वरि १ को राधा ने ठाकुर मोहनमिह्रजी के हाथ में मिश्र लेकर उन्होंने प किया।

२. चानुमान के पञ्चान् सब माधु एकत्रित हुए। कुछ बोन बचित रं मे, जो अविष्ट मे उन पर चर्चा चली। पर एक मान्यता न होने में बचन और मुताबकी कानवादी हो गए तथा द्वितीय भारमनजी, हदबदई पेमवी भी शामिल नहीं रहे।

पूर निवासी महान्ना मोहनमानजी द्वारा प्राप्त पत्तों में निवा है- आधार का पालन न कर नकटे में हदबदवी तो चानुमान में ही पृष्ठ १ चानुमान के बाद विचार न मिलने में बखतरामजी कानवादी हो गए।

उक्त मिश्र दश रमायण डा० ८ भा० ७ के अनुसार चानुमान के ही माधु दफ्तरे हुए और महान्ना मोहनमानजी के पत्रों के अनुसार चा हदबदवी के अतिरिक्त मेष माधु मिले, ऐसा ज्ञात होता है।

कुछ भी हो, पर यह तो निश्चित ही है कि १३ माधुओं में से १ मा के ही सम्मिलित नहीं हुए।

मिश्र जग रमायण डा० १२ शान्ति विनाय ज्ञान ? शान्ति त

१. रिबे चौकसो उतरने, मु० भेला हुआ मरु आन हो।

बदवसन में मुताबकी, मु० कानवादी हुआ जान हो ॥

(मिहिरू जग० डा०)

काव्यद्विती की मान्यता के सम्बन्ध में आचार्य मिहिरू का बोधो पद्यगत है।

प्रभाकर दा० २ गा० ६५, ६६, ६७ में सभी दीक्षित साधुओं के तथा बाद में अलग होने वालों के नाम गिनाये हैं, वहाँ किन्हीं में भी उन पाचों के नाम नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ५ साधु पहले से ही अलग रहे और ८ सम्मिलित रहे।

शामिल रहने वाले ८ साधु —

१. मुनिश्री धिरपालजी
२. „ फतेहचन्दजी
३. आचार्यश्री भीखणजी
४. मुनिश्री बीरभाणजी
५. „ टोकरजी
६. „ हरनाथजी
७. „ भारीमालजी
८. „ लिखमोजी

प्रारम्भ से अलग रहने वाले साधु —

१. घखतरामजी
२. गुलाबचन्दजी
३. भारमलजी (दूसरे)
४. रूपचन्दजी
५. पेमजी

सम्मिलित रहने वाले ८ साधुओं में से बीरभाणजी और लिखमोजी बाद में गण से पृथक् हो गए। शेष ६ साधु जीवन पर्यन्त शासन में दृढ़ रहे।

मुनिश्री धिरपालजी और फतेहचन्दजी पहले दीक्षा पर्याय में स्वामीजी से बड़े थे अतः नई दीक्षा के समय में भी स्वामीजी ने उनको बड़ा रखा।^१ जिसने भिक्षु

१. धिरपालजी फतेहचन्दजी, मु० भोवधु ऋषि जगभाण हो।

टोकरजी हरनाथजी, मु० भारीमाल बहू जान हो॥

रुडे चिन्न भोला रह्या, मु० वर पट सत बदीव हो।

जानजीव लग जाणज्यो, मु० परम माहो माहि प्रीत हो॥

सात जण भेला ना रह्या, मु० केयक धुर ही धी न्यार हो।

कोयक पाछे न्यारो ययो, मु० घेट न पौटता पार हो॥

(भिक्षु जण० दा० ८ गा० ६, १०, ११)

२. टोला में छना बडा स्वाम भीखू, यकी, त्या नै बडा राकग भीखू स्वाम हो।

याने छोटा कर नै हू बडो होयूँ, दण में रयूँ परमारय ताम हो॥

(भिक्षु जण० दा० १० गा० २)

यश रघायण ढा० ८ दो० ३ में उनका नाम पहले (जम संख्या १, २) और स्वामीजी का बाद में (जम संख्या ३) में लिखा गया है।

३२ गृहस्थावस्था में स्वामीजी के एक बाल-मित्र रामकृष्णजी थे। उनका जन्म स० १८७६ माघ शुक्ला १४ अनिश्चरवार को हुआ। वे त्रिजय वर्गीय वैश्य एवं मोठा ग्राम में रहते थे। सोड़ा में स्वामीजी की बुआ का घर था, इसलिए स्वामीजी वहाँ समय समय पर जाया करते थे। कई बार कुछ दिनों तक ठहरते भी थे। एक बार रामकृष्णजी ने उनका संपर्क हुआ और दोनों में मित्रता हो गई। स्वामीजी की तरह वे भी विरक्त प्रकृति के थे, अतः उनकी मित्रता धीरे-धीरे प्रगाढ़ बनती गई। स्वामीजी के संपर्क से वे जैन धर्म से परिचित हुए और उसके प्रति थड़ा रगने लगे। कहा जाता है कि वे दोनों गाय-साय दीक्षा ग्रहण करने के लिए भी परस्पर वचनबद्ध हो गए थे।

कालान्तर से रामकृष्णजी का संपर्क मन कृपारामजी से हुआ। त्रिमने उनका झुकाव धीरे-धीरे उधर हो गया। वे स्वामीजी की दीक्षा से लगभग तीन महीने पहले स० १८८८ भाद्रव शुक्ला सप्तमी को 'दांतडा' में मन कृपारामजी के पास दीक्षित हो गए। दीक्षा के बाद उनका नाम 'रामचरणजी' दे दिया गया।

स्वामी भीषणजी के साथ किया हुआ वचन ममबन, उन्हें विस्मृत तो नहीं हुआ होगा पर विचार परिवर्तन की स्थिति में उसका पालन सम्भव नहीं रह गया।

वि० स० १८१५ में चलते के मेले में उन्हें तत्कालीन साधुओं की छडबड के बड़े कटु अनुभव हुए। जिससे उनका मन उस ओर से हट गया। उन्हें तब निर्गुण भक्ति की अन्त प्रेरणा हुई और वे मेवाड़ में आकर उसके प्रचार में लग गए। फलस्वरूप रामस्नेही परम्परा में शाहपुरा-शाखा का प्रवर्तन हुआ।

यद्यपि स्वामीजी और रामचरणजी दो विभिन्न परंपरा में दीक्षित हुए थे, फिर भी उनका पारस्परिक सवध चालू रहा, ऐसा प्रतीत होना है। वे सम्भवतः यदा कदा कहीं एक दूसरे में मिलते भी रहे हों। रामचरणजी ने अपनी कृति में 'तेरापय' शब्द को काम में लिया है। यहाँ उन्होंने अपनी ओर में तेरापय की जो व्याख्या की है वह स्वामीजी द्वारा की गई भावनात्मक परिभाषा के समान ही है, उनके पद्य इस प्रकार हैं—

मोही तेरापय का, मेरा कहे न कोय।

मैं मेरी से लग रह्यो, तो जगत पथ है सोय।

काम जोय सृणा तजे, दुविधा देय उठाय।

रामचरण ममता मिटे, तेरापय वह पाय ॥^१

(तेरापय इतिहास स० १ पृ० ३८, ३९)

१ वि० म० १९८१ म 'रामनिवास ग्राम' शाहपुरा में प्रकाशित स्वामी रामचरणजी की 'अणमेवाणी' (अनुभव की बातें) पृष्ठ ७१ पर अन्तिम 'पद तेरापय वह पाय' के स्थान पर 'तब तब के पय जाय' लिखा है।

३३. स्वामीजी के भाव दीक्षा ग्रहण करने के बाद आचार्य रघनाथ ने स्वामीजी की माता दीपाबाई को कहा—‘तुम्हारा पुत्र स्वप्न के अनुरूप न होकर अविनीत हो गया है’ उस समय दीपाबाई ने उन्हें ऐसा उत्तर दिया कि उनकी निश्चिन्ता होना पड़ा। उन्होंने कहा—‘पहले तो आपने निष्पक्ष दृष्टि से कहा था कि तुम्हारा पुत्र मिट्टी की तरह गूजेगा। अब आप दूसरे दृष्टिकोण से कह रहे हैं कि वह अविनीत हो गया। इसमें तो आप आपके पूर्व कथित वचन को ही असत्य मिट्ट कर रहे हैं।’

३४. भाव दीक्षा लेने के पश्चात् स्वामीजी को अनेक तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ा। विरोध के बड़े-बड़े तूफान खड़े हुए। पर धीरे धीरे चट्टान की तरह अडिग रहकर अपूर्व उत्साह एवं साहस से आगे बढ़ते रहे। स्नान, वस्त्र, भोजन आदि की कठिनाईयों को उन्होंने हमने-हसने सहन किया एवं प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति का डटकर मुकाबला करते रहे। उनके जीवन सपनों की बड़ी पुस्तक के कुछ पृष्ठ इस प्रकरण में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

३५. मुनिश्री नानजी ने हेमराजजी (३६) स्वामी को कहा—हेमराजजी! शिरधारो में ग्रीष्मकाल तथा चालुर्मास के समय स्वामीजी जब पक्की दुकान में बैठकर व्याख्यान देते तब स्वयं स्वामीजी तथा भारीमालजी आगे बराबर बैठते। पास में कठ (राग) मिलाने वाले भाई बैठते। हम दूसरे साधु उनके पीछे बैठते। गर्मी का अत्यधिक कष्ट रहता। शरीर से बहुत पसीना चलता। इस तरह छोटी-छोटी जगह में टहरकर स्वामीजी धर्म प्रचार करते। स्वामीजी फरमाते—‘उपकार के लिए ब्रष्ट सहने में कोई आपत्ति नहीं।’

(भिक्षु दुष्टान्त १८७)

३६. वि० स० १८. के शेषकाल में स्वामीजी उदयपुर पधारे। वहाँ विरोधी लोगो ने तात्कालीन महाराणा (अमरसिंहजी ‘द्वितीय’) को सुलगा दिया। महाराणा ने आगे पीछे चिन्तन किये बिना ही आचार्य भिक्षु को उदयपुर में न रहने का आदेश दे दिया।

लेरापथी धावकों को यह बहुत बुरा लगा, पर महाराणा के पास कौन जाये और कौन कुछ बहे? मानजी पोरवाल (मारवाड़ी) ने बड़ी हिम्मत की। बमर

१. माता मुपना में सीढ़ देखियो, जब माना बीधी रघनाथजी ने पूछा।
तब रघनाथजी कहै मुन तुम तनों, ओ रहगी बेसरी जिम गूज।
पूछ मुप हवा कहै रघनाथजी, कुमती हूओ मुम बान।
जब माना कहै बेसरी जिम गूजगी, ये भादरी से बधन ममान।

(भावक शोभजीकृत पुत्रमुणी की डा० ६ गा० १, ७)

कहते हैं कि वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं।

उस समय के लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं।

उस समय के लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं।

उस समय के लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं।

उस समय के लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं।

उस समय के लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं। वे लोग भी बहुत ही बुराई कर रहे हैं।

(मुनानुभूत)

अनुभूति के आधार पर कहा जाता है कि नाथद्वारा ने प्रमुख धातक दाऊजी तलेसरा ने गुमाईजी को अपने घर में ठहराने की याचिका सफलतापूर्वक करवा दी। 'हम नाथद्वारा छोड़कर जा रहे हैं।' कारण पूछने पर तलेसराजी ने बताया कि जब हमारे गुरु आचार्य विष्णु जी भी निकल दिये तब हम यहाँ रहकर क्या करें?

गुसाईजी ने कहा—वे तो दयाशन में पाप मानते हैं तथा उन्होंने वर्षा रोक रखी है। तलेमराजी ने तत्त्व विवनेपण करते हुए बतलाया कि जो माधु चीटी को भी बच्य नहीं देते, वे हजारों लाखों प्राणियों को बच्य पड़ूँ ऐसा वर्षा रोकने का कार्य बंने कर सकते हैं? प्रमगवत्त तलेमराजी ने जैन-मुनियों की आचार-विचार विधि भी बतलाई तो मुनकर गुसाईजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने हठकारों को कोठारिया भेजकर आचार्य भिक्षु को पुनः नापट्टारा पधारने की वितती करवाई, पर आचार्य भिक्षु ने कहा—‘अब चातुर्मास में गौन झर-उधर किये, वे वापस नहीं पधारें।’ गेष चातुर्मास उन्होंने कोठारिया में ही बिताया।

स्वामीजी आसोज महीने में विहार कर नापट्टारा में कोठारिया पधारें थे। इसका प्रमाण यह है कि स्वामीजी ने स० १८४३ आसोज यदि १० रविवार को ‘विरत इवरित चौपाई’ की ४थी ढाल नापट्टारा में और ६वीं ढाल आसोज सुदि १४ शनिवार को कोठारिया में बनाई थी।

३८. स्वामीजी ने पाली की एक दूकान में चातुर्मास किया। स्थानीय बावेचा परिवार के कुछ व्यक्तियों ने दूकान के मालिक से किराये पर दूकान देने के लिए कहा। वह बोला—‘अभी तो स्वामी भीखणजी ठहरे हुए हैं अब कोई व्यक्ति समूची दूकान को रपया में मठ भी दे तो दूकान नहीं दे सकता। स्वामीजी के विहार करने के पश्चात् कोई ले सकता है।’

(मिवखु दुष्टान्त ६५)

३९. बावेचा परिवार के लोग जेठमलजी हाकिम के पास पहुँचे और चाबियों की ढालते हुए बोले—‘यहाँ पर या तो भीखणजी रहेंगे या हम रहेंगे।’ हाकिमजी ने कहा—‘ऐसा अन्याय तो हम नहीं कर सकते। ग्राम में वेश्या, बसाई भी तो रहते हैं, उन्हें भी हम नहीं निकाल सकते तो भीखणजी को कैसे निकाल सकते हैं?’ हाकिम साहब ने एक हवाला भी उपस्थित किया—‘जोधपुर में विजयसिंहजी राज्य कर रहे थे। ‘मोभी बालदिया’ जो लाख बैल होने से ‘लकड़ी बालदिया’ (लकड़ी बिगजारा) कहलाता था। वह नमक लेने के लिए मारवाड़ में आता। रास्ते में जाटों के सेन आते उन्हें उजाड़ता चला जाता। जाट लोगों ने जब इसके लिए दरबार विजयसिंहजी से पुरार की तब उन्होंने लकड़ी बालदिये को कहा—‘जाट लोगों के सेतो को मत उजाड़ा करो।’ वह बोला—‘मैं आऊँगा तब तो ऐसा ही होगा।’ राजाजी ने कहा—‘अगर ऐसा ही हो तो मेरे देश में आना ही नहीं। नमक को लेने वाले अन्य अनेक बालदिये आ जायेंगे। इस प्रकार अन्याय कभी नहीं करने देंगे।’

हाकिम जेठमलजी ने उन लोगों को कहा—‘ठीक उरी तरह तुम लोग चले जाओगे तो हम दूसरे व्यापारियों को यहाँ ले आयेंगे पर साधुओं को निकालें ऐसा अन्याय तो नहीं करेंगे।’

सोप उमके पति को चिड़ाने के लिए कहने लगे—‘वाह माहव वाह ! दूकान पर तो तुम बमाई करते हो और घर पर तुम्हारी औरत !’ वह बेचारा इम व्यंग्योक्ति से बहुत शर्मिन्दा होता पर वह कर ही क्या सकता था ।

इस घटना के कुछ ही दिन पश्चात् राखी के त्योहार पर ‘कीकी’ का एकाएक मडका गुजर गया । उमका शोक मिट ही नहीं पाया कि उसका पति भी मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

स्वामीजी के परम भक्त श्रावक शोभजी ने जब यह घटना सुनी तब उन्होंने एक दोहा जोड़ दिया—

बादर साह री दीकरी, कीकी पारो नाम ।

घाट सहित घी ले लियो, ठाली कर दियो ठाम ॥

उन दोनों मौतों में कीकी के मन को बड़ा आघात लगा और उसने साध्वियों के प्रति किए गए दुर्ध्वबहार पर बहुत पश्चाताप किया ।

कितने वर्षों के बाद कोई अपरिचित साधु उमके घर मोचरी के लिए गया । कीकी बड़ी भावना से आहार बहराने लगी । साधु ने उस अज्ञात घर में इतनी भावना और भक्ति देखकर पूछा—‘बहन तुम्हारा नाम क्या है ?’ तब वह अत्यंत दीन स्वर से उच्छ्वास डालती हुई बोली—‘महाराज ! मैं वही पापिनी कीकी हू जिसने साध्वियों के पात्र से घाट वापस ले ली थी । कोई तो इस भव के कर्मों का फल अगले जन्म में भोगता है, पर मैंने तो अपने किए गए पाप का फल हाथोंहाथ देखा लिया है ।’ इस तरह वह पश्चाताप करने लगी ।

इस घटना के पूर्वान्न से स्पष्ट पता लग जाता है कि स्वामीजी को आहार के लिए कितने कष्ट महन करने पड़े ।

(भिक्षु दृष्टान्त २६१)

४२. प्रारम्भिक वर्षों में स्वामीजीको वस्त्र भी बड़ी कठिनता से मिल पाता था । इस बात की खर्चा करते हुए एक धार स्वामीजी ने कहा था—‘कभी सवा सपया मूल्य की वासती (रेजी) मिल जाती तब भारमल कहना कि आप इसकी पछेवड़ी बना लीजिए, मैं कहता कि इसके दो घोलपट्टे बनाओ । एक तुम्हारे काम आ जाएगा और एक मेरे ।’

(भिक्षु दृष्टान्त २७६)

४३. कई वर्षों तक स्वामीजी को भगवती आदि सूत्र पढ़ने को नहीं मिले थे । बाद में योगेश के भाइयों ने स्वामीजी को १८२२ पन्नों वाला भगवती तथा दूसरा पन्नबन्धा सूत्र बहराया ।

(भिक्षु दृष्टान्त ६०)

४४. पहले वर्षों में स्वामीजी के पास व्याख्यान सुनने के लिए सोप बहुत कम आते थे । कभी कभी व्याख्यान का समय हो जाता और एक भी भाई

नहीं आया। फिर भी स्वामीजी शाकनाथ प्रारम्भ कर देते और साधुओं को गुलाने।

इस तरह धीरे-धीरे दुकान पर साधुओं की तरह भोग लोग आने लगे।

(गुणानुपुन)

४५ स्वामीजी एक बार 'बी'पाडा' पधारे। वहाँ के भाई-बहिन बहुत डेग करते थे। नाना प्रकार की घान्निषों से भरे लोग उन्हें रोटी-पानी देने में भी आना-कानी करते थे। स्वामीजी के आने का पता लगते ही उन्होंने बशोन्नत किया—'जो भीखणजी को रोटी देगा, उसे प्रत्येक रोटी पर ग्यारह सामायिक दंड की आएगी।' जिससे पूरा आहार-पानी नहीं मिलता। स्वामीजी ने साधुओं से कहा—'यहाँ पर एक महीना रहने का विचार है।' साधुओं ने निवेदन किया—'भोजन पानी की यहाँ पर बहुत कमी है।' स्वामीजी बोले—'अधिक परो में गोचरी कर लेंगे।' ऐसा निर्णय कर स्वामीजी वहाँ पर ही ठहरे। साधुओं को तीन मुहूर्तों में गोचरी करने के लिए भेजते। एक गोचरी गाव के बाहर रहने वाले खानी, कुम्भार जाट आदि की दूसरी रायला की और तीसरी महाजनों की करवाई जाने लगी। स्वयं स्वामीजी भी गोचरी जाते। एक दिन एक घर में गोचरी पधारे तो एक बाई ने कहा—'तुम्हें रोटी दे दू तो स्वामिक में सामायिक करती हुई मेरी ननद की सामायिक गल जाए।' इस प्रकार अनेक धम फौलाकर विरोधियों ने उन्हें पराजित करना चाहा परन्तु वे सदा अपराजय ही रहे।

(भिरगु दृष्टान्त ४२)

४६ उदयपुर में एक अन्य संप्रदाय का साधु स्वामीजी के पास आया और बोला—'भीखणजी! कोई चर्चा पूछो।' स्वामीजी ने पहले तो उसे टानने का प्रयास किया पर जब वह आप्रह्न करने लगा तो कहा—'अच्छा बताओ तुम संजी हो या असंजी?'

वह व्यक्ति—संजी।

स्वामीजी—किस न्याय से?

वह व्यक्ति—मिच्छामि दुक्कड़ में असंजी हूँ।

स्वामीजी—किस न्याय से?

वह व्यक्ति—नहीं नहीं। मिच्छामि दुक्कड़ में तो संजी या असंजी दोनों ही नहीं हूँ।

स्वामीजी—वह भी किस न्याय से?

तब वह व्यक्ति झुड़ होकर बोला—तुमने न्याय-न्याय की रट लगाकर हमारे सारे मत को ही बिगड़ दिया और स्वामीजी को छाली पर मुक्का मारकर चलता बना।

(भिरगु दृष्टान्त ४३)

४७. स्वामी भीखणजी सपनों की कसौटी पर चढ़ने गये और खरे उतरते गए वे किसी भी परिस्थिति में घबराये नहीं। विरोधी व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न की गई विषम स्थितियों को उन्होंने बड़े साहस और धैर्य के साथ सहन किया।

स्वामीजी का सर्वाधिक विरोध आचार्य रघनाथजी तथा उनके अनुयायियों ने किया। पर स्वामीजी को उपमे सफलता ही मिली।

आचार्य रघनाथजी ने उस विरोध में जयमलजी को भी अपने साथ मिलाने का प्रयास किया। उन्होंने जयमलजी से कहा—‘हम बहुत साधु हैं, वे तेरह ही हैं यदि सब मिलकर साहस करें तो उन्हें तूतड़ो की तरह बिखेर दें।

आचार्य जयमलजी ने उन्हें एक उदाहरण द्वारा समझाने हुए कहा—‘एक बार शाहपुरा के राजा पर राणाजी की फौजें आईं और उन्होंने शाहपुरा को अपने कब्जे में करने के लिए युद्ध करना प्रारंभ कर दिया, परन्तु उसका कोई बल नहीं चला, इसका कारण था कि पहले तो शाहपुरा का कोट विमान और सुदृढ़ था, दूसरे में कोट के बाहर पानी से भरी हुई खाई थी, तीसरे में किले में तोप आदि हथियारों की विपुल सामग्री थी चौथे में राणाजी के सैनिक शाहपुरा के सुभटों के समकक्ष नहीं थे। राणाजी की फौजें छह महीनों तक प्रयास करती रही एवं लाखों रुपये भी खर्च कर दिए, तो भी शाहपुरा को प्राप्त नहीं कर सकी। आखिर निराश होकर फौज को वापस झौटना पड़ा।

ठीक इसी प्रकार हम लोग भीखणजी का सामना नहीं कर सकेंगे, क्योंकि वे शास्त्रों के विशेषज्ञ हैं। तर्क शक्ति भी उनकी प्रबल है। वे स्वयं साध्वाचार का दृढ़ता पूर्वक पालन करते हैं। हमारे साथ वर्षों तक रहे हुए हैं और हमारी आंतरिक कमजोरियों को भी जानते हैं। इसलिए विरोध न करके उनके प्रति उपेक्षित रहना चाहिए। वे आचार-क्रिया का सम्पूर्ण पालन करेंगे तो हमारा ही पक्ष होना। लोग कहेंगे कि रघनाथजी के शिष्य कठोरता से साधुत्व का पालन कर रहे हैं।

लेकिन आचार्य रघनाथजी ने उक्त परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने सबे समय तक स्वामीजी का पीछा किया और गाव-गाव में लोगों को बहकाते रहे। उनका फल यह हुआ कि उनके ही श्रावक स्वामीजी से अधिक गमावित हुए और तेरापदी बने।

(दृष्टान्त ११)

४८. बीबाहा में आचार्य रघनाथजी ने ब्राह्मणों को बहकाते हुए कहा—मेरा शिष्य भीखण अविनीत हो गया है। वह ब्राह्मणों को देने में भी पाप व्रतनाश है। इस पर ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होकर स्वामीजी के पास आये और झगडा करने लगे।

स्वामीजी उन्हें शांतिपूर्वक समझाने के लिए कुछ कह ही रहे थे कि वहां उपस्थित थावक रामचन्द्रजी बदारिया ने ब्राह्मणों से कहा—‘रघनाथजी यदि ब्राह्मणों

को देने में धर्म कहते हैं तो मैं आपको अभी पच्चीस मन गेहूं देने के लिए तैयार हूँ।
ब्राह्मण बोले—‘वे तो धर्म ही कहते हैं, हमारे साथ चलो, यह तो अभी कहलवा सकते हैं।’

ब्राह्मण और रामचन्द्रजी आचार्य रघुनाथजी के पास आए। रामचन्द्रजी ने कहा—‘आप धर्म कहे तो मैं ब्राह्मणों को पच्चीस मन गेहूँ दूँगा। आप आज्ञा दें तो उनकी ‘बूखरी’ बनाकर खिला दूँगा। उनका आटा पिगवाकर माथ में दो मन चने की कड़ी बनवाकर खिला दूँ। जिसमें अधिक धर्म हो वही बतला दें।’

आचार्य रघुनाथजी बोले—‘हम साधू हैं, हम ऐसा कहना कल्पता नहीं।’

रामचन्द्रजी—जब आप स्वयं इस दान में धर्म नहीं कह सकते तो स्वामी भीष्म जी का नाम लेकर इन लोगों को भ्रान्त क्यों करते हैं। वे तो आपसे कहीं कठोर आचार का पालन करते हैं।

रामचन्द्रजी के उक्त कथन का आचार्य रघुनाथजी ने कोई जवाब नहीं दिया। उनके मौन से ब्राह्मण समझ गए कि केवल हम लोगों को बहकाने के लिए ही ऐसा कहा गया है।

(भिक्षु दृष्टान्त ४२)

४६. एक बार स्वामीजी बहिर्भूमि की ओर जा रहे थे। एक अन्य संप्रदाय के साधू भी उधर आ गये और स्वामीजी के साथ-साथ चलने लगे। वे संप्रदाय स्वामीजी के साथ-साथ चलना चाहते थे पर रास्ता चौड़ा न होने से उन्हें हरियाली पर चलना पड़ रहा था। स्वामीजी का ध्यान जब उधर गया तो उन्होंने कहा—‘साक मार्ग पड़ा है तो फिर हरियाली पर क्यों चल रहे हो।’

स्वामीजी के इतना कहते ही वे अकड़ कर बोले—‘आप मेरे विषय में कुछ कहेंगे तो मैं गाव जाकर कह दूँगा कि भीष्मजी हरियाली पर चल रहे थे।’

इस तरह गच्ची बात करने पर भी विपरीत उल्टा प्रचार करने के लिए उद्यत रहने।

(भिक्षु दृष्टान्त ४९)

५०. सोजन के अणदोत्री पट्टा स्वामीजी के प्रति बहुत द्वेष भावना रखने से उन्होंने आवेश में आकर कहा—‘मैं कभी भी स्वामी भीष्मजी का मुँह नहीं देखूँगा। मयोगन मान दिनों के पश्चात् ही वे अशुभ कर्मोंदय से अछे हो गए।’

सोगों ने जब सुना तो व्यग्न कर्माने हुए कहा—‘अणदोत्री ने अपने वचन का पूरा पावन कर लिया है। अब तो वे कभी भी भीष्मजी का मुँह नहीं देख सकेंगे। इस तरह लोगों में अणदोत्री की बहुत निन्दा हुई।’

(दृष्टान्त १)

५१. अनेक व्यक्ति ऐसे भी थे जो स्वामीजी के मन्त्रियों को सही मानते हुए भी संप्रदाय मोह के कारण उनका विरोध करने थे।

एक बार स्वामीजी ने मुनि गुमानजी के टोने से बहिर्भूत मुनि दुर्गादासजी से पूछा—‘जब हम स्थानक की सदीप कहते थे तब तुम उमे निर्दोष बतलाने थे। अब उनसे पृथक् होने के पश्चात् उसे अकल्पनीय कैसे कहने लगे ?’

दुर्गादासजी ने कहा—‘रावण के सामंत उसे खोपी मानने हुए भी राम की सेना की तरफ बाण चलाते थे। हमारी भी वही स्थिति थी। पहले पशुपान के कारण बंसा कहते थे अब जंसा लगना है बैसा कहते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त ८)

५२. स. १८५७ में स्वामीजी भीलवाड़ा पधारे। रात्रि के समय व्याख्यान में जनता बहुत एकत्रित हुई। साध्वाचार का विवेचन करते हुए स्वामीजी ने ‘तुम्हें जायजो अघारो इण भेष में’ इस नीतिशा के कुछ पद्य सुनाये और तत्कालीन साधुओं के आचार-व्यवहार की कुछ नुटियों की समीक्षा की। वहाँ के नागोरी बधुओं में उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। व्याख्यान समाप्ति के पश्चात वे लोग स्वामीजी के सम्मुख अटसट बोलते हुए विग्रह करने लगे।

स्वामीजी ने उनके समझने की भावना न देखकर कुछ समय के लिए मौन धारण कर लिया। फिर भी कभी समय तक लोग बकबाग करते रहे। धनराज नागोरी ने कहा—‘अब प्रतिमा की तरह मौन होकर क्यों बैठ गये। उत्तर क्यों नहीं देते।’

स्वामीजी फिर भी नहीं बोले तब वे लोग थक कर चले गये।

उन्हीं दिनों उदयपुर राज्य के प्रधान (मंत्री) शिवदासजी गांधी किसी सैनिक कार्य के लिए बहा आये हुए थे। उन्होंने जब उक्त घटना वृत्तान्त सुना तो उपात्तम देते हुए कहलवाया—‘धनराज नागोरी की मन्त पुरुषों के सामने अनुचित बोलने तथा झगड़ने में कौन-सी वीरता है। लड़ना ही चाहते हो तो देश पर हमला करने वाली शत्रु-सेना के साथ क्यों नहीं लड़ते।’

उसके बाद नागोरियों के लड़ने-झगड़ने का साहम समाप्त हो गया।

(धार्मिक दृष्टान्त २५)

५३. स्वामीजी के धैर्य और शान्तिमय व्यवहार को देखकर भीलवाड़ा के भैरवामजी चढालिया ने स्वामीजी से निवेदन किया—‘महाराज ! लोग आपके साथ विग्रह करते हैं पर आप धैर्य पूर्वक लोगों की गालियाँ सुनते हैं, अपमान सहते हैं, अन्त में राव रुधनाथ के जवाई की तरह आपकी अवश्य विजय होगी।’ जैसे—

“दिल्ली के बादशाह के सामने राव रुधनाथ अग्रवाल की बड़ी प्रतिष्ठा थी। राज्य में बहुत प्रभाव था। एक बार कोई गरीब अग्रवाल अपने इकलोते प्यारे पुत्र को सुन्दर कपड़े पहनाकर मोद में लिए जा रहा था कि अन्य जाति वालों ने ताना कसा—‘क्या आप राव रुधनाथ की लड़की से अपने पुत्र की शादी करने

जले हो ?' यह बात उसके हृदय में चुभ गई, और वह बोला—'ऐसी क्या ब है, वह भी अप्रवाल है और मैं भी अप्रवाल हूँ, अतः हो सकती है।'

अच्छा ! कैसे हो सकती है ? लोगो ने मजाक किया—। अप्रवाल से राव रघनाथ के सामने कचहरी में आकर लड़के को आगे पड़ा करके बोला 'ओ राव रघनाथ ! मेरा लडका, तेरी लडकी, सम्बन्ध कर लो।' राव के इशारे पर पहरेदारो ने गाली-गलोच कर बाहर धकेल दिया। बाहर आते ही लोगों ने उसे पूछा—'क्या सम्बन्ध कर लिया ?'

उसने कहा—'आज पहला ही दिन है, कम से कम 'धुवरुम धुक्का' तो हुआ।' दूसरे दिन वैसे ही पुनः को कचहरी में ले जाकर जोर से आवाज लगाई—'ओ राव रघनाथ ! मेरा लडका तेरी लडकी सम्बन्ध कर लो।' गिराहियों ने डाट लगाते हुए उसे धक्के देकर वहाँ से निकाल दिया। रास्ते में लोगों ने फिर पूछा—'क्या सबध हो गया ?' उसने कहा—'आज दूसरा ही दिन है। कल 'धुवरुम धुक्का' हुआ और आज 'धक्कम धक्का' हुआ है।'

उधर राव रघनाथ जब महली में गए तो पत्नी ने इस दो दिन से होने वाली गड़बड़ी का कारण पूछा। राव रघनाथ ने उस अप्रवाल की बात कही। पत्नी—'लडका कैसा है ?' लडका तो अच्छा ही है पर मरीब है। पत्नी—'मरीब है तो क्या ! घन तो हमारे पास बहुत है, लडका अच्छा हो तो सबध कर लेना चाहिए, बाधिर अपनी बिरादरी का ही तो है।'

तीसरे दिन जब अप्रवाल ने आकर आवाज लगाई तो सेठानी से उसे ऊपर बुला लिया। लडका देखते ही पसन्द आ गया तब तत्काल सगाई का निबन्ध कर गहने कपड़े पहनाकर एव पालकी में बिठला कर उसे गिराहियों के साथ बिरा किया। रहने के लिए महल बनवा कर दिया तथा जाखो रुपये की सति सौ दी।

बाजार के मध्य से जब वह गुजरने लगा तो लोगों ने देखा कि सबभुच उसने राव रघनाथ की पुत्री से आने पुनः का सबन्ध कर दिया है। 'धुवरुम धुक्का' 'धक्कम धक्का' होने वाली के आज 'छाकम छाका' भी हो गया। इस प्रकार जानि भाई होने से तथा अपमान सहने से उसका बड़े घर में सबध हो गया।

भैरवामजी ने अपना तात्पर्य प्रकट करने हुए कहा—'महाराज ! आप

१ भैरवामजी पञ्चाजिया आदि चार भाइयों ने सं० १८५६ के नायडारा धानुषोम में स्वामीजी ने तत्काल समझकर गुरु-धारणा स्वीकार की। उनकी आपत्त भी बिनागी पर ही आधारित भिन्न नायडारा से विहार कर सं० १८५७ में भी नवाङ्ग पधारे थे।

शुद्ध समय पालते हैं और अपमान में भी धैर्यता रखते हैं इसलिए हमें दृढ़ विश्वास है कि आज आपका तिरस्कार करने वाले कल भगवान् मानकर अपने चरणों में धुकेंगे।'

(थावक दृष्टान्त २५)

५४. विरोधी लोगो का बड़ता हुआ विरोध देखकर एक बार आचार्य भिक्षु की आशा टूट गई थी। उन्होंने अन्य सहयोगी साधुओं के साथ चौविहार एकान्तर तप प्रारम्भ किया और जंगल में जाकर नदी की धूलि पर सूर्य की आतापना लेने लगे। पारणे के दिन भी वे गाव से यथाप्राप्त आहार-पानी लेकर जंगल में चले जाते। वृष की छाया में प्रासंगिक स्थान देखकर आहार-पानी रख देते और आनापना लेने के लिए घुस में अत्युष्ण रेतीली धरती पर लेट जाते। आतापना के साथ-साथ ध्यान और स्वाध्याय भी करते। उस कार्य से निवृत्त होने के पश्चात् आहार-पानी करते और सायंकाल वापस गाव में आ जाया करते।'

इस प्रकार आत्म-रक्षाय की भावना से उस समय के रोमाञ्चकारी उद्गार सफलता मिलने के पश्चात् उन्होंने मुनि हेमराजजी के सम्मुख ध्यान किये थे। वे इस प्रकार हैं—

'आहार पाणी जाच नें उज्जाड में सर्व साध परहा जावता। रुचडा री छाया आहार पाणी मेल नें आतापना लेता, आयण रा पाछा गाव में आवता। इण रीने कष्ट भोगवता। कर्म काटता। म्हे या न जाणता म्हारो मारण जमती ने म्हा में यू दीशा लेसी ने यू थावक थाविका हुनी। जाण्यो आत्मा राकारज सारसा, मर पूरा देसा, इम जाण नें तपस्या करता।'

(भिक्षु दृष्टान्त २७६)

उपरोक्त कथन से यह अच्छी तरह जाना जा सकता है कि स्वामीजी को सफलता की कोई सम्भावना नहीं रही थी।

१. जब भीक्षु मन जाणियो, कर तप करुं वित्थायण।
मय नहीं दीर्घ चालतो, अति धन सोम अजाण।
पर छोड़ी भुत पण मत्ते, सज्जम कुण लै सोप।
थावक नें बलि थाविका, हुता न दीर्घ बोप।
एहवी करे आतापना, एकांतर अवधार।
आतापन बनि थादरी, सजा गाथे मार।
चौविहार उरवास बित्त, उगधि पही सहु तज।
आतापन लै बन मत्ते, तप कर तन तावन।

(भिक्षु जज्ञ० रसायण ३।० १० दो० ६ ने ८)

५५. स्वामीजी का श्रीविहार एतान्तर तर तथा आनापना का नम लगवा दो वर्ष तक चलना रहा। इस प्रकार की उलट साधना को देखकर जना क सहज झुकाव होने लगा। वे सोचने लगे कि उच्चकोटि के आत्मावी साधक हैं ऐसा कर सकते हैं। धीरे-धीरे लोगो का आवागमन होने लगा।

उम समय बड़े संत विरपासजी और फतेहगन्धजी ने स्वामीजी में निवेदन किया—'आप तपस्या करके शरीर को क्यों गुप्ता रहे हैं। उमके लिए तो हम हैं ही। आप बुद्धिमान् हैं, अब धर्म का उद्योग करें एवं लोगो को समझाएं क्योंकि अब उनके समझने की पूर्ण सभावना है।'

स्वामीजी ने बड़े साधुओं के गुणाध को मान कर विशेष प्रयत्न करना शुरू किया।^१

(भिक्षु दुष्टान्त २७६)

५६. स्वामीजी धर्म प्रचार के लिए उद्यत हुए। ग्राम-ग्राम में जाकर लोगों को समझाने लगे। व्याख्यान व वार्त्तालाप के माध्यम से श्रद्धा-आचार दयादान आदि तत्वों का विश्लेषण कर अनेक व्यक्तियों को श्रद्धालू, देशप्री और महाप्री बनाया। इस प्रकार धीरे-धीरे धर्म-साध की बुद्धि होने लगी—

दान दया हृद न्याय दीपावता, ओलधावता आधार हो।

जिन वच करि प्रभु माग जमावता, समझा बहु नर नार हो॥

(भिक्षु जश० रसायन का० १० पा० ६)

स्वामीजी की व्याख्या-सीली आकर्षक व रस-युक्त थी। वे प्रवचन करते समय हेतु दुष्टान्त तथा युक्ति द्वारा उसमें इतनी सरगता भर देते कि श्रोताग्न मुग्ध हुए बिना नहीं रहते।

एक बार स्वामीजी ने रोपट में शालिभद्र का व्याख्यान सुनाया। भाई लोग सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वामीजी से कहा—'शालिभद्र का व्याख्यान

१. विरपासजी फतेहगन्धजी इस कहते, स्वाम भोक्छू ने सोय हो।

क्यू तन तोहो ये तपसा करी, समझता दीसै बहु सोय हो।

ये बुद्धिवान् पारी मिर बुद्धि भली, उत्पत्तिया अधिकाय हो।

समझावो बहु जीव सीण भणी, निर्मल बतावी न्याय हो।

तपस्या करां म्हे आत्म तारणी, अधिक पोह्य नहीं और हो।

आर सरो ये तारो अवर नै, जासी बुद्धि नो जोर हो।

मत बहाँ रो वचन भोक्छू सुणी, धारपो धर चित्त धीर हो।

न्याय विशेष बतावता निनेया, हरप्यो हिवहो हीर हो।

(भिक्षु जश० का० १० पा० ५, ६, ७, ८)

तो अनेक बार भुना है, पर इस बार जो आनंद आया वंसा पहले कभी नहीं आया ।'

स्वामीजी ने कहा—'वक्ता की प्रतिपादन शैली भिन्न-भिन्न होने से एक ही व्याख्यान में महत्त्व भिन्नता आ जाती है। इसने इतने आवश्यक की क्या बात है। वक्ता के सम्मुख रसिक व थडालु श्रोता होता है तो वह व्याख्यान अधिकतम सरस बन जाता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २२६)

५७ स्वामीजी मारवाड़ के एक गांव में पधारें। वहां अनेक लोग सम्पर्क में आये और समझे। परन्तु एक प्रमुख व्यक्ति कभी नहीं आया। एक दिन रास्ते में मिला तो स्वामीजी ने मत्संग और धर्म-चर्चा करने की प्रेरणा दी। उसने कहा—'किसी दिन समय मिलने पर आऊंगा। इसके पश्चात् कई दिनों तक वह नहीं आया। एक दिन फिर वह स्वामीजी को मार्ग में मिल गया। इस बार उसे कहा गया तो वह बोला—'आना तो चाहता था पर अवकाश नहीं मिला।'

स्वामीजी ने कहा—'मुबह या शाम को कुछ न कुछ अवकाश तो मिलता ही होगा।'

उसने कहा—'प्रातः दतौन (कुत्ता) करता हूँ बस उस समय थोड़ा-सा अवकाश मिलता है।' यह कहकर वह अपनी दुकान की ओर चला गया। मन ही मन सोचने लगा कि अब मैंने सदा के लिए थला टाल दी है।

दूसरे दिन वह दतौन (कुत्ता) करने बैठा तो अकस्मात् स्वामीजी पधार गए। वह खड़ा हुआ और कुछ लज्जित-सा होकर बोला—'आपने इस समय पधारने की कैसे कृपा की?'

स्वामीजी ने कहा—'कल तुमने यही अवकाश का समय बतलाया था।'

स्वामीजी की उस उदारता से वह गद्गद् हो गया। उसने क्षमा मागते हुए कहा—'स्वामीजी! आज मैं अवश्य आपके चरणों में उपस्थित होजाऊंगा।'

वह व्यक्ति उसी दिन से सम्पर्क में आने लगा। बानचीत व तत्वचर्चा करके समझा और कालान्तर में एक दृढ़ श्रावक बन गया।

इस प्रकार स्वामीजी एक-एक व्यक्ति को समझाने के लिए प्रयत्न करते थे। किसीको कैसे धर्म के प्रति प्रेरित किया जा सकता है, वे इसके पूरे मर्मज्ञ थे।

(अनुभूति के आधार से)

५८. स्वामीजी की भाव-दीक्षा लेने के पश्चात् लगभग १५ वर्ष सपनों से लोहा लेना पड़ा। उसके बाद धीरे-धीरे सकलता के द्वार खुलने लगे। पर सन् १८५३ तक साधुओं की संख्या में विशेष अभिवृद्धि नहीं हुई। भाव-दीक्षा के प्रारम्भ में स्वामीजी आदि १६ साधु थे। तत्पश्चात् कितने वर्षों तक १३ की संख्या नहीं हुई।

१०६ भाग्य मण्डप

साध ८ और १२ के बीच में रही। सं० १८४६ में बेनीगामजी (२८) की दीक्षा के बाद एक बार १३ या १४ की मरणा हुई थी, पर बाद कुछ समय तक रही। पंडितों द्वारा मरणाकरण—

सं० १८४६ में मुनि श्री बेनीगामजी की दीक्षा के समय १० साधु विद्यमान थे, ११वें मुनि श्री बेनीगामजी हुए।

- १ स्वामी भीमराज (स्वर्ग सं० १८६०)
- २ मुनिश्री हरनाथजी (६) (स्वर्ग सं० १८४६-१८६८ के बीच)
- ३ आचार्य भार्गीमानजी (७) (स्वर्ग सं० १८७८)
- ४ मुनिश्री गुरुगामजी (८) (स्वर्ग सं० १८६२)
- ५ .. भार्गीगामजी (१०) (स्वर्ग सं० १८६१)
- ६ .. गामजी (२१) (स्वर्ग सं० १८६६)
- ७ .. गेहमीजी (२२) (स्वर्ग सं० १८८०)
- ८ .. रामजी (२३) (स्वर्ग सं० १८७०)
- ९ .. नानजी (२६) (स्वर्ग सं० १८७१)
- १० .. नेमजी (२७) (स्वर्ग हरनाथजी के बाद सं० १८५३ से पूर्व)
- ११ .. वणीगामजी (२८) स्वर्ग सं० १८७०)

सं० १८४४ से १८६७ के बीच दीक्षित होने वाले साधु—

- १ मुनिश्री रूपचन्दजी (२६)
२. .. गुरतोजी (३०)
- ३ .. वर्धमानजी (३१) (स्वर्ग सं० १८५५)
४. .. रूपचन्दजी (६२)
५. .. मयारामजी (३३) (स्वर्ग सं० १८५५ तक विद्यमान रहे)
६. .. वधनोजी (३४)
७. .. गुरुगामजी (३५) (स्वर्ग सं० १८६४)

सं० १८५३ माघ शुक्ला १३ को मुनि श्री हेमराजजी की दीक्षा के पूर्व निम्नोक्त साधु दिवंगत या गण बाहर हो गये—

१. मुनिश्री हरनाथजी दिवंगत
२. .. नेमजी "
३. .. रूपचन्दजी गणबाहर।
४. .. गुरतोजी गणबाहर।
५. .. रूपचन्दजी "
६. .. वधनोजी "

सं० १८५३ माघ शुक्ला १३ को मुनिश्री हेमराजजी की दीक्षा हुई तब सन में १२ साधु थे। मुनि हेमराजजी तेरहवें मंत्र हुए। उनके बाद कभी भी १३ से

कम सध्या नहीं हुई। उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

भगवान् महावीर के पाचवें उत्तराधिकारी यशोधर स्वामी ने बकचूल (४५ आयमों के अन्तर्गत) सूत्र में श्रमण सघ की वृद्धि के विषय में जो उल्लेख किया है वह यथार्थ हो गया।

बकचूल का विधान इस प्रकार है—

अहं अग्निदत्त साधु, पुणोवि पुच्छई गुहकहणप्पमाणो।

अज्जो कया होई, सुयहीला अवि कया उदओ ॥१॥

अब अग्निदत्त साधु गुरु के आदेश पूर्वक पुनः प्रश्न करते हैं कि हे आर्य! सूत्र की हेलना और उदय कब होगा?

भणई जशोभद्-सूरि, सुय-उवओगेण अग्निदत्त-मुणि।

सुणेमु महाभाग, जहा सुयहीला जहा तहा उदओ ॥२॥

तब यशोधर स्वामी निर्मल ज्ञान द्वारा अग्निदत्त मुनि को बहते हैं—हे महाभाग! सुन, यथा सूत्र-हीलना और उदय।

मोक्खाउ वीरपट्ठणो, दुमएदिय-एकनवद्-आहिएहि।

वरिसाई सपई निव्वो, दिण-पडिमा-गवओ होई ॥३॥

धीर प्रभु के निर्वाण से २६१ वर्षों तक शुद्ध प्रवृत्ति रहेगी, फिर सप्रति नामक राजा जिन प्रतिमा का निर्माण एवं प्रचार करने वाला होगा।

तनो य सोलस्सएहि, नवनवद्-मंजुएहि वरिसेहि।

ते दुट्ठा वाणियग्गा, अवमन्नइमति सुयमेय ॥४॥

उसके बाद १६६६ वर्षों तक अधिकांश अशुद्ध परम्परा होगी और जो दुष्ट लोग हैं वे हिंसा धर्म को स्थापित करके सूत्र की अवहेलना करेंगे।

तम्मि समए अग्निदत्ता, सघमुयराशिनिकखते।

अड्ढतीममो दुट्ठो, सगिस्सइ धूमकेउ गहो ॥५॥

उस समय (वीर० नि० १६६० में) अग्निदत्त सघ और सूत्र की जन्म-राशि पर दुष्ट, सूत्र-मार्ग-विध्वंसक धूमकेतु नामक ग्रह लगेंगे।

तस्स ठिइ तिन्निस्सया, तेतीता एणरासि वरिमाण।

तम्मि भोगपदठो, सघस्स सुअस्स उदओ अत्थि ॥६॥

१. चार सत आगे हुआ, स्वाम भीनू र सोय के।

हेम यथा सन तेरमा, यो पाछे न घटियो कोय के ॥

(हेम नवरमा डा० ३ गा० २३)

२. बकचूलिया में बारछा, चतुरविध सघ नी मोय के।

समत अडारे लेपना पछै, उद-उद पूषा वति होय के ॥

(हेम नवरमा डा० ३ गा० २४)

उपकी ३३३ वर्षों की त्रयस्त्रिंशत्पूर्व होनी तबसे पशुर्दिग मंग का तथा मूत्र मार्ग का पुनः उद्वेग होगा।

मार्गस्य मरु है कि पीर दिग्दिग मे २६१ वर्षों तक मूत्र परम्परा जारी, तबसे १६६६ वर्षों तक अग्नि का मूत्र परम्परा जारी। पी० दि० १६६० ए० दि० सं० १५२० मे ३३३ वर्षों का मूत्रकेतु नामक वृद्ध मगा। उसके १० वर्षों का मम्मपह के उत्तरों ए० मूत्रकेतु की यागवत होने मे पी० दि० २००१ ए० दि० सं० १५३१ मे मूत्रा मृता ने प्रकट होकर मूत्र परम्परा मंगू की। लेकिन मूत्रकेतु की मीउता के कारण बोडे वर्षों के बाद वृद्ध मृगित हो गई। फिर मूत्रकेतु के वृद्ध होने पर पी० दि० सं० २२८७ ए० दि० सं० १८१७ (पंचांगानुसार) आचार्य शुक्ला १५ की भिक्षु स्वामी ने दीक्षा ली पर मूत्रकेतु के रहने मे पशुर्दिग मंग की विशेष वृद्धि नहीं हुई। पी० दि० २३२३ ए० दि० सं० १८५३ मे मूत्रकेतु के उत्तरने मे हेमराजजी स्वामी की दीक्षा हुई और पशुर्दिग मंग की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

५६ आचार्य मिश्र ने जैन-आगमों के आधार पर राजस्यानी भाषा मे सुन्दर सरस और हृदय-स्पर्शी पद्य-गद्यात्मक साहित्य का निर्माण किया। जिनकी ब्लोक सख्या लगभग ३०००० है। वे समय रचनाये 'मिश्र ग्रन्थ रत्नाकर' नामक पुस्तक मे लिखित है।

साहित्य का चुम्बक दिग्दर्शन परिशिष्ट १ (क) पृ० ३२५ तथा साहित्य की तालिका परिशिष्ट १ (घ) पृ० ३३८ मे देखें।

६० आगरिया मे प्रतापजी कोठारी ने पूछा —

‘आप कविता कैसे करते हैं?’ स्वामीजी के पास उम्र समय एक सफेदे की टोपसी खुली पड़ी थी और तेज हवा चल रही थी। इस प्रसंग को देखकर उन्होंने तत्काल एक गाथा रचकर सुनाई—

नाम्ही सी एक टोपसी, मांहे छाल्यो सफेदो।

जतन घणा कर राख्यो, नही तो पड़ ज्यावेला रेतो ॥१॥

(भिक्षु दुष्टान २४४)

६१ प्रतिपक्षी के प्रतिकूल व्यवहार से शुरुय न होना और उससे कुछ न कुछ गुण का ग्रहण करना उत्तम पुरुषों का लक्षण है। स्वामीजी के प्रेरक प्रसंग प्रमाणित करते हैं कि वे कितने गुण-ग्राहक एवं आत्म-द्रष्टा थे।

६२ एक बार स्वामीजी बिहार करते हुए ‘देसूरी जा रहे थे। मार्ग मे घाणे-राय के महाजन मिले। उन्होंने पूछा—‘तुम्हारा नाम क्या है?’ स्वामीजी ने कहा ‘मेरा नाम भीष्मण है।’ तब वे बोले—‘क्या भीष्मणजी तेरा पथी तुम ही हो?’ स्वामीजी—‘हां, मैं यही हूँ।’ तब उनमें से एक व्यक्ति ने आवेश मे आकर कहा ‘तुम्हारा मुह देखने वाला मरक मे जाता है।’ स्वामीजी ने तत्काल उसट कर पूछा

‘तुम्हारा मुह देखने मे?’ उसने सिर ऊंचा उठाने हुए गर्वित स्वर में कहा—‘मेरा मुह देखने वाला स्वर्ग में या मोक्ष में जाता है।’

स्वामीजी बोले—‘किसी का मुह देखने मात्र से स्वर्ग या नरक मिलता ही यह बात तो नहीं मानते। पर तुम्हारे ही कथनानुसार हमने तो तुम्हारा मुह देखा है अतः हम तो स्वर्ग या मोक्ष में जायेंगे और तुमने हमारा मुह देखा है इसलिए नरक के अधिकारी तुम ही बनोगे।’ यह सुनकर वे सब चुपचाप आगे चले गये।

(भिवखु दृष्टान्त १५)

६३ किसी ने आकर स्वामीजी से कहा—‘अमुक जगह भोग एकत्रित होकर आपके अवगुण निकाल रहे हैं?’ स्वामीजी बोले निकाल ही रहे हैं, बाल तो नहीं रहे हैं। मुझे अवगुण निकालने ही हैं। कुछ मैं निकालूंगा, कुछ वे निकालेंगे। जिससे अवगुण शीघ्र ही निकल जायेंगे।’

(भिवखु दृष्टान्त १३)

६४ एक बार एक व्यक्ति प्रश्न का जवाब न आने से झड़ताकर स्वामीजी के सिर पर ‘ठोला’ लगाकर चलता बना। देखने वाले लोगों के दिल में यह बात काटे की तरह चुभ गई और उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। स्वामीजी ने उनको कहा—‘ठोला तो मेरे सिर पर लगा है, जब मुझे ही क्रोध नहीं आया तो तुम्हें क्यों आया? तुम जानने ही हो जब कोई व्यक्ति बाजार में एक टके की (हडिया) हाथी लेने जाता है तो टकोरा लगाकर देखता है उसकी परीक्षा करता है। तो क्या पता उमने भी गुरु बनाने के लिए मेरी परीक्षा की हो।’

स्वामीजी के गुणग्राही वचनों से सबका आवेश शान्त हो गया।

(श्रुतानुश्रुत)

६५ म० १८५० में दो साधु अखैरामजी (१०) और रूपचन्दजी (२६) तेरा पय से अलग हो गए। उन्होंने ईर्ष्याविश भिक्षु स्वामी पर अनेक दोषों का आरोप लगाता शुरू किया। आत्म-द्रष्टा स्वामीजी ने ज्यो-ज्यो सुने त्यो-त्यो लिख लिये। कुल १५६ दोष लिखे गये। भिक्षु स्वामी के हाथ का वह पत्र आज भी सुरक्षित है।

६६ एक बार पाली में चातुर्मास करने के लिए स्वामीजी गये वहां एक दूकान में ठहरे। किसी ने दूकान वाले के घर जाकर उसकी औरत को ऐसा कहकर बहुतका दिया कि ये वास्तविक सुदी १५ तक वहां में नहीं जायेंगे। तब उमने स्वामीजी को स्थान खाली करने के लिए कहा और बोली—‘यहां ठहरने की मेरी आज्ञा नहीं है।’

स्वामीजी ने कहा—‘बहिन! चातुर्मास में भी जब तू कहेगी तब हम दूसरी जगह चले जायेंगे।’ बहिन ने कहा—‘मुझे आप जैसे साधु कह गए कि ये चातुर्मास

१. अखैरामजी वापस प्राणवित्त लेकर गण में आ गये।

प्रारम्भ होने के बाद स्थान को छोड़ेंगे नहीं, इसलिए मेरी दूकान अभी ही खोली कर दो।'

आखिर स्वामीजी उस दूकान को छोड़कर उदियापुर बाजार की एक दूकान की मेझी पर चले गये। दिन में ऊपर रहने और रात को नीचे दूकान में व्याख्यान देते। पहले की अपेक्षा वह स्थान मौके पर होने से व्याख्यान में लोग बढ़ी जाने लगे। अच्छा उपकार हुआ। उस दूकान को छुड़ाने का भी काफी प्रयत्न किया गया। पर उसके मानिक ने कहा—'वास्तिक पूर्णिमा तक तो मैं किसी भी हात में मना नहीं करूँगा।'

उस चातुर्मास में वर्षा बहुत हुई। जिस दूकान में स्वामीजी पहले ठहरे थे, वह गिर गई। स्वामीजी को जब इस बात का पता लगा तब उन्होंने घरमाया—दूकान छुड़वाने वाली पर उच्चरस्यता (असर्वज्ज्ञता) के कारण कुछ उत्तेजना आ सकती है पर वास्तव में उन्होंने हमारे साथ उपकार ही किया।'

(भिक्षु दृष्टान्त २)

६७ स्वामीजी पाली में पधारे जब बावेचा परिवार के लोगो ने शिवो फैलाना प्रारम्भ किया। उन्होंने ब्राह्मणों को भिड़वाने हुए कहा—भीषणजी तुम देने में पाप कहते हैं अतः हम तुम्हें दान नहीं देंगे। ब्राह्मणों ने स्वामीजी से उक्त बात कही तब उन्होंने कहा वे लोग आपको पांच रुपये दें तो भी मेरे इन्कार का त्याग है। ब्राह्मणों ने बावेचों से कहा—'बापजी ने पांच रुपये का हुक्म दिया है। अतः पांच रुपये दीजिए।' सुनते ही सबकी जवान बढ़ हो गई।

रात को व्याख्यान के समय वे लोग ढोल बजाकर विघ्न डालने लगे। कथावकों ने स्वामीजी से दूसरी जगह पधारने के लिए कहा। स्वामीजी बोले—'सेतमीजी नये साधु हैं अतः इसी स्थान में रहकर देखते हैं कि वे परिपक्व सहने कितने मजबूत हैं।'

पर्युषण पर्व पर उन लोगो ने इन्द्र-ध्वज महोत्सव मनाते हुए जुलूस निकाला स्वामीजी जिस दूकान में ठहरे हुए थे उसके सामने से जुलूस साये और बड़े बहून देर तक रुक कर नाचने व गाने बजाने लगे। व्याख्यान में व्याघात पड़ने। कुछ श्रावकों को गुस्सा आ गया। वे उत्तेजित होकर जुलूस वालों का निषेध करने लगे। स्वामीजी ने उन्हें टोकते हुए कहा—'ये लोग भगवान को प्रतिमा मानते अतः या तो भगवान के सामने नाचते हैं या भगवान की प्रतिमा अर्थात् साधुओं के सामने। तुम लोग इन्हें क्यों रोक रहे हो।'

१ इस घटना के सबब का उल्लेख नहीं मिलता पर स्वामीजी ने सं० १८२३४ पाली में सर्वप्रथम चातुर्मास किया था। अनुमानतः उस वर्ष की घटना हो।

स्वामीजी के इस कथन ने गारक तो झट्ट हुए ही पर मृगशीर्ष करने वाले भी यह बर्तन हुए आगे चलते बने कि हमारे उनटे पुनटे शत्रुओं के धीव भी ये तो मुनटा-मुनटा ही विचार करते हैं।

(भिक्षु दृष्टान्त ६५)

६८ स्वामीजी के मई दीक्षा लेने के बाद कई वर्षों तक गण में साधु धारक और श्राविता तो बने पर साध्वियां नहीं हुईं। इनके लिए एक ध्वनि ने स्वामी जी से कहा — आपके गण में तीर्थ तीव्र है, अब वह तीर्थ गण लट्टू गड़ित अपूर्ण है।

स्वामीजी ने उनके ध्वन का उत्तर देने हुए कहा — 'मोरख गड़ित घने ही हो पर वह धौगुनी चार-गुनी धौनी मिलाने में धौगुनी का लट्टू बहुमात्रा है इसलिए जिनका है उनका स्वाद में परिपूर्ण है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २३)

इस घटना के कुछ समय पश्चात् ही तीन बहनें दीक्षा के लिए तैयार हुईं। स्वामीजी ने उनमें कहा — 'अभी तक हमारे गण में कोई साध्वी नहीं है, इसलिए तीनों में से एक का वियोग हो गया तो गण दो की गनेप्रता करनी होगी क्योंकि दो साध्वियों को विपरता नहीं चलना मुझें यह शर्त स्वीकार हो तो दीक्षा लेना।'

इस प्रकार स्वामीजी ने पक्का करार किया। वे भी वीर वृत्ति से उनके लिए स्वीकृत हो गई। तब स० १८७१ में स्वामीजी ने तीनों बहनों को दीक्षा प्रदान की।

इसके बाद सध में अनेक साध्वियां हो गई पर स्वामीजी की नीति प्रारम्भ से ही बहुत स्पष्ट और निर्मल थी।

(भिक्षु दृष्टान्त १४७)

तीन साध्वियों के नाम इस प्रकार हैं

कुशालाजी, अजबूजी और मट्टूजी। वे तेरापय की आदि साध्वियां हुईं।

ज्याचार्य ने शासन विभाग डाल २ दौ० २, ३ में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है...

इकत्रीमा रे आसरे, तीन जण्यो तिहवार।

एक साथ घत आदर्या, पहिला कियो करार ॥

त्रिरह पड़े जो एक नी, तो दोषां ने देख।

रहियो नहीं करवी तदा, सलेखणा सुविमेश ॥

६६ स० १८३२ मृगसर यदि ७ को स्वामीजी ने आने शिष्य भारीमालजी को युवाचार्य पद दिया। साधु समाज के लिए दूरदर्शिता पूर्वक नया विधान बनाया जिसकी मुख्य धाराएं निम्नोक्त हैं

१. सभी साधु-साध्वियों को एक आचार्य (भारीमल) की आज्ञा में चलना।

२ जेयकान गिरार तथा पातुर्गोत आचार्य के आदेश में करना ।

३ अथवा अथवा गिरार गिरार न करना ।

४ दीक्षा आचार्य के नाम में देना ।

५ नव नरों का शान करना कर दीक्षा देना ।

६ आचार का मन्त्र प्रकार में पामन करना ।

७ कोई साधु दीक्षा का सेवन करे तो तत्काल उसे कहना एवं प्राप्तिपत्र देना ।

८ थड़ा आचार तथा कला का कोई भोज समझ में न आये तो आचार्य तथा बुद्धिमान साधु में पूछकर निर्णय करना ।

९. कोई साधु मद्य से असम हो जाए तो उसे साधु मन समझना, चार तीरों में नहीं गिनना ।

१०. साधु साधियों की परम्परा उतरती (आमोचनामक) बात मनाकर ।

११. आचार्य जिसे (गुरु भाई अथवा शिष्य) अपना उत्तराधिकारी बने, उसे महर्षि स्वीकार करना । इत्यादिक .

सामूहिक लिखन सं० १८१२ में १

उक्त लेखक सविधान के समय मद्य में ग्यारह साधुओं के होने का प्रमाण मिलता है । मर्यादा पत्र युवाचार्य भारीमाल जी के नाम से लिखा गया था । मर्यादा जी स्वयं विद्यार्थी थे ही । मुनि श्री टोकरजी के हस्ताक्षर किसी भी लेखन में नहीं मिलते । इसका यही अनुमान लगता है कि उन्हें हस्ताक्षर करना न आता हो ।

लेखन में हस्ताक्षर करने वाले ८ साधु निम्न प्रकार हैं

१. मुनि श्री विरपालजी (१)

२. " वीरभाणजी (४)

३. " हरनाथजी (६)

४. " गुजरामजी (६)

५. " तिलोकचन्दजी (१२)

६. " बन्धुभाणजी (१५)

७. अग्ररामजी (१०)

८. " अणदोजी (१६)

लिखमोजी (८) अमरोजी (११) मोत्रीरामजी (१३) और पनजी (१७) ।
उक्त अथवा से पहले गणवाहर तथा मुनि गिवरामजी (१४) दिवंगत हो गये थे ।
ऐसा अनुमान से निश्चय निकलता है ।

लेखन में साधियों के हस्ताक्षर नहीं हैं पर उस समय कम मद्य १६ थे ।

१. आचार्य से दीक्षा-पर्याप्त में जो साधु बड़े होने हैं वे गुरु भाई और जो छोटे होने हैं वे शिष्य कहलाने हैं ।

की कुछ माझिया विद्यमान थी।

स्वामीजी आवश्यकानुसार समय-समय पर अनेक लेखपत्र बनाते गए उनका अंतिम लेखपत्र (मर्यादा पत्र) स० १८५८ माघ शुक्ला ७ शनिवार का है।

जयधर्म ने स्वामीजी के हाथ से लिखे गये मूल लेखपत्र की जोड़ की। उसमें उमदिन (माघ शुक्ला ७ को) हस्ताक्षर करने वाले ११ साधुओं के नाम लिखे हैं पर बाद में हस्ताक्षर करने वालों के नहीं।^१ सम्भवतः मुनिहेमराजजी और रामजी कुछ समय पश्चात् पहुँचे और उन्होंने उन लेखपत्र पर हस्ताक्षर किये जिससे मूल लेखपत्र में हस्ताक्षर करने वाले साधुओं की संख्या १३ हो गई।

मुनि राघवदजी ने मूल लेखपत्र की प्रतिनिधि की। उसमें हस्ताक्षर करने वालों के १३ तो मूल लेखपत्र के तथा ६ नाम और हैं। लगना है कि स्वामीजी के स्वर्णवास के पश्चात् चानुर्मम के बाद छह साधुओं के नाम उन्हें पूछकर लिख दिये गये हैं। छह साधुओं में मुनि जीवोत्री (४४) मिरियारी चानुर्मम में स्वामीजी के साथ थे। पाँच साधुओं का अन्यत्र चानुर्मम था। दो साधुओं के न मिलने पर उनका स्थान खाली छोड़ दिया गया है।^१

मूलपत्र

प्रतिनिधि

| | |
|--------------|--------------------------|
| १. मुखरामजी | १ मुनि श्री मुखरामजी (६) |
| २ अमररामजी | २ „ अमररामजी (१०) |
| ३. | ३ „ सामजी (२१) |
| ४. खेतमीजी | ४ „ खेतमीजी (२२) |
| ५. हेमजी | ५ „ रामजी (२३) |
| ६ नानजी | ६ „ नानजी (२६) |
| ७. रामजी | ७ „ वैष्णोदासजी (२८) |
| ८ मुखजी | ८ „ मुखजी (३५) |
| ९. | ९ „ हेमराजजी (३६) |
| १०. उदररामजी | १०. „ उदररामजी (३७) |
| ११ खुशालजी | ११. „ खुशालजी (३८) |
| १२. ओटोत्री | १२ „ ओटोत्री (३९) |

१ कैयक मत स्वामी पास न होता, तब वेना अक्षर कीया नाही।

तिण स्पू कैयका रा नाम न चाल्या, त्या पछे लिहया ते नहीं दण माही हो ॥

भिन्न कर ना अक्षर देखी, जोड रची मुखकार।

उपणीती चवई मास वैशाख, शुक्ल चोथ शनिवार हो ॥

(स० १८५९ लेखपत्र की जोड़ दा० ४ (मूल० १७) पा० १८, २०)

२. माधूजी (४०), ताराचन्दजी (४२)।

| | | |
|---------------|-------|----------------|
| १३. | १३. " | |
| १४. रायचन्दजी | १४. " | रायचन्दजी (४१) |
| १५. | १५. " | |
| १६. झुगरमीज | १६. " | झुगरमीजी (४१) |
| १७. भगजी | १७. " | जीवोजी (४४) |
| १८. | १८. " | जोधोजी (४६) |
| १९. | १९. " | भगजी (४७) |
| २०. | २०. " | भागचन्दजी (४८) |
| २१. | २१. " | भोगजी (४९) |

लेखपत्र में साध्वियों के हस्ताक्षर नहीं हैं पर उस समय २७ के आसपास साध्वियाँ थीं।

दोनों लेखपत्रों में स्थान उल्लेख नहीं मिलता पर प्रथम सं० १८३२ (व्यक्ति-गण लेखपत्र ७) के लेखपत्र में स्वामीजी ने धीरमाणजी द्वारा गण के अवगुणवाद रूप कही गई बातों का सफलन किया है। उस लेखपत्र की ग्यारहवीं पंक्ति में लिखा है—'यह 'बीठोरा' में लिखत में मतो घाल्यो ते सरमा सरमी घाल्यो छै।'

इसमें प्रमाणित होता है कि सं० १८३२ मृगमर यदि ७ के दिन युवाचार्य विदुषि का लेखपत्र 'बीठोरा' ग्राम में लिखा गया था।

कवचिन् पाती में युवाचार्य पद देने का उल्लेख मिलता है पर उपर्युक्त उल्लेख से बीठोरा ही यथार्थ लगता है।

सं० १८५६ में स्वामीजी ने पाती धातुमार्ग किया। उसके बाद उनका विहार प्रायः चाणोद व पीपाड के मध्यवर्ती क्षेत्रों में हुआ था। पर यह निर्णीत नहीं किया जा सकता है कि सं० १८५६ का अन्तिम मर्यादा पत्र कहाँ लिखा गया है।

७०. कोई व्यक्ति किसी साधु-साध्वी से दोष देने तो उसे क्या करना चाहिए, इस मर्म में आचार्य विदुषि लिखते हैं—

गुरु चेला ने गुरुमार्ग माँही, दोष देयें तो देजो बगई।
 त्यागू रिग करणो नही टाणो, निग रो काइणो गुरम निहायो।
 बगई दिना रा दोष बगई, ते तो मानस में रिम आवै।
 साधु सुट तो केवयो जगै, छद्ममय प्रतीन न आवै।
 हेन मरिद सो दोषण काँकै, हेन दूटा कह्यो नहि माँकै।
 निग रो रिम आवै परनीन, निग ने जग लेणो विरतीन॥

(साधुसाध्वी की चौ० दा० १५ गा० १, ८, ९)

७१. कुछ ब्राह्मण स्वामीजी के नाम में आकर पूछने लगा—

क्या बगई आचरण का अध्ययन किया है?

स्वामीजी ने कहा—मैं ब्राह्मण नहीं बड़ी।

ब्राह्मण—व्याकरण पढ़े बिना तो सिद्धान्तों का अर्थ हो ही नहीं सकता ।

स्वामीजी—आप तो व्याकरण पढ़े हुए हैं ?

ब्राह्मण—हां, मैं व्याकरण पढ़ा हुआ हूँ ।

स्वामीजी—क्या आप शास्त्रों का अर्थ कर सकते हैं ?

ब्राह्मण—हां, मैं उसके लिए समर्थ हूँ ।

स्वामीजी—‘कपरे मग्ने अक्खाया’ का अर्थ बतलाइये ?

यह पद्य सुनते ही पंडितजी की मति चकरा गई और जोश में मदन अर्थ करते हुए बोले—कपरे-कैर, मग्ने-मूंग, अक्खाया-आखा, टुकड़े किये बिना न खाना ।

स्वामीजी—आगमों में ऐसा अर्थ तो कहीं नहीं आया ।

ब्राह्मण—(सकुत्ता हुआ) तो फिर इसका क्या अर्थ होगा ?

स्वामीजी—कपरे-कितने, मग्ने-मार्ग, अक्खाया-भगवान् ने बतलाये हैं ।

पंडितजी का अहं चूर-चूर हो गया और वे चुपचाप रवाना हो गये ।

(भिक्षु दृष्टान्त २१८)

७२. कांकरला गांव में साधु गोचरी गए । वहां पर एक जाटिणी के घर पर ‘घोवण’ का प्रामुक पानी था, पर वह देता नहीं चाहती थी । उसका कहना था कि जो व्यक्ति जैसा देता है, वैसा ही आगे पाता है । अतः यदि मैं आपको घोवन दूंगी तो मुझे भी आगे यही मिलेगा किन्तु मेरे से ऐसा घोवन पीया नहीं जायेगा ।

संतों ने वापस आकर सारी बात स्वामीजी से कही तो वे बोले—‘बखी मैं चलकर समझाता हूँ ।’ स्वामीजी ने वहां जाकर जाटिणी को प्रामुक पानी देने के लिए कहा तो उसने अपनी वही बात दुहराई ।

स्वामीजी ने कहा—तुम अपनी गाय को क्या खिलाती हो ?

जाटिणी—घास-फूस आदि ।

स्वामीजी—तो क्या गाय तुम्हें वापस घास-फूस ही देती है ?

जाटिणी—नहीं वह तो दूध देती है ।

स्वामीजी—तो तुम फिर यह कैसे कहती हो कि जैसा देता है वैसा ही पाता है ? देखो बहिन ! जिस प्रकार गाय घास के बदले में दूध देती है उसी तरह साधु को घोवन देने से महान् लाभ होता है ।

जाटिणी के दिमाग में यह बात शट से बँठ गई और वह प्रामुक पानी देने के लिए तैयार हो गई । स्वामीजी उसे लेकर साधुओं सहित स्थान पर आ गए ।

(भिक्षु दृष्टान्त १४)

७३. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—‘संसार में दत्तने सम्प्रदाय हैं, उनमें साधु कौन और असाधु कौन है ?’ स्वामीजी ने कहा—‘किमी अग्ने भ्रादमी ने वैद्य से पूछा—इस शहर में नंगे कितने और वस्त्र सहित कितने ?’ वैद्य बोला—‘इनकी सङ्ख्या करना मेरा काम नहीं है । मैं औषध के द्वारा तुम्हारी आँखें ठीक कर देता

हूँ। फिर तुम राग देगेंगे कि नमो किया और गहम किया?’

इसी तरह मैं साधु-असाधु के लक्षण बता देता हूँ। फिर तुम ही परीक्षा कर लेना कि साधुकी असाधु की है क्योंकि कतिपय दिनों के लिए कहो मेरे स्थिर रह जाऊँगे।

(भिक्षु दृष्टान्त ६१)

एक बार उग्रमुखा प्रजा एव अन्ध भाई ने स्वामीजी से किया तब स्वामीजी ने उमरे दूधरे उदाहरण में समझाया। स्वामीजी ने कहा—‘जिम प्रकार कपड़े उधार लेकर वापस दे देना है वह साधुसार और लेकर वापस नहीं देना वह शिष्या कहा जाता है। इस आधार में प्रत्येक व्यक्ति की जाँच की जा सकती है। ठीक इसी तरह जो पाँच महाव्रतों को ग्रहण कर उनका सम्पूर्ण पालन करता है वह साधु और नहीं करता वह असाधु होता है। इस लक्षण में तुम स्वयं साधु-असाधु की परीक्षा कर सकते हो।’

(भिक्षु दृष्टान्त १००)

७४ वाली में पीपाड निवासी चोपड़ी बोहरा की दूकान थी। पानुमर्त के बाद स्वामीजी वहाँ कपड़ा लेने के लिए गये। उमरे दो वामती (रेजी) कपड़ा देकर स्वामीजी से पूछा—‘मैं आपको साधु नहीं मानता और मैंने आपको कपड़ा दिया, उसका मुझे क्या लाभ हुआ?’

स्वामीजी ने कहा—‘किसी ने पाई तो मिथो और समझा जहर तो क्या वह मरेगा या नहीं?’

तब चोपड़ी बोहे —‘वह नहीं मरेगा क्योंकि उमरा गुण मारने का नहीं है।’ स्वामीजी ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—‘जैसे हम साधु हैं, हमको तुमने असाधु समझ कर कपड़ा दिया वह तुम्हारे शान की कमी है, परन्तु साधुओं को देना तो धर्म ही है।’

(भिक्षु दृष्टान्त ६२)

७५ एक बार स्वामीजी पारबिया (मारवाड़ जवगन के पास) पधारे। भिक्षा के समय एक बहन ने कहा—‘महाराज! जब हमारी भैंस दूध दे तब आप पधारे तो मैं पाय-दान का लाभ लूँ क्योंकि भैंस बियाने के बाद एक महीने तक दूध-बही को खाने के ही काम में लिया जाता है लेकिन उसका बिलौना नहीं करते। इसलिए आप उस देवी के समय पधारने की कृपा करें।’

स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा—‘बहन! कब तो तुम्हारी भैंस बियाए, कब देवी हो, कब हन समाचार मिले और कब हम आये? अतः हम दूध बिना भिये ही तुम्हारी भावना समझ लेंगे।’

(भिक्षु दृष्टान्त १५)

७६. बूंदी में गवाँदरामजी ओस्तवाय स्वामीजी से चर्चा कर रहे थे। विविध

विषयों पर काफी देर तक बातचीत कर लेने के पश्चात् भी जब उन्होंने बात का जन समाप्त नहीं किया तो स्वामीजी ने कहा—‘गाय-भैस के आगे जब चारा अधिक डाल दिया जाता है तो वह उसे अधिक चिमेरती है अतः आज जितनी बात की है पहले उसे हृदयगम कर लो, आगे की बात फिर करना।’

इस बात पर सवाईरामजी कुछ अप्रमत्त होकर फिर बोले—‘आपने तो मुझे पशु बना दिया तब फिर और बात क्या करनी है?’ स्वामीजी ने उनकी अप्रसन्नता का उन्मूलन करते हुए कहा—‘इस प्रकार उपमा देने मात्र से तुम पशु बन गए तो मेरा ज्ञान भी चारा बन गया?’

ऐसा कहने से वे प्रसन्न हो गए। बाद में उन्होंने स्वामीजी को गुरु रूप में स्वीकार कर लिया।

(भिक्षु दृष्टान्त १)

७७. स्वामीजी के साथ चर्चा करने समय एक भाई अट-सट बोला करता था। इस पर किसी ने स्वामीजी से कहा—‘यह दतता उठता-मीधा बोलता है तो फिर आप इससे चर्चा क्यों करते हैं?’ स्वामीजी ने कहा—‘बालक जब तक नहीं समझता तब तक अपने पिता की मूर्छें भी पकड़ लेता है। पगड़ी पर भी हाथ मारता है, किन्तु कुछ समझ आने पर वही बातक पिता की सेवा करता है। ठीक इसी तरह इसे अभी साधुओं की पूरी पहचान नहीं है अतः उलटा-सीधा बोलता है पर जब समझ आ जाएगी तब वह भक्ति करने लगेगा—’

(भिक्षु दृष्टान्त २८७)

७८. स्वामीजी के साथ चर्चा करते-करते एक व्यक्ति के श्रद्धा के मुख्य-मुख्य बोल समझ में आ गये। फिर भी वह बोला—‘आप कहते हैं वह बात तो ठीक है परन्तु कुछ बोल पूरी तरह समझ में नहीं आ रहे हैं।’ स्वामीजी ने उदाहरण द्वारा समझाते हुए कहा, दम सेर चावलों का चरु (वर्तन) चूल्हे पर पकाने के लिए चढ़ाया गया। कुछ समय बाद हाथ से जांच करने पर ‘ऊपर के चावल सीज गये तो नीचे के चावल भी सीज गये’ ऐसा समझदार व्यक्ति जान लेता है लेकिन भूख ‘ऊपर के चावल तो सीज गये पर नीचे के सीजे या नहीं’ ऐसा सोचकर नीचे हाथ डालता है तो उसका हाथ जल जाता है।’

इसी तरह आदमी खास खास बोल समझ लेने के बाद यह विश्वास कर लेता है कि दूसरे बोल भी सत्य होंगे।

(भिक्षु दृष्टान्त २९८)

७९. एक बंद ने एक व्यक्ति के आश की विक्रिया की। आश ठीक होने के बाद बंद ने उसमें बधाई मांगी, तब उसने कहा—‘मैं पचो से पूछूँगा, वे कहेंगे तुझे दिखाई देने लग गया है तो मैं बधाई दूँगा, नहीं तो नहीं।’

बंद ने कहा—‘तुझे दिखाई देता है या नहीं?’ वह बोला—‘मुझे भले ही

दिखाई दे, पर जब पच वह देंगे कि तुझे दीयता है, तब ही बघाई मिलेगी।' बंध ने सोचा—'इससे बघाई की आशा रखना 'गगन-कुसुम' की तरह है।'

स्वामीजी ने कहा—'किसी के हृदय में श्रद्धा जम गई तब उसे कहा कि तुम गुरुधारणा कर लो।' वह बोला—'दो चार व्यक्तियों को तथा विछने गुरुजी को पूछूंगा, वे कह देंगे कि तुम्हारे दिन में श्रद्धा जम गई है तब मैं गुरुधारणा करूंगा।'

इस तरह जो व्यक्ति बिना तथ्य की बात करता है तो जान लेना चाहिए कि उसके अच्छी श्रद्धा जमी ही नहीं है।

(भिक्षु दृष्टान्त ८०)

८० एक बार स्वामीजी ने शिरियारी में भातुर्माग किया। जोधपुर नरेश विजयसिंहजी नायद्वारा (श्रीनायजी के दर्शनाय) जाने समय वर्षा के कारण बहा ठहरे। उनके मुमही (उमराव) स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आये। स्वामीजी से उन्होंने पूछा—'पहले कुकडी (मुर्गी) हुई या अडा, पहले घण (मोटा व भारी हथोड़ा जिससे गर्म लोहा पीटकर दूसरे रूप में बदला जाता है), हुआ या अहिरण (लोहे का वह चौकोर टुकड़ा जिस पर लोहार गर्म लोहा रखकर पीटता है)। उपा: पहले बाप हुआ या बेटा इत्यादि अनेक पूछे।' स्वामीजी ने उनके प्रश्नों का पुष्टि सहित समाधान किया। वे प्रसन्न होकर बोले—'महाराज! ये प्रश्न हमने बहुत जगह पूछे, परन्तु इस तरह किसी ने भी जवाब नहीं दिया। आप की बुद्धि तो ऐसी है कि आप किसी राजा के मुमही बनते तो अनेक देशों पर आधिपत्य करते।'

स्वामीजी ने कहा—'ऐसा करने वाला कहाँ जाना है?'

उमराव ने कहा—'जाना तो नरक में पड़ना है।'

स्वामीजी बड़ी निस्पृहता से बोले—

'बुद्धि जिगा री जानियै, जे सेवै जिन-धर्म।

और बुद्धि किण काम री, सो पड़िया बाधं कर्म॥'

बुद्धि बही अच्छी है जो श्रेय की ओर से जाये। जिस बुद्धिमत्ता के कारण आत्मा दुर्गति में जाये वह बुद्धि किण काम की।

स्वामीजी की भाविक वाणी की सुनकर वे बहुत गृहा हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त ११२)

८१ किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'बोई साधु रामने मे घक गया हो, उधर मे गह्वर ही मे बोई बैलगाड़ी आ गई हो, उस पर साधु को बिटाकर गांव में लाये तो उसको क्या हुआ?' स्वामीजी ने कहा—'गाड़ी के बंदे यदि गया हो और उस पर बिटाकर लाया जाय तो?' उसने झन्झकाकर कहा—'आप कपड़े की बात क्यों करते हो?' स्वामीजी बोले—'साधु को अहंता की दृष्टि में कहीं और कपड़े पर धनना समान है अतः साधु के लिए दोनों ही बर्बरता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त १२१)

८२. एक बार स्वामीजी 'पीपाड' में विराज रहे थे। गोचरी के समय जब वे एक मुहल्ले में गये तब एक बहिन ने कहा—'अमुक बहन ने भीखणजी की श्रद्धा स्वीकार की, जिससे वह विधवा हो गई।' स्वामीजी स्मित मुद्रा में बोले—'बहन! तुम तो भीखणजी की निन्दा करती हो फिर इस बाल्यावस्था में विधवा कैसे हो गई?' पाम में खड़ी अन्य बहनों ने स्वामीजी को पहचान कर उममें कहा—'भीखणजी स्वयं ये ही हैं।' यह सुनकर वह इतनी लज्जित हुई कि तत्काल भागकर घर में घुस गई।

(भिक्षु दृष्टान्त ३८)

८३. पीपाड में एक भाई ने स्वामीजी के पास गुरुधारणा की। उसके घर वालों को जब इस बात का पता चला तब उन्होंने उसे बहुत धमकाया, वे बोले—'भीखणजी से जो गुरुधारणा स्वीकार की, वह वापस दे जाओ।' वह स्वामीजी के समीप आकर बोला—'आपने मुझे गुरुधारणा दिलवाई तथा त्याग करवाए वे वापस ले लीजिए, क्योंकि मेरे घरवाले मुझे बहुत परेशान कर रहे हैं।' स्वामीजी ने कहा—'तुम ही बताओ कि दिये हुए 'डाम' क्या वापस लिए जा सकते हैं?'

(भिक्षु दृष्टान्त ११६)

८४. किसी भाई ने स्वामीजी से कहा—'भगवान् ने (ईश्वर ने) हरियाली तो खाने के लिए ही बनाई है अतः उसका परि त्याग करने की आवश्यकता नहीं है।' स्वामीजी बोले—'तब तो तुम्हारे कथनानुसार भगवान् ने तुम्हें ही नाहर का भक्ष्य बनाया है। जब वह खाने के लिए आता है तब तू भाग क्यों जाता है?' वह बोला—'मुझे तो तकलीफ होती है।' स्वामीजी ने उसे समझाते हुए कहा—'इसी तरह सभी जीवों को जानना चाहिए। उनका वध करने से उन्हें भी महान दुःख होता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त २३६)

८५. किसी ने स्वामीजी से कहा—'आप और बाईंग सम्प्रदाय के साधू एक हो जाइए।' स्वामीजी ने पूछा—'आप महाजन, कुम्हार, जाट, गूजर आदि सब एक हो सकते हैं या नहीं?' वह बोला—'हम तो एक नहीं हो सकते क्योंकि हमारी और उनकी जाति भी अलग है।' स्वामीजी ने कहा—'हमारे और इनमें श्रद्धा का मौलिक अन्तर है वह मिटने से ही हम एक हो सकते हैं।'

(भिक्षु दृष्टान्त २०६)

१. रोग विशेष को ठीक करने के लिए शरीर के अलग-अलग विभागों को गर्म की हुई सोह इनाश में रखा जाता है, उसे 'शाम' कहते हैं।

उपयुक्त प्रश्न का स्वामीजी ने दूगरे दुष्टान्त के द्वारा भी समाधान किया था। यह इस प्रकार है—'एक ब्राह्मण अपनी पत्नी को लेकर परदेश गया। व्यापार में उमने अच्छी सम्पत्ति कमाई। कुछ दिन बाद उगका देहान्त हो गया। ब्राह्मणी किसी पटान के प्रेम में फसकर उगी के घर रहने लग गई। उमके दो पुत्र भी हुए। एक का नाम दिया 'माजी या' दूगरे का 'मुन्ना या'। कई वर्षों के बाद पटान के गुजर जाने पर ब्राह्मणी धन-मान लेकर अपने गांव में आ गई। उमके पास मरति देकर सभी सबंधी उमके घर एकत्रित हुए। कोई उसे बुला कहता और कोई चाचो। ब्राह्मणी ने पहिनो को बुलाकर अपने पुत्रों को बोल देने के लिए कहा। उमके लिए नौ शरियो की गई। समूची जाति को भोज दिया गया। जनेऊ मने के लिए मा ने अपने बेटों को आवाज लगाई आओ बेटा 'माजी या' 'मुन्ना या'। इनके नाम सुनने ही ब्राह्मण चोर पडे और ब्राह्मणी ने कहने लगे यह क्या? ब्राह्मण के नाम तो श्रीकृष्ण, रामकृष्ण, श्रीधर आदि होते हैं फिर ये मुगलमानी नाम क्यों? हाथ में कटारी लेकर बोले—'सब-सब बनवा ये क्रिमके मड़के है? नहीं तो आज तेरी शेर नहीं है।' ब्राह्मणी ने मरने के डर में सब सब-सब काप बना दी। परदेश में पटान में मेरा प्रेम हो गया था। ये दोनों लड़के उगी के हैं। ब्राह्मणी न छि-छि करके नाक-भौंह निकोडकर कहा—'रे पागली! हम सब का मुँह घाट कर दिया। अब उमकी शूद्रि के लिए हमे तीर्थ-स्नान करवा होगा। ब्राह्मणी ने हाथ ओडकर कहा—'बधूओ! आज इन दोनों पुत्रों को भी शाय तो जमा। इनको भी तीर्थ-स्नान करवाकर पवित्र बना दो, फिर मैं सब ब्रह्मिणियों का निर्धारण कर दूँगा। ब्रह्मभोज कर दूँगी।' ब्राह्मणी ने कहा—'हय ब्रह्मिणी! क्या प्रश्न हो गया है, दगनिए, तीर्थ स्नान में शूद्र हो जायेंगे। मेरे बेटे माजी या भी शूद्र है दगनिए, स्नान में इनकी शूद्रि कैसा हो सकेगी?' सब भी से न दुष्टान्त का तात्पर्य बताया। हुए कहा—'हिमी साधु को बाप बनाने का ब्राह्मणिक मत नहीं मानता है पर जो मूल्य भिरपाई है ही है इनको ब्राह्मणिक मत मानना ही पड़ती है? वही सम्पत्ति आने के बाद नई शूद्र बन सके शूद्र हो सके है।

(निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए)

[illegible]

(१५९५ वर्षः च अत्र)

८७. केलवा के ठाकुर मोखमहिहजी ने स्वामीजी से पूछा—‘आप जो आगामिक तथा भूतकाल की अनेक बातें बताते हैं, उनको किसने देखा है?’ स्वामीजी ने कहा—‘आपके पिता, दादा, परदादा आदि के नाम तथा उनकी पुरानी बातें जानते हैं, वे किसने देखे हैं?’ ठाकुर साहब बोले—‘उनको तो हम भाटों की पुस्तकों से जानते हैं।’ स्वामीजी बोले—‘भाटों के झूठ धोखे का त्याग नहीं होता फिर भी उनके द्वारा लिखी हुई बातों को मक्खी मानते हैं तो जानी पुरुषों के द्वारा कहे गये आगम मिथ्या कैसे हो सकते हैं? हम उन शास्त्रों के आधार से ही कहते हैं।’

युक्ति सगत उत्तर सुनकर ठाकुर बहुत प्रसन्न हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त ८८)

८८. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—‘ससार में समझने वाले हलुकर्मों प्राणी बहुत हैं, यदि आप प्रयास करें तो वे समझ सकते हैं।’ स्वामीजी ने कहा—‘मकराने के पत्थर में मूर्ति होने का गुण तो है परन्तु इतने शिल्पी नहीं कि सभी मकराने के पत्थरों की मूर्तियाँ बना सकें। इसी प्रकार समझने वाले तो अनेक हैं, परन्तु इतने समझने वाले नहीं कि सभी प्राणियों को समझा सकें।’

(भिक्षु दृष्टान्त १५८)

८९. किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—‘आप जिन्हें साधु नहीं मानते उन्हें साधु नाम से कैसे पुकारते हैं?’ अमुक उस सम्प्रदाय का साधु, अमुक उस सम्प्रदाय का साधु।’ स्वामीजी ने कहा—‘जब मृत्यु-भोज आदि के अवसर पर गाव में मोता दिलाते हैं कि अमुक घर वालों को ‘सेमामाह’ के यहाँ भोजन करने का नीता है। अमुक घर वालों को ‘सेमामाह’ के यहाँ भोजन का नीता है। उन्होंने पहले दिखावा निकाल दिया हो तो भी वे साह के नाम से पुकारे जाते हैं, इस प्रकार जो साधु व्रत नहीं पालते पर साधु का नाम धराते हैं, तो वे द्रव्य निशेष की अपेक्षा साधु ही कहलाते हैं।’

(भिक्षु दृष्टान्त ९८)

९०. स० १८५६ में स्वामीजी १४ माघ एव १६ साध्वियों के सहित देवगढ़ (मेराठ) विराज रहे थे। उस समय स्थानिकवासी सम्प्रदाय के तीन साधु आये और बोले—‘बीजग्री ! हमको तो यज्ञ तीन साधुओं को भी पूरा आहार नहीं

१. स्वामीजी अनुमानन विहार के घम के अनुसार जेट मुनि में देवगढ़ पधारे थे, अतः यहाँ भावनादि क्रम से स० १८५८ और चैत्राश्रम से विजय सवत् १८५६ होना चाहिए, क्योंकि स्वामीजी स० १८५६ के पाली धानुर्मास के पंचम बारषाह में ही विहार करते रहे, मेवाड़ नहीं पधारे। ऐसा बेशी मुनि जी ‘भिक्षु-चरित’ दा० ५ पा० ४ में १० म उल्लेख मिलता है।

मिलता। आप इतने साधुओं को कैसे मिलता है ?' स्वामीजी मुस्कराते हुए बोले— 'जिस द्वारका नगरी में हजारों साधुओं को भोजन पानी मिलता था वहाँ 'बंजन' मुनि कोरे ही रहते थे। यह उनके अन्तराय कर्म का उदय था।'

स्वामीजी ने दार्शनिक दृष्टि से भिक्षा न मिलने के वास्तविक कारण को बतला दिया। यह उनके बुद्धि कौशल की विशेषता थी।

(भिक्षु दृष्टान्त ११०)

६१. एक बार स्वामीजी ने धावक लोगों को पात्रदान का लाभ लेने के लिए दृष्टान्त द्वारा प्रतिबोध दिया। उन्होंने कहा— 'किसी गांव में साधुओं ने चानुमान किया। एक दिन के अन्तर से भी यदि एक गृहस्थ के घर साधु भिक्षा के लिए जाये और वह पात्र-यात्रा भी साधुओं को बहराये तो चानुमान में पन्द्रह सेर अन्दाज हुआ जो कि चार-पाच रुपये का हो सकता है। दान देने समय प्रबल भावना हो तो कोई तीर्थंकर गोत्र का उपाजर्जन और कोई अनेक भावों का विच्छेद कर सकता है। गृहस्थ के मृत्यु-भोज, विवाह आदि में जहाँ अनेक रुपयों का धर्च होता है वहाँ पाच रुपये तो नगण्य मात्र हैं।' स्वामीजी ने धावकों को पात्र-दान का लाभ लेने के लिए यह शिक्षा दी।

(भिक्षु दृष्टान्त २५४)

६२. बूढ़ी के निवासी समान आकृति वाले 'सामजी' 'रामजी' दो योगलिक भाई थे। सामजी ने वि० सम्वत् १८३८ में कंसवा गांव में स्वामीजी के पास दीक्षा ली। कुछ दिनों बाद नाथद्वार में खेउसीजी ने समय व्रत स्वीकार किया। थोड़े दिन बाद रामजी ने दीक्षा ग्रहण की। जिससे भेतसी स्वामी से सामजी स्वामी तो बड़े और रामजी स्वामी छोटे हुए। कालान्तर में स्वामीजी ने सामजी रामजी का सिपाई बनाया। वे अन्यत्र विहार करने लगे। जब वे स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आते तब भेतसीजी स्वामी गमान चेहरा होने से सामजी स्वामी के बदले रामजी स्वामी को वन्दना करने लगने। रामजी स्वामी कहने— 'मैं तो रामजी हूँ, सामजी तो वे हैं, आप उन्हें वन्दना करिये।' इस तरह कई बार गोल पड़ जाता तब स्वामीजी ने अपनी प्रखर बुद्धि से कहा— 'रामजी ! तुम पहले ही भेतसी को वन्दना कर लिया करो, जिससे भेतसी जान लेगा कि बाकी रहे वे सामजी स्वामी हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त १६९)

६३. एक भाई ने कहा— 'भीषणजी आप इतनी 'जोड़े' (मादृश्य-रचना) क्यों करते हैं ?' स्वामीजी बोले— 'एक मादृकार के दो बेटे हैं उनमें एक तो धन सम्पत्ति जोड़ना दृष्टी करता है, एक तो ईश्वरवाद करता है। अब तुम ही बनाओ कि समार में धन-सम्पत्ति जोड़ने वाले को भोग अच्छा बनाने हैं या तोड़ने वाले को ?' वह बोला— 'गव जोड़ने वाले की ही अच्छा करेंगे पर तोड़ने वाले को

नहीं।'

स्वामीजी ने कहा—'इसी प्रकार हम भगवान् के वचनों का प्रसार करने के लिए सरल भाषा में जोड़ें करते हैं, इसमें क्या आपत्ति है ?'

उत्तर सुनकर उपस्थित व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुए और उसकी गिकायत समाप्त हो गई।

(भिवखु दृष्टान्त २४३)

६४. पीपाड़ में कई भाइयों ने मनमूढा करते हुए पूछा—'भीषणजी ! लोग कहते हैं—'सात-सात तो देस्यु, अने एक-एक गिणस्यु' इसका क्या अर्थ हुआ ?' स्वामीजी बोले—'इसका तो बिल्कुल सीधा अर्थ है—'सात सुपारी तो देते हैं और एक साता गिनते हैं।' लोग वास्तविक अर्थ सुनकर बहुत आश्चर्यान्वित हुए।'

(भिवखु दृष्टान्त १४)

६५. सोजत में फतेहचन्दजी मोटावत ने स्वामीजी से कहा—'आप मिथ (एक कार्य में पाप-पुण्य दोनों मानते हैं) की श्रद्धा वालों का खडन करते हैं पर पुण्य की श्रद्धा वालों का खडन क्यों नहीं करते ?' स्वामीजी ने उदाहरण देने हुए कहा—'एक जाट ने खेती की। फसल अच्छी हुई। मोटे-मोटे दानेदार ज्वार को देखकर एक बार चार चोर उस खेत में घुस गए। जल्दी-जल्दी ज्वार के भूटों को तोड़कर गट्टर बाघने शुरु किये। जाट ने देखा तो अपनी बुद्धि से चिंतन कर उनके पास आया और मोटे स्वर से बोला—'भाई साहब ! आपकी क्या जाति है ?' एक ने कहा—'मैं राजपूत हूँ, दूसरे ने साहूकार (बनिया), तीसरे ने ब्राह्मण तथा चौथे ने अपने को जाट बताया।'

तब जाट ने कुछ सोचकर हसते हुए राजपूत से कहा—'आप तो हमारे मालिक हैं, जो चाहें ले सकते हैं। बनिया बोहरा है, इससे हम सौदा लेते हैं इसलिए इसने लिया वह भी ठीक है। ब्राह्मण देवता हमारे गुरु हैं, अतः कोई बात नहीं, इसे मैं दक्षिणा ही मान लूँगा पर यह जाट किमलिए लेता है ?' चल मेरी मा के पास, उसमें तुझे उलाहना दिलाऊँगा। तीनों चुपचाप देखते रहे, किसान ने उसकी बाह पकड़कर खेत के उस किनारे पर ले जाकर उसकी पगड़ी लेकर एक पेड़ में उसे कसकर बांध दिया।

जाट लौटकर आया और बोला—'मेरी मा ने कहा है—'राजपूत तो हमारा स्वामी है, बनिया सौदा देता है इसलिए इन दोनों का लेना तो अग्राह्य नहीं है पर ब्राह्मण तो दिया हुआ ही ले सकता है, बिना दिया हुआ कैसे ले ?' मेरी मा के पास तुझे भी उलाहना दिलाऊँगा। बिचारा ब्राह्मण दोनों की सहायता के लिए आर्घ्य फाड़ता रहा पर वे दोनों चुप होकर समाशा देखने रहे। ब्राह्मण को भी उसी

प्रकार एक किनारे पर ले जाकर पेड़ में बगल कर बांध दिया। बागम आकर बोला— ठाकुर माहब ! मेरी मा कहती है आदका सेना तो न्याय है पर हम माहूकार ने हमें बच मोक्ष दिया और कब यह बोहुरा बना अत यह किस नाम से सेना ? हमें भी मेरी मा के पास ले जाकर दंड दिलाऊंगा। माहूकार को भी इसी प्रकार एक पेड़ में मशरूम बांध दिया। अब उमने अति ही रात्रपुन की गबर ली। ठाकुर माहब ! माविन तो रक्षा के लिए होने हैं न कि चोरी के लिए, चलो आज तुम्हारी भी असन छिका लयाऊंगा, यों कहकर उगे भी बांधकर घाने में ले गया और पविम को लाकर चोंगों को पकड़वा दिये।

इस प्रकार आठ ने बुद्धि में काम लेकर अपने गेज की रक्षा कर ली। अगर वह एक माघ उनमें भिड़ जाता तो वे चारों उसे हटाकर अनाज लेकर चले जाते।

श्यामीश्री ने निष्कर्ष की भाषा में कहा—‘हम मित्र तथा पुण्य की श्रद्धा का प्रमगः ग्रहा करने धीरे-धीरे एक-एक दिन के लोगों का समझाने हैं।’

उक्त मुक्ति युगं समाधान में जाना जाता है कि स्वामीजी गिनने कुगम व समाधान थे ।

(मिश्र दृष्टान्त ११७)

१६ जो व्यक्ति गाय की बात नहीं मानता और प्रयुक्त शगडा करने लगता है उस पर हमारी न बर्ता—एक माटूकार के घर के सामने नाटकियों ने लम्बा दिखाना प्रारम्भ किया।' माटूकार ने कहा—'मेन यही मन करो? क्योंकि तुम्हारे अंग हीन शरीर व मर्द दुख मुने पगन्द नहीं है। बटू-बेटियों के सामने तो हम सब लम्बा दिखुन अनुपपुत्र है, दिवु नष्ट नहीं माने और उन्होंने बही मेन मुझ कर दिया, दलहो की भीड़ जम गई। माटूकार ने बहुत मना दिया, पर उन्होंने पक लगे मानी। तब माटूकार ने एक नगरा मगाया और मजान की छत पर उन गण्डक मारो म मूव और म नगरा बिटकाया, छमाधम नगरा बजने लगे, इस कोरापन म उनका गाना-बजाना बढ़ हो गया। योग विग्रहने मग गए। अन्तिम नाटक करने वाले ही उल्लास के भरे गए।'

ब्रह्मचरियों के कथन का तात्पर्य है कि ग्यास की बात भी कोई व्यक्ति नहीं जान उठे बिना कहना कुटुम्ब पुरुष को उस समय क्या प्राप्ति हो जाना बकाय करना चाहिए।

(मिश्रणं कुप्यन्ति २५१)

[illegible]

पूर्वक आहार बहराया ।

सम्भवत स्वामीजी ने ही यह कला भाइयों को सिखाई हो ।

(भिक्षु दृष्टान्त ३३)

१८. 'माडा' गाव में स्वामीजी रात्रि के समय व्याख्यान दे रहे थे, सामने काफी सट्टा में लोग बैठे हुए थे । पास में बैठे हुए 'आसोजी' नाम के भाई नींद बहुत लेते । स्वामीजी ने उन्हें टोकते हुए कहा—'आसोजी ! नींद ले रहे हो ?' आसोजी बोले—'नहीं महाराज !' थोड़ी देर पश्चात् वे फिर नींद लेने लगे तो स्वामीजी ने फिर टोका । उन्होंने फिर वही बधा हुआ उत्तर देने हुए कहा—'नहीं महाराज !'

यो जितनी बार उन्हें टोका गया उन्होंने हर बार यही उत्तर दिया । आखिर स्वामीजी ने इसी लहजे में पूछा—'आमोजी ! जीवित तो हो ?' उन्होंने चट से कहा—'नहीं महाराज !' उपस्थित लोग उनका उत्तर सुनकर हस पड़े तब वे कहीं जाकर सावधान हुए ।

(भिक्षु दृष्टान्त ४८)

१९. स्वामीजी ने किसी से पूछा—'एक बालक पत्थर लेकर चोटिया मार रहा है । कोई उसके हाथ का पत्थर छीनकर उसको हिमा करने से रोक दे तो क्या होगा ?' स्वामीजी ने पूछा—'उसके हाथ का पत्थर छीनने वाले के हाथ में क्या आया ?' वह बोला—'पत्थर' । स्वामीजी ने कहा—'अब तुम्हीं विचार कर लो ।'

(भिक्षु दृष्टान्त १२४)

धर्म तो हृदय परिवर्तन में होता है, किन्तु जबरदस्ती में नहीं । स्वामीजी कहते हैं—

मूला गाजर ने काचो पाणी, कोई चोरी दावे ले खोसी रे ।

जे कोई वस्तु (वस्तु) छोड़ावे बिना मन, इण विध धर्म न होसी रे ॥

भांगी ना कोई भोगज रूथ, बने पाई अंतरायो रे ।

महामोहणी कर्मज बाध, दसाश्रुत खघ माहि बतायो रे ॥

(विरत इविरत री चौपाईं डा० १ गा० ३३, ३४)

१००. किमी ने स्वामीजी से कहा—'साधु के हाथ से मुई टूट जाए तो एक तेल का दण्ड आता है ।' स्वामीजी बोले—'तब तो तुम्हारे कदनानुसार बाजोट टूट जाये सो सधारा (अनशन) करना होगा ।' प्रायश्चित्त तो आगम विधि के अनुसार ही दिया जाता है । लेकिन स्वेच्छा पूर्वक अन्दाज से नहीं ।

(भिक्षु दृष्टान्त २८२)

१०१. भिक्षु स्वामी की अनुमति बिना ही साध्वियों ने 'धामली' नाम के गाव में चातुर्मास कर दिया । सयोग ऐसा बना कि साध्वियों को बहा आहार-पानी आदि की अनेक शठिनाइयों का सामना करना पड़ा ।

किसी भाई ने स्वामीजी से पूछा—'बिना आज्ञा चानुमार्ग करने वाली साध्वियों को आप क्या प्रापश्चित्त देंगे ?' तब स्वामीजी ने कहा—'बैस तो उन्हें बहुत-सा दण्ड उम गांव ने ही दे दिया है, फिर मिलने पर मुझे भी कुछ देना है।'
(भिक्षु दृष्टान्त १७१)

१०२ पाली में एक भाई ने विरोध भरे शब्दों में कहा—'भीषणजी तुम्हारे श्रावक ऐसे दुष्ट हैं कि किसी के गले में पड़ी हुई फामी भी नहीं निकालते।' स्वामीजी ने कहा—'किसी का व्यक्तिगत नाम मत लो, सामूहिक रूप में बातचीत करो।' तब वह कुछ नबदीक आकर बोला—'सामूहिक बात करिये।' स्वामीजी बोले—'एक व्यक्ति ने एक वृक्ष से गला फमा लिया। उस मार्ग से जाते हुए दो मनुष्यों ने उसे सटकते हुए देखा। दोनों में से गलफमा निकालने वाला कंसा और नहीं निकालने वाला कैसा ?' वह बोला—'निकालने वाला उत्तम पुरुष और दयालु एवं मोक्ष में जाने वाला।' नहीं निकालने वाला महापापी, महादुष्ट एवं नरकगामी।' स्वामीजी ने पूछा 'कदाचित् उस समय उस रास्ते से तुम और तुम्हारे गुरु आ रहे हो तब उस पापी को कौन निकालेगा ?' वह बोला—'मैं निकालूँगा।' स्वामीजी—'तुम्हारे गुरुजी निराशंके या नहीं ?' वह व्यक्ति—'नहीं, क्योंकि वे तो साधु हैं।' स्वामीजी ने कहा—'तुम्हारे वधनानुसार तुम तो स्वर्ग एवं मोक्ष गामी और तुम्हारे गुरुजी नरकगामी ठहरे।'।

वह व्यक्ति निरंतर होकर चला गया।

(भिक्षु दृष्टान्त १२)

१०३ गुरु स छात्रजी श्रामिण स्वामीजी के पास में आकर 'आबूगड़ तीर्थ' नामक भोजिका का एक पत्र पाते लगे 'आबूगड़ तीर्थ नहीं जुहारयो, निष अदृष जमारो हारयो।' स्वामीजी ने पूछा—'तुमने व भी आबूगड़ की यात्रा की या नहीं ?' छात्रजी—'मैंने तो अभी तक नहीं की।' स्वामीजी—'तब तो आज तक तुम्हारा जीवन तो निष्फल ही चला गया।' छात्रजी बोले—'स्वामीजी ! आपने तो मेरी बात में लगे में ही काम दी।'।

(भिक्षु दृष्टान्त २३८)

१०४ स्वामीजी के समय स्थानकाली सम्प्रदाय के अनेक टोने थे। उनमें एक भद्र विरोध चला था कि एक-दूसरे को माधु नहीं मालते थे। एक टोने का दूसरे टोने में आज्ञा नहीं दी जाती थी। इसी बात को लेकर किसी ने स्वामीजी से कहा—'अमुक-अमुक टोने वाले परस्पर एक-दूसरे को मूर्ख कहते हैं।'।

स्वामीजी ने जवाब में कहा—'वचन की दृष्टि में तो दोनों ही गलत समझेंगे।'।

(भिक्षु दृष्टान्त ३१)

१०५ स्वामीजी एक बार पादू के उपाश्रय में ठहरे हुए थे। एक दिन जब वे गोचरी जाने की तैयारी करने लगे तब सामीदासजी (मामजी) के टोले के दो साधु—'भीषणजी कहा है ? भीषणजी कहा है ?' पूछने हुए वहाँ आये। किसी गाव से विहार करते हुए आने से उनके कंधों पर बोझ लदा हुआ था।

स्वामीजी ने कहा—मेरा ही नाम भीषण है।

आगन्तुक साधु बोले—आपका नाम बहुत सुना था, अब देखने के लिए आये हैं।

स्वामीजी—देखिए और कुछ कहने की इच्छा हो तो कहिये।

आगन्तुक—भीषणजी ! आपने सब कार्य तो अच्छे किये हैं पर एक काम अच्छा नहीं किया कि हम बाईस टोलों के साधुओं को असाधु कहते हो।

स्वामीजी—आप किस टोले के साधु हैं ?

आगन्तुक—सामदासजी के।

स्वामीजी—आपके टोले में एक ऐसी लिखित मर्यादा है कि अन्य इक्कीस टोलों के साधु आपके टोले में आये तो नई दीक्षा देकर शामिल करना। क्या आपको इसकी जानकारी है ?

आगन्तुक—हां जानते हैं।

स्वामीजी—इस हिमाव से इक्कीस टोलों के साधुओं को तो आपने ही असाधु मान लिया। अन्यथा नई दीक्षा देने की आवश्यकता क्यों होती ? अब केवल आपका एक टोला रहा। उसके लिए आप इस प्रकार समझिए—'भगवान् ने कहा है कि बेले का प्रायश्चित्त आता हो उसे यदि तेजा दिया जाय तो देने वाले को तेले का प्रायश्चित्त आता है। अब इस हिमाव से आप यदि अन्य टोले वालों को साधु मानते हैं और उन्हें नई दीक्षा देते हैं तो आपके हिसाब से ही आप नई दीक्षा के भागी बनते हैं। अब आप ही अपनी लिखित मर्यादा के अनुसार विचार कर लीजिए कि आप साधु सिद्ध होने हैं या असाधु ?'

आगन्तुक दोनों साधुओं ने कहा—'भीषणजी ! आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। आपने हमारी लिखित मर्यादा से ही हमें असाधु ठहरा दिया'

(भिक्षु दृष्टान्त १०)

१०६. एक बार दो साधुओं में परस्पर विवाद हो गया। वे स्वामीजी के पास आये। एक ने कहा—'इसने पाप में से इतनी दूर तक जल की बूँद गिरती गई।' दूसरे ने कहा—'नहीं इतनी दूर तक नहीं गिरी।' तीसरा कोई साधु में था नहीं। दोनों अपनी-अपनी बात पर दटे रहे। विवाद नहीं सुलझा तब आचार्य भिक्षु ने कहा—'तुम दोनों ही एक रस्ती लेकर जाओ और उस स्थान को माप आओ।'।

स्वामीजी के इस वचन से वे दोनों बहुत लज्जित हुए और परस्पर क्षमायाचना की।

(भिक्षु दृष्टान्त १६७)

१७ एक बार दो गांधुओं ने मगदर विचार हो गया। एक ने कहा—'तुम सोचो हो।' दूसरे ने कहा—'तुम सोचो हो।' और उम विचार होगेकर दोनों स्वामीजी के पास आये। स्वामीजी ने कहा—'तुम दोनों आचार्य की आज्ञा का आचार रख कर विचार (दूध, दही आदि) खाने का त्याग करो। जो व्यक्ति पहले आज्ञा मानेगा वह कमजोर समझा जायेगा।' दोनों ने यह बात मान ली। लगभग चार महीनों तक विचार न खाने के कारण उनमें से एक ने आकर स्वामीजी से आज्ञा मांगी। स्वामीजी ने उसे आज्ञा दी तब दूसरे को भी पूर्ण निर्णय के अनुसार आज्ञा हो गई।

स्वामीजी ने मुक्ति में दोनों को समझा दिया।

(भिक्षु दृष्टान्त १६८)

१०८. आचार्य भिक्षु से किमी भाई ने पूछा—'भगवान् महावीर के समय साधु समाज में आचार्य, उपाध्याय, स्वविर, प्रवर्तक, गनी, गणपति तथा गणावच्छेदक ये सात पदवियाँ थीं। अब आपके सध में ये पदवियाँ किन-किन साधुओं को दी गई हैं?'

स्वामीजी ने एक वाक्य में ही समाधान करते हुए कहा—'अभी सातों पदवियों का काम मैं ही कर रहा हूँ।'

(धृतिगत)

१०९. किसी ने स्वामीजी पर मिथ्या आरोप लगाते हुए कहा—'गृहस्थाश्रम में भीषणजी अपने भाई से दलग हुए तब घर के सब सामान का बटवारा किया गया। एक चाली बाकी रही, उसके भी भीषणजी ने ऊंगल में डाल कर बराबर दो टुकड़े किये।'

हेमराजजी स्वामी ने स्वामीजी को इस बात की सत्यता के लिए पूछा तब स्वामीजी ने कहा—'हम इनने अनजान नहीं जो कि पहले ही रुपये के बारह आना करें। मैंने तो यह काम नहीं किया। पर ऐसा कहने वाले अपना दोष छिपाने के लिए दूसरों पर झूठे आरोप लगाते हैं। रघुनाथजी के गुरु भूधरजी जब गृहस्थ थे सब ऊंटों पर कपड़ा लादकर कट्टी जा रहे थे। रास्ते में डाकू लोग आते हुए दिखाई दिये तब उन्होंने कपड़े के साथ ऊंट को भी ले जायेंगे, ऐसा विचार कर ऊंट के पैर काट डाले। अतः गृहस्थाश्रम की क्या बात? उस समय गृहस्थ अनुचित कार्य भी कर लेता है पर मैंने तो गृहस्थावस्था में चाली के दो टुकड़े नहीं किये।'

(भिक्षु दृष्टान्त १०९)

१. सप्रति जगत्परायण, आचार्य अनुभावो।

सात ही पद नौ काम कर मैं [ओ] भिक्षु भवन अपनावो।

भरिक उपाध्यायजी ने लिख दिया।

[आचार्य तुलसी द्वारा रचित परमेष्ठी पद्य का ४ भा० ४]

११०. सं० १८४१ का चातुर्मास स्वामीजी ने पीपाड़ में किया। वहाँ एक गैबीराम चारण भजन बना। उसके वहाँ प्रतिदिन भजन-कीर्तन होता और वह समागत लोगों को 'लापसी' खिलाता। किसी ने उसको बहकाया कि तुम भक्तों को लापसी खिलाते हो उसमें भीखणजी पाप कहते हैं।

तब गैबीराम हाथ में घोंटा लेकर पैरों में बड़े घुघरुओं को धमकाता हुआ स्वामीजी के पास आया और बोला—'भीखण बाबा! मैं भक्तों को लापसी खिलाता हूँ, उसमें क्या होता है?' 'स्वामीजी ने कहा—'लापसी में जितना गुड़ डाला जाता है उतनी ही मोठी होती है।' यह सुनकर वह बहुत खुश हुआ, उसकी नस-नस नाचने लगी। 'भीखण बाबे धलो जाव दीघो-र' बोलता हुआ वापस गया तब लोगो ने कहा—'भीखणजी बड़े अवसरज हैं, जो प्रश्न का जवाब पहले से ही पता पड़ाया तैयार रखते हैं।'।

(भिक्षु दृष्टान्त २०)

१११. एक बार स्वामीजी किसनगढ़ में 'पाड़ियों' के मुहल्ले में गोचरी पधारे वहाँ एक घर में नौता (मृत-भोजन) था। अग्न्य सम्प्रदाय के साधुओं को यह आशंका हो गई कि भीखणजी नौते वाले के घर से मिठाई लायेंगे इसलिए वे मुहल्ले के नुक्कड़ पर स्वामीजी से चर्चा करने के लिए खड़े हो गए। उन्हें देखकर 'मलजी' मूहता ने कहा—'इस चर्चा में आरको सफलता नहीं मिलेगी' पर वे माने नहीं।

स्वामीजी गोचरी करके वापस आए तब नुक्कड़ पर खड़े हुए साधुओं में से किसी ने कहा—'भीखणजी तुम तो बैरागी कहलाते हो, फिर जोर वाले के घर से मिठाई कैसे लाये?' स्वामीजी ने कहा—'इसमें क्या दोष?' उसने कहा—'तुम बैरागी कहलाते हुए भी ऐसा कार्य करते हो, यह ठीक नहीं है।' इतने में काफ़ी लोग हकट्टे हो गए। स्वामीजी बोले—'मैं तो नौते वाले के घर से मिठाई नहीं लाया।' वह बोला—'यदि नहीं लाए तो पात्र खोलकर दिखलाओ।' पर स्वामीजी ने बहुत देर तक पात्र नहीं खोले। फिर उन साधुओं ने अत्याग्रह किया तब सब लोगो के सामने स्वामीजी ने पात्र खोलकर दिखाये। उनमें नाम मात्र मिठाई नहीं थी। आग्रह करने वाले स्वयं तो लज्जित हुए ही पर वहाँ उपस्थित जनता ने भी उनको अच्छी तरह पहचान लिया।

(भिक्षु दृष्टान्त २८)

११२. एक व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—'घोड़े के पैर कितने होते हैं?' स्वामीजी ने कुछ क्षण चिंतन करके कहा—'चार।' वह बोला—'मैंने तो आपकी विलक्षण बुद्धि सुनी थी और आप सीधी सी बात में भी इतना सोच-विचार करने लगे।' स्वामीजी ने गंभीर स्वर में कहा—'घोड़े के चार पैर होते हैं, यह तो सब ही जानते हैं पर एकाएक उत्तर देते ही यदि तु अगला प्रश्न कर लेता कि

‘कनकजुग’ के पैर कितने हैं तो ?’

वह व्यक्ति थोड़ा से स्वामीजी के चरणों में झुक कर बोला—‘महाराज ! आपने भरे मन की बात कैसे जान ली ? मैं तो यही पूछने वाला था ।’

(अनुभूति के आधार में)

११३. एक व्यक्ति स्वामीजी के पास में आकर बोला—‘मुझे अमासी (गृहस्थ) की दान देने का त्याग करवा दें ।’ स्वामीजी ने उगरी भावना को पकड़ते हुए कहा—‘तुम धर्म के धर्म को समझकर ईश्वर में त्याग करते हो या हमें बदनाम करने के लिए ?’ वह चुपचाप वहां से चला गया । प्रत्येक वस्तु के त्याग में शुद्ध भावना और विवेक की अपेक्षा रहती है ।

(भिक्षु दृष्टान्त ११८)

११४. आठवां में शार्दूलजी के पुत्र नगजी ने पूछा—‘प्रतिक्रमण की तस्मिन्तरी की पाटी में ‘ता’ कितने और ‘त’ कितने हैं ?’

स्वामीजी बोले—‘भगवती मंत्र में ‘का’ कितने और ‘क’ कितने हैं ? ‘घा’ कितने और ‘घ’ कितने हैं ? ‘गा’ कितने और ‘ग’ कितने हैं तथा ‘घा’ कितने और ‘घ’ कितने हैं ?’

प्रश्नकर्ता की जवान बन्द हो गई । निरर्थक प्रश्न में कोई सारंग नहीं निश्चय ।

(भिक्षु दृष्टान्त ४०)

११५. एक बार स्वामीजी ने अन्य सम्प्रदाय के माधुओं को उनके स्वाम पर पूछा—‘तुम कितनी मूर्खता हो ?’ उन्होंने अपनी सख्या बतला दी । स्वामीजी स्थान पर आ गए । पीछे में एक व्यक्ति ने उन्हें कहा—‘भोग्यजी तुम्हें भग (वैष्णव माधु) बना गये ।’ मुनिजी यह कह गये और उसका बदला लेने के लिए स्वामीजी के पास आकर बाले—‘भोग्यजी तुम कितनी मूर्खता हो ।’ स्वामीजी उनके पूछने के उद्देश्य को समझकर बोले—‘हम तो दाने माधु हैं । वह बात तो उस समय की थी अब उस प्रभावशाली का बदला नहीं लिया जा सकता है ।’

(भिक्षु दृष्टान्त १०२)

११६ (क) एक बार स्वामीजी त्रोधपुर पधारे । वहां भोग खर्चा करने के लिए आये । उनकी सीधी जाने करने लगे । वे बोले—‘दरबार विजयमिहरी ने गाना ब और बुझी पर बनने (गानी छानने का वस्तु) बनवाये, दीनों पर इतना दिन गये, बुझे मा बानो की सेवा करना, ऐसा पण्डितिरवाया, इत्यादि बातों में राजाजी की क्या हृष्ट ?’

स्वामीजी ने बोले राजा में उत्तर देने हुए कहा—‘जिना ज्ञान के वही खर्चा खर्चने में कोई निरर्थक नहीं निश्चय । जाने लम्बो इ करना चाहिए ।’

(ख) बाबा ने स्वामीजी ने स्वामीजी में उद्भूत प्रश्न दिया तब स्वामीजी

ने उनसे पूछा—‘आप नरेश को सम्मन्त्रणी मानते हैं या मिथ्यात्वी क्योंकि मेरी मान्यमानुमान तो मिथ्यात्वी व्यक्ति सत्प्रिया करता है उसे धर्म होता है किन्तु आप उसे अधर्म का हेतु मानते हैं।’

आचार्य रुपनाथजी ने उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया क्योंकि वे नरेश को सम्मन्त्रणी तो मानते नहीं थे और मिथ्यात्वी कहने पर उनकी हर प्रिया अधर्ममय सिद्ध हो जाती।

(भिक्षु दृष्टान्त ११३, ११४)

११३ अन्य सम्प्रदाय के श्रावकों ने स्वामीजी से पूछा—‘पंडिमाधारी श्रावक को गृह्य आहार-पानी देने में क्या होता है?’ स्वामीजी ने पूछा—‘किसी को कच्चा जल पिलाने में क्या होता है?’ उन्होंने कहा—‘हमको तो पंडिमाधारी के लिए बनताइए, दूसरी बात में हम नहीं समझ सकते।’

स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—‘किसी ने कहा—‘मुझे कीड़ी कुचवा दिखाओ।’ जब उसे पूछा गया कि मुझे हाथी दिखाई देता है या नहीं? वह बोला—‘हाथी तो मुझे नहीं दिखाई देता।’ तब उसको कहा गया कि हाथी भी तुझे नहीं दिखाई देता है तो कीड़ी कुचवा कैसे दिखाई देगा?’

स्वामीजी ने प्रश्नकर्ता से कहा—‘जब जीव खिलाने में पाप होता है, यह बात भी तुम नहीं समझते तब पंडिमाधारी को अन्न सेवन करने में पाप होता है, यह बात कैसे समझ सकोगे? यह चर्चा तो बहुत गहन है।’

(भिक्षु दृष्टान्त २०७)

११८ भीलवाड़ा में अन्य सम्प्रदाय के श्रावकों ने स्वामीजी से प्रश्न किया—‘स्वामीजी! किसी श्रावक ने सर्व पाप का परित्याग कर दिया, उसको आहार पानी देने में क्या हुआ?’ स्वामीजी बोले—‘धर्म हुआ।’ वे बोले—‘आपके तो श्रावक को देने में पाप की मान्यता है, फिर धर्म कैसे कहते हैं?’ स्वामीजी ने कहा—‘तुमने जो प्रश्न किया उसे याद करो। जिस श्रावक ने सर्व पाप का त्याग कर दिया तब वह श्रावक का साधु ही बन गया। साधु को देने में धर्म ही है।’

(भिक्षु दृष्टान्त २०१)

११९. आमेठ में पुर के लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ आये। उनमें आपस में चर्चा चली कि ६ पर्वाप्ति और १० प्राण जीव या अजीव? किसी ने कहा—‘जीव है, किसी ने कहा—‘अजीव।’ इन प्रकार आपस में खीचातानी होने लगी। उन्होंने अन्त में स्वामीजी से पूछा—‘गुरुदेव! ६ पर्वाप्ति और १० प्राण जीव हैं या अजीव?’ स्वामीजी ने उनमें चल रही खीचातानी को देखकर कहा—‘जिस चर्चा में सशय पैदा हो उसे छोड़ देना चाहिए, अन्य चर्चा क्या कम है?’ इस तरह समझाकर दोनों का तनाव समाप्त कर दिया।

(भिक्षु दृष्टान्त २५६)

१२० पुर में स्वामीजी ने कहा—‘इस प्रकार का भ्रमण धर्म है’ तब पाप में बँधा हुआ एक भाई जदचन्दगान बीगानी बोत उठा—‘नहीं, इस प्रकार का यनि धर्म है।’ आचार्य भिक्षु ने कहा—‘भरे इस प्रकार का महारामा धर्म नहीं, मुझे क्या आनति है ?’

केवल शाब्दिक उगजान में पड़ने में कोई फलित नहीं निकलता।

(भिक्षु दृष्टान्त २१३)

१२१ स० १८१६ तख्तार में मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी ने कहा—‘हम थावक लोगो के घरों में ही गोचरी जाते हैं, दूसरे घरों में निशा के लिए नहीं जाते इसका क्या कारण है ?’ स्वामीजी बोले—‘यहाँ पर अग्न्य लोग डेर बहुत करते हैं इसलिए उनके घर गोचरी नहीं जाते।’ हेमराजजी स्वामी बोले—‘महाराज ! आपका आदेश हो तो मैं जाऊँ।’ स्वामीजी ने कहा—‘कोई बाधा नहीं तुम अच्छी तरह जा सकते हो।’

हेमराजजी स्वामी एक घर में गोचरी गये और पूछा—‘बहिन ! गुड आहार का योग है ?’ वह बोली—‘रोटी नमक पर पकी हुई है।’ मुनिश्री मेही पर दूसरे घर गोचरी गये। उस बहिन ने जलटी-सीधी बातें कहकर रोटी बहराई। कुछ देर लगने से नीचे वाली बहिन ने ‘ये हमारी सम्प्रदाय के ही हैं’ ऐसा सोचकर मुनिश्री को नीचे आते समय कहा—‘महाराज ! पधारें, आहार आदि लें’ ऐसा कहते हुए रोटी हाथ में ली। हेमराजजी स्वामीजी ने कहा—‘बहिन ! तू कहती थी कि रोटी नमक पर पकी हुई है।’ बहिन बोली—‘मैंने आपको तेरापची समझा था इसलिए कहा था। मुनिश्री बोले—‘हम हैं तो तेरापची ही, तुम्हारा मन हो तो दो सब बिना मन बोली—‘ले जाइये।’

किर वहाँ से मुनिश्री अगले घर गये। आहार-पानी के लिए पूछा तो बहिन ने कहा—‘मुझे तो तेरापची साधुओं को रोटी देने का त्याग है।’ मुनिश्री ने कहा—‘रोटी देने का त्याग है पर धोवन पानी देने का तो त्याग नहीं है, बहो बहराओ।’ बहिन अपनी जबान में बध गई थी, उसने पानी बहरा दिया। हेम मुनि ने वापस आकर स्वामीजी को सब बातें सुनाई। स्वामीजी मुनकर प्रसन्न हुए।

(भिक्षु दृष्टान्त २१२)

१२२. एक बार स्वामीजी व्याख्यान में भगवती सूत्र बाँच रहे थे। एक व्यक्ति ने आकर कहा—‘महाराज ! ‘धम्मो मग्ग’ सुनाओ।’ स्वामीजी बोले—‘क्या यह ‘भगवती सूत्र’ अधम्मो मग्ग है ?’ यह धम्मो मंगल ही है, जैसे गाँव जाने समय गधे, तीवर आदि का शकुन लेते हैं उग दृष्टि से मुनता तो उचित नहीं, कम निजैरा के लिए मुनता ही श्रेयस्कर होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १५२)

१२३. पत्नी में हीरजी यति ने स्वामीजी शौचार्थ पधार रहे थे उस समय रास्ते में अपनी मान्यता की विरुद्ध बातें उनके सामने कही—१. हिमा में धर्म, २. सम्भवन्वी को पाप नहीं लगता, ३. सब जीवों को मारने से समय मात्र भी ससार वृद्धि नहीं, ४. सब जीवों की दया पालने से किंचिद् मात्र ममार घटता नहीं, ५. जैसी भवितव्यता है वैसा होगा, धार्मिक क्रिया करने की अपेक्षा नहीं, केवल-ज्ञानी ने जिस दिन त्रिसंका मोक्ष में जाना देखा है उस दिन वह मोक्ष में चला जायेगा, इत्यादिक—।

स्वामीजी ने उपयुक्त न समझकर कोई जवाब नहीं दिया। हीरजी बोले—‘मैंने मेरी श्रद्धा की जो बातें कही वे तुम्हारे जव गई मालूम देती है जिसमें वापस कुछ जवाब नहीं दिया।’ स्वामीजी ने कहा—‘गंदगी को खाते हुए मडमूरे को देखकर साहूकार का मन नहीं चलता। उसी तरह तुम्हारी विरुद्ध श्रद्धा की मैं मन से भी बाछा नहीं करता।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२२)

१२४. एक दिन हीरजी स्वामीजी को उलटे-सीधे प्रश्न पूछने लगे। बार-बार जवाब देने के लिए व्याग्रह करने लगे। स्वामीजी ने कहा—जिस तरह कोई व्यक्ति गंदगी से भरे हुए पात्र में घी खरीदने के लिए दुकानदार के पास गया और बोला—इसमें घुंसे घी तोल दो। पर क्या अशुद्ध वर्तन में कोई समझदार व्यक्ति घी उठेल सकता है? उसी तरह विपरीत दृष्टि वाले को यथार्थ जवाब देने में मुझे कोई लाभ दिखाई नहीं देता। इसलिए लेने वाला पात्र और उचित समय होगा तब ही जवाब दिया जायेगा अभी नहीं।’

(भिक्षु दृष्टान्त २२३)

१२५. तिलोकचन्दजी, चन्द्रभाणजी आदि बुद्धिमान साधु गण से अलग हो गये तो भी स्वामीजी ने कोई परवाह न की (स्वामीजी उर्णा री गिणत राखी नहीं)।

(भिक्षु दृष्टान्त १६५)

स्वामीजी का यह धोष था कि सभ में साध-साध्वी कम भले ही हो पर आचार हीन व अनुशासनहीन नहीं चाहिए।

तिलोकचन्दजी (१२) चन्द्रभाणजी (१५) का विस्तृत वर्णन उनके प्रकरण में देखें।

१२६. चंडावल गाव में फत्तूजी आदि पांच साध्वियों को स्वामीजी ने कहा ‘तुम्हारे जितना कपड़ा चाहिए वह ले लो। उन्होंने जितनी आवश्यकता बतलाई उतना कपड़ा उन्हें दे दिया। बाद में स्वामीजी के मन में संदेह हुआ कि उन्होंने कल्प से अधिक कपड़ा ले लिया है। स्वामीजी ने तत्काल अर्थैरामजी स्वामी को भेजकर साध्वियों से वह कपड़ा वापस भगवाया और उसे भाया। पाचों ही साध्वियों

समागता पड़ता है।'

(भिक्षु दृष्टान्त ६६)

१३०. पादू में एक भार्द ने स्वामीजी को कहा—'हेमराजजी स्वामी की पछे-बड़ी बल्य से बड़ी है।' स्वामीजी बोने—'सम्भवत बड़ी नहीं है। उगने अधिक आग्रह किया तब स्वामीजी ने पछेबड़ी माप कर दिखलाई तो बराबर निबली। स्वामीजी ने उसे बड़ा उलाहना देते हुए कहा—'क्या हम चार अंगुल बगड़े के लिए अपने मयम को खोयेंगे? तुमको इतना ही विश्वास नहीं तो तुमने यह भी सदेह हो सकता है कि हम प्यास मगने पर रास्ते में कच्चा पानी भी पी लेंगे। साधुना या पावन आनी सच्चाई से होगा है, दूसरा कहा-नहा देखने आता है? उस भार्द ने विचयुर्वक अपनी गनती स्वीकार करने हुए कहा—'मुझे झूठा ही भ्रम हो गया था।'

(भिक्षु दृष्टान्त ७७)

१३१. (क) विष्णु सवन् १८५७ में स्वामीजी ने पुर में चातुर्मास किया। फौज वाले निराहियों के आने की समाचना होने से स्वामीजी वहाँ से बिहार करने लगे। तब भार्दों ने कहा—'आर बिहार बरी करते हैं?' स्वामीजी बोने—'हमें यहाँ अन्य सत्राय के साधुओं ने चातुर्मास किया था, उन समय फौज के भय से गांव के कई लोग बाहर चले गए लेकिन उन साधुओं ने कहा—'हम तो चातुर्मास में बिहार नहीं करेंगे इन तरह हठाग्रह करके बिहार नहीं किया।' बाद में फौज वाले आदमी आए तब वे साधु नागोरियों के मकान में रहे। निराहियों ने उन साधुओं को परहकर कहा—'धन मान बनाओ?' मित्रों की धूर्ई देकर मित्रों को उनके मुह पर बाघ दिया। इस प्रकार बहुत कष्ट दिया, इसलिए हमारा यहाँ से बिहार करने का विचार है। भार्दों ने कहा—'महाराज! आर बिहार न करे हम आपको अच्छी तरह पढ़वा देंगे। आपको छोड़कर हम नहीं जायेंगे। तब स्वामीजी उनके विश्वास पर वही ठहरे।

कुछ दिन पश्चात् फौज के आने की हतबत मची तब लोग तो रात्रि में ही बिधर के बिधर चले गये। स्वामीजी भी अपनी सूझबूझ से ही प्राण काय होने ही वहाँ से बिहार कर 'गुडला' पधार गये।' बाद में कुछ भार्दों ने स्वामीजी के

१. स्वामीजी ने आश्विन शुक्ला १३ मंगलवार को पुर में थड़ा की चउर्द माना आदि परटण री विद्य आलोच्यवणी ढाल २० की रचना की। कार्तिक वदि ५ मंगलवार को 'गुडला' में थड़ा की चउर्द कारण पड़िया थोमागा में बिहार करणो नहीं, इन थड़ा रे छहन री ढा० ५० की रचना की। मुनि भारमल जी ने कार्तिक वदि ५ (दूसरी) बुधवार को पुर में माना आदि

दर्शन किये। स्वामीजी ने उन्हें उठाहना देते हुए कहा—‘तुम कहते थे कि हम आपके साथ में रहकर सेवा करेंगे। रात को ही दोड़कर वही के कहीं चले गये। भाइयो ने कहा—‘हम मगरे (पहाड़) पर खड़े-खड़े देख रहे थे—‘वे स्वामीजी पगार रहे हैं, वे स्वामीजी पगार रहे हैं।’ पुन स्वामीजी ने कहा—‘दूर खड़े-खड़े देखने से क्या होता है? साथ में रहने का बहुर साथ में सी रहे नहीं। इसलिए साधुओं को केवल गृहस्थों के भरोसे नहीं रहना चाहिए।’

(भिक्षु दृष्टान्त २६०)

(ख) मीठली से बिहार कर चेलावाम पधारने समय स्वामीजी ने आगे का रास्ता पूछा तब जयचन्दजी थावक ने कहा—‘गुरुदेव! रास्ता तो मैं जानता हूँ, आप सुख पूर्वक बिहार करें, मैं आपकी सेवा में साथ ही हूँ। कुछ दूर चलने के बाद हरियाली ही हरियाली आ गई मार्ग छूट गया।’ स्वामीजी ने जयचन्दजी को उपालभ देते हुये कहा—‘तू कहता था कि मैं मार्ग जानता हूँ।’ जयचन्दजी ने कहा—‘महाराज! माफ कीजिये, मैं तो रास्ता ही भूल गया हूँ।’ स्वामीजी बोले—‘साधु को एकमात्र गृहस्थ के भरोसे ही नहीं रहना चाहिए।’

(भिक्षु दृष्टान्त २६१)

१३२. किमी ने आचार्य भिक्षु से पूछा—आप अन्य सम्प्रदाय वालों के किया कलापो का दिग्दर्शन करवाते हैं उसकी आपको जानकारी कैसे हुई?’ स्वामीजी बोले हम आपाङ्ग महीने के ज्योतिषी नहीं कार्तिक महीने के ज्योतिषी हैं। जैसे आपाङ्ग महीने का ज्योतिषी कार्तिक महीने के ध्यान का भाव पहले ही बता देता है वे चाहे मिले या न मिले। पर कार्तिक का ज्योतिषी वर्तमान में ध्यान के जो भाव होने हैं वही बताता है। वैसे हम वर्तमान में जैसी स्थिति देखने हैं वैसी ही बताते हैं।

(भिक्षु दृष्टान्त ३०४)

१३३. स. १८५६ में अस्वस्थता के कारण स्वामीजी को तेरह मास तक नापटारा में रखना पड़ा। वहा मुनि श्री हेमराजजी गोचरी गये। एक पात्र में धने और भूंग की दाल मिलाकर ले आये। स्वामीजी ने पूछा—‘यह भिनी हुई थी या तुमने मिनाई? हेम—मैंने मिनाई। स्वामीजी—‘रोगी के लिए भूंग की दाल की खोज करना तो दूर रहा, किन्तु जो सद्गुरु प्राण हुई उसे मिलाकर लाया है। हेम—‘ध्यान नहीं रहा, अनजान में ऐसा हो गया।’

इस पर स्वामीजी ने उन्हें कुछ कड़े शब्दों में उठाहना दिया तब वे उदास हो

परटण री विष ओनयावगी काय २० की प्रतिलिपि की।

इन सदस्यों में यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामीजी आश्विन शुक्ला दशमे कार्तिक वदि ४ की मध्याह्न में पुर में बिहार कर ‘गुहना’ पधारें। कार्तिक वदि ५ (दूसरी) बुधवार को वापस पुर पधार गये।

गए और एकान्त में जाकर सो गए। स्वामीजी आहार करके मुनि हेमराजजी के पास में आकर बोले—‘हेम ! (हेमडा) अबगुण मेरा देख रहा है या तेरा ? हेमराजजी ने कहा—‘गुरुदेव अपना ही देख रहा हूँ।’ स्वामीजी बोले—‘आगे पर सावधान रहना चलो आहार कर लो। इस प्रकार वात्सल्यमय वचनों से आरवस्न कर स्वामीजी ने उन्हें आहार करवाया।’

(भिक्षु दृष्टान्त १६६)

१३४. स० १८५८ में खेरवा के भगजी नामक एक भाई दीक्षा लेने के लिए तैयार हुये। उनके पारिवारिक जनो ने स्वामीजी से कहा—‘इसकी दीक्षा देने की हमारी आज्ञा नहीं है। स्वामीजी बोले—आप सगे भाई चाचा आदि तो हैं नहीं, इसलिए आपके आदेश की जरूरत नहीं है। कुछ समय परवात बड़ी बहिन की आज्ञा से स्वामीजी ने भगजी की दीक्षा प्रदान की। कौटुम्बिक जन स्वामीजी के पास आ आकर बहुत दिनों तक विग्रह करते रहे परन्तु स्वामीजी ने कोई परवाह नहीं की।’

एक दिन स्वामीजी ने भुनि भगजी से पूछा—‘अगर तुम्हारे सम्बन्धी तुझे बल पूर्वक वापस ले जायेंगे तो तू क्या करेगा?’ वे बोले—‘यदि वे मुझे घर में ले जायेंगे तो मैं चार प्रकार के आहार (अशन, पान, खादिम, स्वादिम) का यावज्जीवन के लिए परित्याग कर दूंगा।’

स. १८६० सिरियारी चातुर्मास में भी परिवार वालों ने बहुत झगड़ा किया पर स्वामीजी अपने न्याय पक्ष पर अटल रहे।

(भिक्षु दृष्टान्त १४०)

१३५. देसूरी के निवासी ‘नाथूजी’ स्वामीजी के पास में दीक्षित हुये। उनमें रस लोचुपता देखकर स्वामीजी ने १८५६ में साधु संघ के हित के लिए दूध, दही, घी, मिष्टान्त, कड़ाई विगय आदि खाने की मर्यादा बनाई।

संघ की मुरसा के लिए कड़ा प्रतिबंध लगाने में भी स्वामीजी सकींच नहीं करते थे।

(भिक्षु दृष्टान्त १६१)

१३६. संवत् १८५४ में स्वामीजी ने चार साधुओं से खेरवा में चातुर्मास किया। पर्युषण पर्व के दिनों में कई आवश्यक गण्ठवातियों के उपाश्रय में व्याख्यान सुनने के लिए गये। वापस आकर स्वामीजी से बोले—‘स्वामीनाथ ! अभी हम लोग उपाश्रय में व्याख्यान सुनकर आये हैं, वहाँ ऐसा प्रसंग चला कि कूर्मापुत्र ने केवल ज्ञान होने के बाद छह महीने तक राज्य किया। एक दिन वह राज्य-सभा में बैठा था, उस समय दो साधु वहाँ आकर खड़े हो गये पर उसको वन्दना नहीं की। इस पर कूर्मापुत्र केबली ने उन साधुओं से कहा—‘मुझे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है, फिर भी आपने मुझे वन्दना नहीं की?’ तब उन साधुओं ने कहा—आपका

वेग गृहस्थ का है इसलिए हमने नमस्कार नहीं दिया।' यह सुनकर कृष्णजी बोला—'ठीक-ठीक अब मैं समझा। यह बड़ा भारी ने सामीजी में गुप्त—'क्या यह बात सच है? इस लेखी बोले—'यह बात सच है। राजा मोतीराम के उदर में दिया जाता है। जहाँ के राजा की प्राणि मोतीराम के उदर होने के बाद में होती है। जो इस कथा को सच मानते हैं उन्हें नमस्कार है और मैं जो गृहस्थ सच मानते हैं उन्हें ही। इस प्रकार सामीजी में उन लोगों को समझा दिया।'

(भिरगू दृष्टान्त २१)

१३७ देगुरी के गांधूजी ने स्त्री, बेटी तथा माता को छोड़कर दीक्षा ली। पर प्रवृत्ति बड़ी थी, जिसने अनुशासन का पूरा ध्यान नहीं रखा। नीचे बसे हुए गण में रहे फिर वे अलग हो गए। उनके साथ वाले गांधूजी ने सामीजी में आकर कहा—'गांधूजी गण में पृथक् हो गए। सामीजी ने कहा—'वैने किसी के शरीर में जोड़ा बहुत पीड़ा करना है, कालांतर में जब यह फूट जाता है तब वह प्रसन्न होता है या अप्रसन्न? गांधू बोले—'प्रसन्न हो जाता है। स्वामी बोले—'वैने गांधूजी को तकलीफ देने वाला गांधू अलग हो जाने से मन नाराज नहीं होता।'

(भिरगू दृष्टान्त २)

१३८ हेमराजजी स्वामी दीक्षा लेने के लिए तैयार हुये तब किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—'महाराज! हेमजी दीक्षा ली लेते हैं, पर इनके लगाने मूषके का ध्येय है।' स्वामीजी बोले—'विराह मड गया, सब सामग्री मौजूद है, अगर एक काचरी नहीं है तो क्या उसके बिना विवाह अटकता है?'

(भिरगू दृष्टान्त २३)

१३९ कोटा सम्प्रदाय वाले दोलतरामजी के पास दीक्षित हुए—(१) बड़े-मानजी (२) बड़ा रूपचन्दजी (३) छोटा रूपचन्दजी (४) मूरनोजी। उनमें छोटा रूपचन्दजी (कम सख्या ३२) ने एक दिन स्वामीजी से कहा—'मुझे ठंडी रोटी नहीं मिलती।' तब स्वामीजी ने आहार का बटवारा करते समय ठंडी रोटी पर एक-एक लड्डू रखते हुए कहा—'जो ठंडी रोटी का विभाग लेगा उसे लड्डू मिलेगा और जो गर्म रोटी का विभाग लेगा उसे लड्डू नहीं मिलेगा।' स्वामीजी के श्याय सगत विभाजन से चुपचाप कमलानुसार, अपना-अपना विभाग ले लिया। किसी को गर्म या ठंडी बटने का अवसर ही नहीं मिला।

(भिरगू दृष्टान्त १६७)

१४०, स्थानवासी साधू टीकमजी के शिष्य कचरोजी निरवधारी में सामीजी के पास आकर बोले—'भीषणजी कहा है?' स्वामीजी ने कहा—'भीषणजी' मेरा ही नाम है। तब वे बोले—'आपकी देखने की मेरे मन में बहुत

उत्तरा दी, इसलिए मैं आज आया हूँ।'

स्वामीजी ने मुश्किलें हुए कहा—'तो देख लो।'

देखने के पश्चात् बचरोजी बोले—'आप मुझे कुछ बर्षों पूछिए ?'

स्वामीजी—'तुम लो देखने के लिए आए हो, फिर मुझे क्या बर्षा पूछें ?'

बचरोजी—'कुछ तो पूछ ही लीजिए।'

उनका अधिक आग्रह देखकर स्वामीजी ने पूछा—'लीगने महाजन का देख, दोष, काम, भाव और गुण क्या है ?'

बचरोजी ने कहा—'दमका जवाब मुझे तो नहीं आता पर पन्नों में लिखा हुआ पढ़ा है।'

स्वामीजी—'यह पढ़ जाए अथवा तुम हो जाए लो क्या बरोगे ?'

बचरोजी को जब इसका कोई उत्तर नहीं सूझा तब बात को घुमाते हुए बोले—'मेरे गुरुजी ने आगरा बर्षा पूछी थी, उसका आपको जवाब नहीं आया।'

स्वामीजी—'वही बर्षा तुम फिर मे पूछ लो, यदि उन्हें उत्तर दिया है तो तुम्हें भी दोगे।'

बचरोजी—'आप लो मेरे दादा गुरु हैं, अतः बर्षा में मैं आपको यँने जीत सकता हूँ।'

स्वामीजी ने निरर्थक बातों में समय जाता देखकर बात को समाप्त करते हुए कहा—'मुझे लो ऐसा पोता चेना नहीं चाहिए।'

(भिक्षु दृष्टान्त ४६)

१४१ सागर में व्यक्ति की पूजा नहीं, जल की पूजा होती है। पूनम का चांद नहीं, दूज का चांद पूजा जाता है। सरस उबिन में आकर्षण नहीं, वन उबिन में आकर्षण होता है। स्वामीजी की साहित्यिक बाध्य-बला में यह समस्कार था, जिसमें उनकी भावमयी भाषा गीधी हृदय को छू लेती।

आचार्य भिक्षु ने स० १८४५ का चालुर्मास पीपाड में किया। वही अनेक लोग ममज्ञे। उनमें एक प्रतिष्ठित और तत्त्वज्ञ व्यक्ति जगन्नी गांधी भी थे। उनके ममज्ञे से विपक्षी सम्प्रदाय वाले लोगों को बड़ा आघात लगा। उनमें सेतमीजी सुणावत के लिए तो वह असह्य सा हो गया वे अन्यतः चिंतित हो गए।

स्वामीजी ने किसी भाई से जब ऐसा सुना तो उन्होंने कहा—'परदेस से किसी की मृत्यु के समाचार आने हैं तब चिन्तातुर तो अनेक व्यक्ति होते हैं पर जो आघात उसकी पत्नी को लगता है। वह किसी को नहीं लगता। लम्बी कचुकी यह एक ही पहलू है।'

(भिक्षु दृष्टान्त १७)

१४२ स्वामीजी ने स० १८४५ का चालुर्मास पीपाड में किया। वहाँ रात्रि-कालीन व्याख्यान में लोग बहुत आते। कुछ विरोधी लोग दूर बैठ जाते और

निन्दा करते। एक व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—‘इधर आप तो व्याख्यान दे रहे हैं और उधर लोग आपकी निन्दा कर रहे हैं।’ स्वामीजी ने कहा—‘मानव जनते पर कुत्ता स्वभाववश भौंकने लगता है, लेकिन वह यह नहीं समझता। वह किसी के विवाह पर बजाई जा रही है या किसी के मरने पर।’

इस प्रकार निन्दा करने वाले व्यक्ति यह नहीं समझते कि व्याख्यान में ज्ञान की बात आ रही है अतः प्रसन्न होना तो कहाँ रहा, प्रत्युत निन्दा करते हैं। उनका स्वभाव निन्दा करने का ही है, अतः उनका दिमाग उल्टा ही चलता है।

(भिक्षु दृष्टान्त १६)

१४३. पीपाठ के उस चातुर्मास में स्वामीजी का रात्रिकालीन व्याख्यान सुनकर जनता बहुत प्रभावित हुई। कुछ विरोधी व्यक्तिों को वह अच्छा नहीं लगा वे उसका विरोध करते हुए कहते कि—‘भीषणजी के व्याख्यान में सवा प्रहर के प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाती है।’

विरोधियों का उक्त कथन किसी ने स्वामीजी को बतलाया तब उन्होंने कहा ‘जिस प्रकार विवाहादिक उत्सव की रात्रि सुखमय होने से छोटी और सप्या होती है किसी की मृत्यु होने पर शोक सतप्त परिवार को वह दुःखमय रात्रि बड़ी लम्बी है। उसी तरह जिनको व्याख्यान रचिप्रद नहीं लगता उन्हें रात्रि बहुत लम्बी लगती है। व्याख्यान तो प्रहर रात्रि के पहले-पहले सपन्न हो जाता है।’

(भिक्षु दृष्टान्त १७)

१४४. पीपाठ में एक बार स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे जनता बहुत थी। उन समय विरोधी सम्प्रदाय के एक व्यक्ति तारारबन्दजी सिधवी कहा आये और बोले ‘तुम लोग भीषणजी का व्याख्यान सुनते हो अतः तुम्हें ‘दाहा’ (गीत) सब आयेगा।’

स्वामीजी ने कहा—‘दाहा तो हरे वृक्षों की ही लगता है पर ‘दूध’ (जिग पैर) की छातिवा और पत्तियाँ काट ली गईं हो या सूखकर गिर गईं हो) को नहीं।’

स्वामीजी के भाषिक जवाब को सुनकर उनकी जवान बन्द हो गई। अन्य जनता मुस्कराने हुए कहने लगी—‘अच्छा जवाब दिया’ ‘अच्छा जवाब दिया।’

(भिक्षु दृष्टान्त २१)

१४५. स्वामीजी जब स्थानकवासी सम्प्रदाय में थे तब एक दिन आचार्य स्वनाथजी के साथ भिक्षा के लिए गये। एक घर में एक भाई घरघा सो रहा था। आचार्य स्वनाथजी ने उसके हाथ से आहार लिया। बाहर आने के बाद वे बोले—‘भीषणजी कुछ शका तो नहीं हुई?’ स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—‘यह तो सम्मान अशुद्ध ही लिया गया था। इसमें फिर शका की क्या बात है।’

(भिक्षु दृष्टान्त ७६)

१४६. म० १८२९ का स्वामीजी ने पाँच साधुओं से नाथद्वारा में चातुर्मास

किया। वहाँ भारीमालजी भ्यामी खेनसीजी स्वामी तथा हेमराजजी स्वामी तो एकान्तर तप करते। स्वामीजी अष्टमी, चतुर्दशी के उपवास करते, और मुनि उदयरजजी बेने-बेले की तपस्या एवं पारणा में आयविल करते। खेतसी स्वामी मुनि उदयरजजी को पारणे में कुछ भोजन अधिक देते। स्वामीजी ने कहा—'बेले का पारणा है अन. आहार अनुमान से देना चाहिए।' फिर भी अधिक देते हुए देख कर स्वामीजी ने कहा—'सम्भवतः उदयरज की मृत्यु तुम्हारे हाथों से होगी।

कितने वर्षों बाद मारवाड़ में स १८६१ में मुनि उदयरजजी 'आर्याम्बल वर्धमान तप' कर रहे थे, इकतालीस की श्रेणी तक चढ़े, बीच में आठ दिन के तप का पारणा 'छारबिया' ग्राम में किया। शरीर में कुछ बीमारी जानकर भारीमालजी स्वामी के पास चेलावास आने के लिए विहार किया। रास्ते में चलते-चलते कराड़ी ग्राम में वे थक गये। उस समय उनके सहयोगी मुनि भोपजी ने चेलावास में आकर जब इस बात की सूचना दी तब मुनि श्री खेतसीजी, हेमराजजी तथा भोपजी वहाँ आकर उन्हें कंधे पर बैठाकर चेलावास ले आये। सूखे घास का बिछौना बिछाकर उन्हें सुला दिया। थोड़ी देर पश्चात् दर्शनार्थ आई हुई साठवीं श्री होराजी ने मुनि श्री हेमराजजी को उन्हें पानी पिलाने के लिए कहा। मुनि श्री हेमराजजी तथा खेतसीजी दोनों उनके पास आये। खेतसी स्वामी ने पीठ के पीछे हाथ का सहारा दे कर उन्हें बिठलाया कि इस में आँखें फेर दी।

भारीमालजी स्वामी उनका आयुष्य निश्चय समझकर बोले—'उदयरजजी तुम स्वीकार करो तो तुम्हारे चारों आहारों का परिष्कार है।' कुछ क्षणों बाद खेतसी स्वामी के हाथों में ही वे दिवंगत हो गए। खेतसी स्वामी बोले—'स्वामी जी ने मुझे कहा था कि सम्भवतः उदयरज की मौत तुम्हारे हाथों से होगी। वह स्वामीजी का वचन आज साक्षात् मिल गया।

(भिक्षु दृष्टान्त १८८)

१४७. जब चन्द्रभाणजी ने तिलोक्चन्दजी को आचार्य पद का प्रतीक देकर अपने पक्ष में किया तब स्वामीजी ने तिलोक्चन्दजी को कहा—'तुम्हें आचार्य पद मिलना तो कठिन है पर इसके बदले वही मूरदास पद न मिल जाये। इतना रखना वहीं चन्द्रभाणजी तुम्हें जगल में न छोड़ दे।' गण से असंग होकर कुछ वर्षों तक तो वे शामिल रहे। बाद में चन्द्रभाणजी ने तिलोक्चन्दजी को नजर की बमखोरी का नाम लेकर जगल में छोड़ दिया। स्वामीजी का वचन मिल गया।

(भिक्षु दृष्टान्त ७०)

१४८. गूजर रमलजी नामक भाई ने खर्चा करने समय स्वामीजी ने पत्र पढ़कर बतलाये। उन्होंने कहा—'मुझे पत्र में लिखे हुए अक्षर बतलाइये।' स्वामीजी ने अक्षर बतला दिए और कहा—'गूजर रमलजी! तुम्हारे दिन में बाग्या बम है इन-लिए सम्पत्ति का रहना कठिन है।' शीघ्र मुनकर आश्चर्य-विभू हुए।

१५१. साध्वी मंणाजी तथा मुनि धंणीरामजी के लिए स्वामीजी ने कहा—'ये आखों के लिए औषध ना अत्यधिक प्रयोग करते हैं अतः सम्भव है कि ये नहीं आखों की ही न खो बैठे । फिर भी उन्होंने औषध का प्रयोग नहीं छोड़ा । आखिर आखों की नजर बहुत कमजोर पड़ गई । अधिक दवा के प्रयोग से आखों को खतरा हो गया ।

(भिवन्तु दृष्टान्त १६५)

१५२. सिरियारी में स्वामीजी ने चातुर्मास किया । वहाँ पोतियावध सम्प्रदाय के कपूरजी नामक भाई और कुछ बहनें भी थी । बहनों के साथ किसी विषय को लेकर कपूरजी का तनाव हो गया । सबस्मरी आई तब कपूरजी ने स्वामीजी से कहा—'मीथणजी ! कुछ बहनों से मेरी बोलचाल हो गई इसलिए आज क्षमा याचना करने के लिए जाता हूँ । स्वामीजी ने कहा—'क्षमायाचना करने के लिए जानें तो हो पर कहीं ऐसा न हो कि प्रत्युत नया झगडा और खडा कर लो ।' वे बोले—'नहीं नया झगडा किसलिए करूँगा ?'

कपूरजी बहनों के पास पहुँचे और बोले—'तुमने क्षमा याचना है, तुमने तो मेरे साथ बहुत अनुचित बर्ताव किया, पर मुझे तो राग द्वेष नहीं रखना है ।'

बहनें बोली—'अनुचित बर्ताव आपने किया था हमने ?' इस तरह आपस में बोलचाल होने से झगडा अधिक खडा हो गया । वापस आकर कपूरजी ने स्वामीजी से कहा—'झगडा तो प्रत्युत्तर ज्यादा हो गया ।' स्वामीजी बोले—'कपूरजी ! मैंने तो पहले ही कहा था ।'

(भिवन्तु दृष्टान्त ८२)

क्षमायाचना करते समय पिछली बातों को छेड़ने से तनीजा अच्छा नहीं निकलता । उस समय दोनों तरफ से गम्भीरता होने से ही राग-द्वेष मिट सकता है ।

१५३. स० १८५३ में स्वामीजी ने सोजन में चातुर्मास किया । वहाँ लोग बहुत समझे । किसी ने कहा—'मीथणजी ! यहाँ उपकार तो बहुत अच्छा हुआ ।' स्वामीजी बोले—'मेरी तो बी है पर गांव के बाहर है, इसलिए किसी पशु के न घुमने से ही वह सुरक्षित रह सकती है, अन्यथा काम बहुत बटिन है ।' आखिर बैसा ही हुआ कि समझे हुए लोग वापस फिमत गए ।

(भिवन्तु दृष्टान्त २२)

१५४. समार में एक पुरानी लोकोक्ति है कि बालक, माधु और धर-जघु के मुँह से जो अक्षरमात्र बचन निकल जाता है वह प्रायः सत्य टाबित होता है ।

१. जे भाई बालक बचा, जे भाई अक्षर ।

जे भाई धर बालिनी, झूठ न पडन लिपार ॥

‘भीषणजी ! साधु आहार करता है वह अच्छा ही काम है ।’

(भिक्षु दुष्टान्त ३)

१५६. एक बार मन्दिर-मार्गी भाई स्वामीजी के पास में आकर बोला—
‘आपको जैसे नदी उतरने में धर्म होता है वैसे हमको भी फूल चढ़ाने में धर्म होता है ।’ स्वामीजी बोले—‘तुम्हारे पास तीन तरह के फूल हों—१ सूखे २. दो-तीन दिन के भुरझाये हुए और ३. कच्ची कलियाँ । इनमें से कौन से फूल चढ़ावोगे ?’ वह बोला—‘घुन-घुन कर कच्ची कलियाँ चढ़ावेंगे ।’ स्वामीजी बोले—‘तुम लोगों के परिणाम (भाव) जीव हिंसा के रहते हैं’ और हम लोगों के परिणाम दया पालन के । एक नदी में कमर तक का जल है, एक में घुटने तक का, एक नदी सूखी है तो हम लोग सूखी नदी से जाते हैं अग्यप्पा इनमें से अधिक जल वाली नदी को २-४ कोस की अवसाई (घुराव) खाकर भी टालने की चेष्टा करते हैं और कम से कम जल वाली नदी से पार होने हैं । इसलिए नदी उतरने के साथ फूल चढ़ाने की बात की समानता नहीं होती ।

(भिक्षु दुष्टान्त ६७)

१६०. एक बार स्वामीजी ‘आठवा’ पधारे । वहाँ के उत्तमोजी ईराणी स्वामीजी से बोले—‘आप देहरों (देवालियों) का निषेध करते हैं परंतु पुराने जमाने में बड़े-बड़े लखपति, करोड़पति हुए उन्होंने देवालय करवाये हैं ।’ स्वामीजी बोले—‘यदि तुम्हारे पाम पचास हजार का धन हो जाये तो देवालय कराओगे या नहीं ?’ उसने उत्तर दिया—‘अवश्य कराऊंगा ।’ स्वामीजी ने पूछा—‘तुम्हारे में जीव का भेद, गुणस्थान, उपयोग, योग और लेश्या कौन-कौन से हैं और कितने कितने पाते हैं ?’

उत्तमोजी बोला—‘यह तो मालूम नहीं ।’ स्वामीजी बोले—‘ऐसी ममज्ञ वाले पहले भी हुए होंगे । क्या रुपये होने से ज्ञान आ जाता है ?’

(भिक्षु दुष्टान्त ३६)

१६१. स्वामीजी विहार करते-करते दूढ़ाड पधारे । कुछ दिगम्बर श्रावक स्वामीजी के पास आए और बोले—‘मुनि को किंचित् मात्र वस्त्र नहीं रखना चाहिए । वस्त्र रखते हैं तो वस्त्र-परिषह का भग होता है ।’ स्वामीजी ने पूछा—‘परिषह कितने हैं ?’ श्रावक बोले—‘बाबोस ।’

स्वामीजी—‘पहला दूढ़रा परिषह कौन-सा है ?’

श्रावक—‘शुष्का, तृपा ।’

स्वामीजी—‘तुम्हारे साधु आहार पानी करते हैं या नहीं ?’

श्रावक—‘एक वस्त्र करते हैं ।’

स्वामीजी—‘तब तो तुम्हारे कथनानुसार तुम्हारे मुनि शुष्का व तृपा परिषह से स्थिति होते हैं ।’



बाबेबां ने आते ही उनको पूछा—'बया मेरवा मे भीखनजी भिने और उनने विषय मे छन्द बनाकर साए हो ?' सेवक ने कहा—'हो ! भिना बा और कुछ जोड़कर भी साया हू ।' यह सुनकर वे उगे सेकर तेरापपी थावको के पास से गए और कहने लगे—'यह तो एक सेवक है अतः किसी के पक्ष बा न होकर निष्पक्ष है यह तो जैसा जानता है वैसा ही बहेगा ।'

सेवक को बोलने के लिए प्रेरित करते हुए ये बोले—'क्यों भाई शोभाचंद ! भीखनजी कैने हैं ?

सेवक ने कहा—'उनके विचार उनके पास हैं और अपने विचार अपने पास—अतः मेरे से उनके विषय मे क्या कहलाना है ?' फिर भी उन्होंने बहुत आग्रह किया तब सेवक ने स्वामीजी के गुणानुवाद के दो छन्द सुनाये—

छन्द

अनभय बयणी रहिणी करणी अति आठुई बर्म जीपे अधिकारी ।
गुणवत् अनन सिद्धन बला गुण प्राप्तिम पोहोच बिद्या पुण भारी ।
शास्त्र सार बत्तीस जाणै सहू केवलजानी का गुण उपकारी ।
पच इन्दी कू जीत, न भानत पाछड़ साध मुनिद बडा सतधारी ।
साध मुक्ति का वास बन्दा सहू भीखन स्वाम सिद्धन्त है भारी ॥१॥
स्वामी पर भव के स्वार्थ साध है वाच है सूत्र कला विस्तारी ।
तेरा ही पय साचा त्रिऊ लोक मे नाग सुरेन्द्र नमै नर नारी ।
गुणी है मरय बात सिद्धत मुज्ञान की बोहत गुणी करणी बलिहारी ।
गृन्वी के तारक पचम आर मे भीखन स्वामी का मारग भारी ॥२॥
अपनी कल्पना के विपरीत स्वामीजी के गुणगान सुनकर विरोधी लोग तो इधर-उधर छिनक गये और स्वामीजी के थावको ने मुश होकर उसे बीस-पच्चीस रुपये पुरस्कार रूप मे दिए ।

(भिक्षु दृष्टान्त ६६)

१६४. किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—'पुस्तक पन्नों को जमीन पर नहीं रखना चाहिए । पुस्तक, पन्ने ज्ञान हैं अतः उम ज्ञान की आशातना नहीं करनी चाहिए ।' स्वामीजी बोले—'तुम लोग पुस्तक पन्नों को ज्ञान कहते हो तो क्या पुस्तक-पन्नों के फट जाने पर ज्ञान भी फट जाता है, जल जाता है तथा चुराया जाता है ? पुस्तक पन्ने तो आजीव होते हैं और ज्ञान जीव है । उनमे लिखे गए अक्षरों के आवार तो पहचान के लिए हैं । उनसे जो अर्थ जाना जाता है वह ज्ञान है, जो आत्मा मे है अर्थात् पास है और पत्र उनमे भिन्न हैं ।' स्वामीजी ने इस समाधान से यह सिद्ध कर दिया कि आशातना चेतन पदार्थ की होती है न कि जब वस्तु की ।

(भिक्षु दृष्टान्त २०८)

१६५. एक बार स्वामीजी सोजन के बाजार की छतरी में विराज रहे थे। उस समय बरबूजी, नाथाजी आदि सात साध्विया अन्य ग्राम में विहार करके आई। स्वामीजी को वन्दना करके पूछा—‘ठहरन के लिए कौन-भी जगह है?’ तब स्वामीजी स्वयं उठकर पाम में बंद उपाधय या वहा आकर बोलें अरे। उपाधय में रहने की आज्ञा देने वाला कोई भाई है? एक भाई ने कहा—‘मेरी आज्ञा है।’ तत्क्षण स्वामीजी ने अन्य जगह से चाबी लाकर किवाड़ खोल दिये और साध्वियों को उसमें ठहरा कर वापस अपने स्थान पर पधार गए।’

(भिक्षु दृष्टान्त १८६)

जो व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि साध्वियों को किवाड़ खुलवा कर नहीं उतरना चाहिए, उन्हें मूत्र के रहस्यों का बोध नहीं है।

१६६. गूदोव म आचार्य रघुनाथ ने स्वामीजी के साथ चर्चा करते हुए आवश्यक मूत्र का प्रमाण देकर कहा—‘यह देखो इसमें लिखा है कि कायोर्मय भव करके भी विज्ञानी से चूहे की छुड़वा देना चाहिए।’

स्वामीजी ने उनके टोने में स० १८११ की लिखी हुई आवश्यक मूत्र की प्रति निकालकर कहा—‘यह देखिए, आपकी प्रति के अनुसार यह प्रतिनिधि की हुई है, इसमें तो यह अर्थ नहीं है।’

आचार्य रघुनाथजी बोले—‘हमने दूसरों के देखा-देख यह अर्थ इसमें प्रक्षिप्त किया है।’ स्वामीजी ने कहा—‘इस तरह झूठा अर्थ प्रक्षिप्त करना उचित नहीं है।’

(भिक्षु दृष्टान्त २६७)

१६७. स्वामीजी से किसी ने पूछा—‘आप वन्दना स्वीकृति में ‘जी’ कहते हैं इसका क्या कारण है?’ स्वामीजी ने कहा—१. नाथों को नमस्कार करने वाला ‘आदेन’ कहना है, वे वापस उसे ‘आदि पुरुष को’ कहते हैं। २. गुमाई को—‘नमो नारायण’, ‘नारायण’ ३. वैष्णव को ‘राम-राम’ ‘रामजी’ ४. फकीर को ‘माई माहूब’, ‘माहूब’ ५. जनी को गुराजी वन्दना, ‘धर्म लाभ’ ६. स्थानस्थानियों को ‘ममाऊ’ वा ‘बानू’, ‘दया पालो’। इस तरह थावक (भक्त लोग) वन्दना करने में और माधु वदन स्वीकृति में उपरोक्त भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं परन्तु रायचमणी मूत्र में ‘जीयमेय’ इत्यादि पाठ कहे हैं अतः हम माधु-जन वन्दना स्वीकृति में ‘जीय’ वा एक अक्षर ‘जी’ कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि जो तुम वन्दना करने हो वह तुम्हारा जीन-आचार (कर्तव्य) है।

(भिक्षु दृष्टान्त २६९)

१. माधु नाथाजी के मूत्र में गुनकर यह पटना लिखी गई है। ऐसा इस दृष्टान्त में उल्लेख है।

१६८. निर्या दृष्टि (त्रिने पदार्थ तत्त्वों की जानकारी नहीं है) व्यक्ति को जान, सोच, तब आदि कुछ किया करता है, वह धर्म है और भगवान् की आज्ञा से है। जो लोग उसकी आज्ञा किया की अनुमति मानते हैं, उन्हें इसका बोध नहीं है। निरवध करनी करे पहले गुण ठाने, निज करनी में आकर जाने अगुण। इसी परंपरा करे आज्ञानी, निज की धर्म हृदय में गुण में गुण॥ पहले गुण ठाने निरवध करनी करे है, निज की करनी कराया में योग्य जाने। अतिचार नामो बड़े समझा माही, निज को ध्याय आप्या निज मुखे लाने॥

(मिथ्यामी की करनी की भी० का० १ पा० २६, ३०)

१६९. एक बहिन स्वामीजी ने बार-बार गोबरी की प्रार्थना करती थी। एक दिन स्वामीजी उनके घर पर पधार गए तो वह आश्चर्य प्रगल्भ हुई। आहार देने लगी तो स्वामीजी ने उनसे पूछा—'बहिन! आहार देने के पश्चात् संभक्त गुण हाथ धोने पर तो सक्षिप्त पानी से धोओगी या अक्षिप्त पानी से?' वह बोली—'उष्ण पानी से।' स्वामीजी—'बहु धोओगी?' बहिन ने नामी की ओर लक्ष्य करते हुए कहा—'यहां धोऊंगी।' स्वामीजी—'इस नामी से पानी नीचे गिरता है अतः बाधुबाध की 'विशुद्धता' (हिमा) होती है ऐसी स्थिति में मुझे आहार देना नहीं बल्यता।' 'बहिन! आप तो अपना आहार कुछ देकर से लें। पीछे से हम गृहस्थ बना करते हैं, इसका आपको क्या करना है। हम हमारी सांसारिक धर्म की कैंसे छोड़ सकते हैं?' स्वामीजी ने कहा—'बहिन जब तू अपनी सावध-निद्या की नहीं छोड़ती तब मैं रोटी के लिए अपनी निरपच-क्रिया को कैसे छोड़ूँ।' ऐसा आहार देने से मुझे 'पश्चात् कर्म' का दोष लगता है, यो कहकर वे वहां से आहार बिना लिए ही वापस आ गए।

(भिक्षु दृष्टान्त ३२)

१७०. रीया के मेठ हृदयमलजी ने एक बार स्वामीजी से बपहा लेन की प्रार्थना की। स्वामीजी ने कहा—'गुण साधुओं के लिए बपहा मोल लेने हो, अतः वह हमें नहीं बल्यता।' मेठ—'दूसरे साधु तो लेते हैं, हमसे मुझे क्या होता है?' स्वामीजी—'यह तो उन सेने वालों से पूछना चाहिए।' मेठ—'बहने में भी मोल लेकर देने में वे साधु भी पाप ही कहते हैं परन्तु ले तो लेते हैं।'।

मेठजी ने पुनः निवेदन करते हुए कहा—'तो आप मेरे काम में आने वाले करते में से कुछ से लो।' स्वामीजी बोले—'हां।' हमें वह बल्यता है, किन्तु हम उनसे से भी नहीं लेने क्योंकि लोग तो यही समझते कि यहाँ से दूसरे साधु भी बपहा ले गए और भीषणजी भी ले गए पर इसका तार (निषेध) कौन निवासंगा कि भीषणजी उनके ध्वजिगत बपहों में से ले गए जो साधुओं के लिए घरीश हुआ नहीं था।'।

(भिक्षु दृष्टान्त २५)

१७१. सन् १८८५ की माल स्वामीजी काकरोली में 'महानों' की पोर में टहरे। रात्रि में पोल की गिरकी खोलकर स्वामीजी देह-निष्ठा के लिए बाहर गए तब मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी से पूछा—'महाराज ! गिरकी खोलने में कोई आपत्ति तो नहीं ?' स्वामीजी ने कहा—'पामी का चौयत्री मरनेवा हो दर्शनार्थ यहां आया हुआ है वह बहुत शकाशीन है, उसको भी इस बात का भय नहीं हुआ तो फिर तुम्हारे दिल में यह शका क्यों हुई ?' हेमराजजी बोले—'गुरुदेव ! मेरे मन में कोई शका नहीं है, मैंने तो केवल जिज्ञासा के लिए ही पूछा है।' स्वामीजी बोले—'तू पूछता है इसमें कोई हर्ज नहीं, किन्तु यदि दोष होगा तो मैं भी क्यों खोजूंगा।'।

(भिक्षु दृष्टान्त १७१)

१७२ स्वामीजी जब स्थानकशामी सम्प्रदाय में थे तब एक दिन किसी दर्जी के घर गोचरी गए। वह भाई साधुओं के पास आया जाया करता था, अतः कल्प-मन्त्र के विषय में उसे जानकारी थी। वह बोला—'कल आपका एक शिष्य गुह में गया था अब आज मेरे यहां की गोचरी नहीं कल्पती।'।

स्वामीजी ने स्थान पर जाकर सब सन्तो से पूछा—'कल उस दर्जी के घर से गुह क्यों लाया था ?' पर सभी इन्कार हो गए। तब स्वामीजी उस झूठ को प्रकट करने के लिए सरहो नाथ लेकर दर्जी के घर पहुंचे। उन्होंने गुह में जाने वाले साधु को बतलाने के लिए कहा तो दर्जी ने एक बालक साधु की ओर इशारा करते हुए कहा—'य से गए थे।'।

स्वामीजी ने निश्चय्य इगलिए निकाला कि उन्हें साधु बेग में इस प्रकार की बदमाशियां बिगुल पसन्द नहीं थी।

(भिक्षु दृष्टान्त १७२)

१७३ पापी की घटना है कि एक साधु ने एक बार ऐसा किया। वह साधु चारों दिनों गुह आजा लेकर सोमर वाले के घर में दूसरे दिन सोमर होने के बाद वही हुई भस्मिका माई और स्वामीजी को दिखवाई। स्वामीजी ने साधु की से पूछा—'इस भस्मिका के लिए तो क्या नहीं किया है ?' साधुजी ने स्पष्ट जवाब दिया—'हाँ, स्वामीनाथ ? कुछ मन में तो आई थी।' तब स्वामीजी ने पास में रहने वाले साधु-माधिका के अनिश्चित अन्वय विहारी साधु-माधिका के लिए दूसरे दिन भी बन्ध (पान्ध) जाने के घर गोचरी जाने की मना कर दी।

(भिक्षु दृष्टान्त १७३)

स्वामीजी का प्रसिद्ध यह दृष्टिकोण रहता था कि साधु समाज में बड़ी निष्कलम नहीं हो सकते। इसलिए वे समय-समय पर साधु मन में जाँच कर लेते।

१७४ स्वामीजी ने स्वामीजी का समाज पशोद भिक्षु मुन्धोरी माधिका का।

एक बार स्वामीजी कंटालिया पधारे तब उन्होंने उसको पूछा—‘गुल्ला ! क्या खेती की है ?’ गुल्लोजी—‘हां, स्वामीनाथ ! खेती की है ।’ स्वामीजी—‘उसमें जिनना खर्च लगा और धान्यादिक की निष्पत्ति कितनी हुई ?’ गुल्लोजी—‘सब दस रुपये का खर्च लगा और सब दस रुपये का माल पैदा हुआ ।’ स्वामीजी—‘गुल्ला ! यदि रुपये घर में पड़े रहते तो इतने आरम्भ का पाप तो न लगता ।’

स्वामीजी के वाक्य उसको हर कार्य में आरम्भ-समारम्भ से बचने की प्रेरणा दे रहे थे ।

(भिक्षुदृष्टान्त ४)

१७५. साधु व्रत लेकर जो अच्छी तरह नहीं पालता और साधु नाम से पूजाता है वह इहलोक और परलोक दोनों में खराब होता है, उस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त देते हुए कहा—‘एक जंगल में एक मोटा-ताजा खरगोश घूम रहा था । वो ‘छाली नाहर’ उसे खाने के लिए पीछे दौड़े । खरगोश दौड़ना-दौड़ता एक बिल में जाकर छुप गया । वहाँ एक लोमड़ी बैठी थी उसने उसकी भय-भ्रात दशा देखकर पूछा—‘भाई ! आज तू घबराया हुआ कैसे दौड़कर आया है ? अभी तक तेरा दम फूल रहा है ।’

खरगोश बोला—‘बहिन क्या बताऊ ? बड़ी मुश्किल से बचकर आया हू । जंगल में सभी जानवरों ने मिलकर मुझे चौघरपन का पद देना चाहा पर मैं लेना नहीं चाहता इसलिए दौड़कर यहाँ आया हूँ ।’ लोमड़ी—‘अरे ! चौघरपन में तो बहुत मजा है ।’ खरगोश—‘बहिन ! तुम्हारा मन हो तो तुम ले लो मुझे तो इसकी चाह नहीं है । तब लोमड़ी चौघरपन की पदवी के लिए उतावली होकर बिल से बाहर निकली । वहाँ पर दोनों छाली नाहर खड़े ही थे । लोमड़ी के दोनों कान उन्होंने पकड़ लिए । लोमड़ी घबराकर वापस दौड़ी, उसके दोनों कान छुश कर सटकते रह गए और धून झरने लगा ।

खरगोश उसकी दुर्दशा देखकर मन ही मन हस पड़ा और अपनी हसी को छपाकर बोना—‘बहिन ! अभी वापस क्यों आ गई ?’ लोमड़ी ने अपने कानों की ओर संकेत करते हुए कहा—‘चौघरपन में तो खीजातानी बहुत है इसलिए वापस आ गई ।’

(भिक्षुदृष्टान्त २६८)

१७६. संवत् १८५२ के लगभग आचार्य जयमलजी की सम्प्रदाय से गुमानजी, दुर्गादामजी, प्रेमजी, रतनजी आदि सोलह साधु अलग हुए । स्थानक, नित्यपिंड,

१. कुत्ते की जाति का एक जंगली हिंसक पशु जो कद में कुत्ते से कुछ बड़ा होता है और कुत्ते बकरी, बछड़े आदि का शिकार करता है ।

कलाल का पानी बहराना आदि छोड़कर उन्होंने नया साधुपन स्वीकार किया परन्तु पुण्य की श्रद्धा पूर्ववत् ही थी। तब लोग उनके विषय में कहने लगे कि जैसे भीखणजी अलग हुए वैसे ही ये अलग हुए हैं। भीखणजी स्वामी ने उनकी बात सुनकर एक दृष्टान्त देते हुए कहा—‘इन्होंने सिरोही के राव वाला पालखा खड़ा किया है।’

एक बार सिरोही के राव (ठाकर) साहब के उमराव, कामदार आदि ने विचार किया कि जयपुर, जोधपुर और उदयपुर के राजाओं के बैठने के लिए बड़ी मुन्दर पालकिया बनी हुई है तो अपने राव साहब के लिए भी एक पानकी बनाओ, ऐसा विचार कर उन्होंने कुछ सीधे टेढ़े बाम लगाकर और ऊपर सान वस्त्र तानकर एक अर्घी के ढग का ‘पालखा’ बनवा लिया, उसमें राव साहब को बिठाकर हवा खाने के लिए चले। बूतूहल वगैरह काफी लोग उसके पीछे चलने लगे। घूमते-घूमते गाव के बाहर एक सेत में आए और विधाम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठे।

कुछ दूर पर सेत में खड़े किमान ने जब यह राजकीय टाटवाट देखा तो सोचा—‘संभवतः राव साहब की बूढ़ी मा मर गई होगी। जिसे यहाँ जमाने के लिए लाये हैं।’ दूर से ही वह चिल्लाता हुआ आया—‘अरे ! यहाँ मत जमाओ, अरे ! यहाँ मत जलाओ, रात-विरात में कहीं बाल बच्चे डरेंगे।’ माय के आश्रमियों ने शिष्टककर कहा—‘वेवकूफ ! ऐसे क्या बोलता है ये राव साहब हैं, राव साहब।’ किमान ने कहा—‘क्या खुद राव साहब हैं ? गजब हो गया, गजब हो गया, मैंने तो सोचा था कि राव साहब की बूढ़ी मा मर गई होगी ?’ उन्होंने कहा—‘मूर्ख मरा कौन है ? जयपुर, जोधपुर, उदयपुर के राजा की तरह पालखी में बैठकर रावश्री हवा खाने आए हैं।’ किमान बोला—‘तो अर्घी के आकार सा यह क्या बनाया है। हमने तो सबकुछ यही सगता है कि किसी मुर्दे को जमाने के लिए लाये हो।’

स्वामीजी ने कहा—‘जिस प्रकार सिरोही के रावजी के पालखा है उसी प्रकार इन्होंने नया साधुपना लिपा है लेकिन जीव भ्रिलाने में तथा सावध दान में पुण्य की मान्यता तो पूर्ववत् ही है अतः सम्यक्त्व, चारित्र्य एक ही नहीं है।’

(भिक्षु दृष्टान्त ७)

१७७. किसी ने भिक्षु स्वामी से कहा—‘ये साधु का वेप पहनने हैं, फिर का मोच करने हैं, धोवन तथा गर्म पानी पीने हैं, फिर भी साधु क्यों नहीं?’ स्वामीजी बोले—‘ये बनी बनाई ब्राह्मणों के साधो हैं, जैसे—एक गाँव में ‘मेर’ जाति की बस्ती थी। राम्ने का गाव होने के कारण गाँव में मँकड़ों महाजन आदि शरापारी उस गाँव में आने जाने वहाँ विधाम भेजते, भिक्षु लोगों को रमोई आदि की बहुत कटिनाई होती थी। इसलिए महाजन लोगों ने गाँव वालों को किसी ब्राह्मणी आदि को बड़ा माने के लिए कहा। तब मेरों ने शहर में जाकर महाजन आदि

सोगों से वहाँ निवास करने के लिए बड़ी चेष्टा की पर कोई आने के लिए तैयार नहीं हुआ।

आखिर सब ने मिलकर 'डोम' जाति के गुरु की विधवा पत्नी (गुरुआनी) को उजले कपड़े पहनाकर ब्राह्मणी का बाना दे दिया। ऊँचे टीले पर एक साफ-सुथरा घर तुलसी का पौधा लगाकर उसे रहने के लिए दे दिया। दो रुपये के गेहूँ, आठ आने के मूँग और एक रुपये का घी आदि रसोई का सामान मौँपकर कहा—'महाजन आए तो उन्हें पीसे लेकर रोटियाँ खिला दिया करो।' मेर लोग आगनुक महाजनो को वह ब्राह्मणी का घर बजा देते, ब्राह्मणी रसोई पकाकर उन्हें खिला देती और मजदूरी ले लेती।

एक बार चार व्यापारी बहुत दूर से चलते-चलते थके-मादे उस गाँव में आए और उसी ब्राह्मणी के घर पर ठहरे। रसोई करने के लिए ब्राह्मणी से कहा। ब्राह्मणी ने गर्म-गर्मे गेहूँ की मोटी रोटियाँ (धी महित) और काचरियाँ ढाली हुई दाल व्यापारियों की परोसी। व्यापारी खाते-खाते ही बोले—'बुढ़िया माई! अमुक गाँव की 'राघण' (रसोई करने वाली) को भी हमने देखा, अमुक शहर की भी, पर तुम्हारे जैसी रसोई करने वाली कहीं नहीं देखी। दाल कैसी जायकेदार बनी है, काचरियों के ढालने से तो बड़ी ही स्वादिष्ट बन गई है।'।

अपनी प्रशंसा सुनकर ब्राह्मणी तो फूल गई। अपना आपा भूलकर बोली—'बटाऊ भाई! जायका कहा बन पड़ा है, पूरा जायका तो तब बनता जब मुझे काचरियाँ कुनरने के लिए छूरी मिली होती।' व्यापारी चमक उठे और बोले—'तो फिर किससे कुतरी काचरियाँ?' ब्राह्मणी—'कुतरी क्या सिर।' यों ही दाँतों से काट-काट कर ढाली है।' व्यापारी—'छि छि करते आख तरेरते हुए घालियों के ठोकर मारकर उठ खड़े हुए। पापिनो! हम सबको जूटन खिलाकर भ्रष्ट कर दिया।' ब्राह्मणी ने कांपते हुए हाथ जोड़कर कहा—'अरे भाई! यह घाली मन तोड़ देना। अमुक 'डोम' की माँगकर लाई हूँ।' व्यापारी झल्लाकर बोले—'सच बतला तू किस जाति की है?' ब्राह्मणी ने अपना हाल सुनाया—'मैं दरअसल तो 'डोमिनी' हूँ पर गाँव वालों ने मुझे ब्राह्मणी बना दिया है, इसलिए मैं बनी बनाई ब्राह्मणी हूँ।'।

स्वामीजी ने समाधान करते हुए कहा—'इस प्रकार ये साधु की क्रिया करते हैं पर सम्पत्त, धारित्र न होने से बनी बनाई ब्राह्मणी के साथी हैं।'।

(भिक्षु दुष्टान्त ११६)

१७८. कोई व्यक्ति रोटियों के लिए साधु का वेष पहनता है, उसको लोग कहते हैं—'साधु घत अच्छी तरह पालन करना।' उस पर स्वामीजी ने दुष्टान्त देते हुए कहा—'पति के मरने पर उसकी स्त्री को बलात् अर्थात् बाधकर जलाते हुए लोग उसे कहते हैं—'हे सनी माता! तेजरा (तीन दिनों से आने वाला ज्वर)

आहार आदि से लेना चाहिए। इस दान में धावक को पाप तो अत्यन्त लगता है परन्तु निर्बरा बहुत होती है। स्वामीजी ने इसका समाधान करते हुए कहा—‘जब राजपूत का बेटा सपना करते-करते भावकर धर खता जाता है तब सोच उसे सच्चा गूर नहीं बताते, राजा उसे ‘पट्टा’ नहीं खाने देता, लोगों में उसकी इज्जत नहीं होती। ठीक इसी प्रकार भगवान् के अनुयायी बहलाकर जो साधु आपत्ति-काल में अशुद्ध आहार आदि सेते हैं एव देने वाले धावको को अल्प पाप तथा बहुत निर्बरा बताते हैं, वे समय की आराधना नहीं कर सकते।

(भिवखु दृष्टान्त २२३)

१८२. किसी ने स्वामी भोग्यजी से कहा—‘कुछ सम्प्रदाय वाले साधु मास-खमण आदि तपस्या करते हैं, सिर का लुबन करवाते हैं, उष्ण पानी तथा घोषण पीते हैं। क्या उनकी यह धार्मिक क्रिया बेकार जाएगी? स्वामीजी ने कहा—‘किसी व्यक्ति ने एक साख रुपये का दिवाला निकाला। बाद में किसी के पास से एक पैसे का तेल साकर उसे एक पैसा देता है तो वह पैसे का साहूकार कहलाता है। एक रुपये का गेहूँ साकर एक खप्पा देता है तो रुपये का साहूकार कहलाता है पर साख रुपये का दिवाला निकाला उसका साहूकार नहीं कहलाता। ठीक इसी प्रकार जो साधु पंच महाव्रतों को स्वीकार कर आध्यात्मिक स्थानक आदि अनेक दोषों का सेवन करता है और उनका प्रायश्चित्त नहीं करना, यह जो बड़ा दिवाला है वह तपस्या और सिरलुबन आदि से कैसे उतर सकता है? तपस्यादिक का सम्पन्न पालन किया उसका वह साहूकार है पर पंच महाव्रतों का खडन किया वह दिवाला उससे कैसे उतर सकता है।’

(भिवखु दृष्टान्त २८६)

१८३. कई लोग कहते हैं—‘ये साधु कुछ दोषों का सेवन करते हैं फिर भी हम गृहस्थ लोगों से तो अच्छे ही हैं, क्योंकि वे कच्चा पानी नहीं पीते, स्त्री नहीं रखते आदि।’ स्वामीजी ने उदाहरण द्वारा समझाते हुए कहा—एक ‘व्यक्ति ने तीन एकामन किया। एक-एक बार में छह-छह रोटिया खाई। एक व्यक्ति ने तीन दिन का सेला करके प्रतिदिन आधी-आधी रोटि खाई। इन दोनों में अच्छा कौन और बुरा कौन?’ उसने कहा—‘तेले वाला बुरा और एकामन वाला अच्छा। स्वामीजी बोले—‘ठीक इसी प्रकार जो गृहस्थ व्रत स्वीकार करके उसका सम्पन्न पालन करता है वह एकामन वाले के समान है, देशव्रत धारक है और जो साधु-व्रत स्वीकार करके दोषों का सेवन करता है वह तेले में रोटि खाने के समान है, समय का विराधक है।’

(भिवखु दृष्टान्त ६७)

१८४. कुछ सम्प्रदायों में यह रिवाज है कि अढाई से बेले आदि तपस्या की पूर्ति के समय लह्दू (मोदक) बंटवाते हैं। स्वामीजी ने इसका अन्तर कारण

दृष्ट करके हुए कम — वे चारों सनसुरा के लिए लड़कूँ बंगले में, मगर मैं जानती हूँ कि यह सब के समाप्त हो जायगा और मैं भी बच जाऊँगी (देखें)।' तभी स्वामीजी ने उदाहरण देते हुए कहा — 'जब गाँवकार की बेटी का रिवाज हो रहा है, पहिली से बहरी से बीजे के पाने का उते है। सामने भी का गया गया गया। पहिली से बहरी से बहरी से हुआ है। काने हुए वेद पान की बहरी लगी है — 'गो गो २ गो गो २ (गुन को गुन गो २)। लड़की लगता तो गई पर हुए गुन भी।' अन्तर्गत देखा १० कोई बात टाँप गयी आया। बास में गुनो लगी — 'गो मे गो २ गो २ गो २ (हिसा २)।' बहरी ने फिर बहरी लगी — 'कोरी कर २ कोरी कर २ (कोरी गिरी २)।' लड़की ने बास की गान देकर कहा — 'गुन आनी २, गुन भागी २ (करी में गुन मोन जायगा २)।' बास उगरी गुनो पर हाथ पड़ा — 'बास बास हो गुन आनी २, बास बास हो गुन आनी' (ये बास का क्या जायगा २)। गुन पाने पनेवा लड़ी ठीक है। लड़ा मीन गान के लिए आई हुई लड़क आती देखी थी। लड़ पहिली की भी गोमे की गुन गुन को गमना गई और अन्त मीन गा हि हुई गाने लगी — 'गुन गो हो बहरी रा बास बासो गुन गुन है (दे गुनो के लिए)। गुन गुनो गुनो गो गुनो जा रहा है)। बास में जाटनी की ओर कनियवा गहाकर कहा — 'गोपी! शोर क्यों कर रही है, भाया भाया बास में है।' जाटनी ने भायी गोपी को आवा में मीन बन्द कर दिया और दोनों ने मिलकर भी मे हाथ बिकन कर लिए।

स्वामीजी ने कहा — 'जिस प्रकार बास में कोरे निकोरे में भी बुराबा। गोधा गुन जायगा तो भी जिनना पने पड़ेगा उगना ही अच्छा है। जाटनी को भी आधा भी देना स्वीकार कर लिया। ठीक उगी प्रकार मे सामची (मम्पराय) में लड़कूँ बहरी है, सब मोरक उग्री नहीं मिलने फिर भी गोमे है कि जिनने मिले लड़ी ठीक है, इसलिए उग्रीने अपने मनबब के लिए यह रीति चलवाई है।'

(भिक्षु दुटान २५०)

१८५. गुनोत्री और निवोहरी दो साधु ऊपर से कुछ कहिनारी में चलने लगे और मन में स्वामीजी के ध्यान को अपनी ओर खींचने की उनकी भावना थी। वे कहते लगे — 'साधु को तीमरे पहर में गोबरी करनी चाहिए, गाव में नहीं रहना चाहिए।' एक बार एक गाँव में स्वामीजी को वे मिले, देखा तो वे पहले पहर में गोबरी कर रहे हैं। स्वामीजी ने पूछा — 'तुम कहने हो कि साधु को तीमरे पहर में गोबरी करनी चाहिए तो फिर पहले पहर में गोबरी क्यों करते हो?' वे बोले — 'हम तो धोवन पानी के लिए गोबरी जा रहे हैं।' स्वामीजी ने कहा — 'जब धोवन पानी का दोष नहीं है तो दो रोटी लाने में क्या दोष है?' वे आन को घुमाते हुए बोले — 'साधु को लड़कूँ नहीं खाना चाहिए, साधु को पौ नहीं

घाना चाहिए, क्या साधु को बछड़ा-बछड़ी पैदा करना है जिससे ऐसे सरम पदार्थ खाए ?' स्वामीजी बोले—'देवरी के पुत्र साधुओं ने मोदक लिए ऐसा आगम में वर्णन आता है, तब तुम क्यों कह सकते हो कि साधु को सड़्डू खाना नहीं बल्लता।' वे बोले—'वे तो महापुरुष थे।' स्वामीजी ने कहा—'महापुरुष होंगे वे फिर भी खाएंगे।' तब वे आर्चन में आकर बोले—'तुम सेरापणियों ने दया और दान को ही समाप्त कर दिया अतः हम तुम्हें समार में बदनाम करेंगे।' स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा—'लोगों का कथन है कि मुनि बेप मे रहने वाले दो हजार व्यक्ति मेरे विरोधी हैं। यदि वे कम हैं तो खलो वे आज पूरे हो गए, यदि वे पूरे हैं तो दो अधिक हुए सही।'।

वहा से बिहार कर वे नैणवा गांव में गए। स्वामीजी के श्रावकों को शत्राशील बनाने का प्रयत्न किया पर वे श्रावक उनको कपट-क्रिया को समझ गए। उन्होंने एक साधु को जो बेले की तपस्या करते थे बहा—'आप तो अच्छी तपस्या करते हैं पर वे साधु तो नहीं करते। वे बोले—'लोनूपता छोड़ने में तपस्या होती है।' वे लोनूपी हैं।' श्रावकों ने उनके पास आकर कहा—'वे तो आपको लोनूपी कहते हैं।' वे बोले—'वह तपस्या तो करता है पर क्रोधी है।' श्रावको ने उनको कहा—'आपको वे क्रोधी बताने हैं।' तब दोनों पास में आकर हाथड़ा करने लग गए। लोगों ने उनकी इस स्थिति को देखते हुए कहा—

जोड़ी तो जुगनी मिली, कुशलो ने निलोक।

ऊ धारै ऊ ऊपरै, किण बिद्य जासी मोख॥

(भिक्षु दृष्टान्त ७५)।

१८६. कुछ साधु कहते हैं कि अभी पाचवें आरे में पूरा साधुपन नहीं चलता इस पर स्वामीजी ने दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कहा—'हिम्री व्यक्ति ने गांव में चौके के नीचे दिए। भोजन करने वाले जब घर आए तब वह एक-एक व्यक्ति को अन्दर आने देता। लोग कहने लगे—'तुमने नीचे तो चौके के लिए और एक-एक व्यक्ति को अन्दर क्यों आने देता है?' वह बोला—'मेरा सामर्थ्य इतना ही है' अमुक व्यक्ति ने तो अपने बाप का क्रियावर (मोसर) किया ही नहीं, मैं एक-एक व्यक्ति को तो आने देता हूँ? लोग बोले तुम भी मोसर नहीं करते और चौके के नीचे नहीं देने तो क्या जबरदस्ती लोग तुम्हारे घर पर आते? तुम चौके के नीचे देकर एक-एक को भोजन करवाने हो इससे तो मोसर नहीं करने की अपेक्षा तुम्हारी अधिक बदनामी होती है।'।

इस प्रकार जो साधु समय लेते समय तो पाच महाव्रत स्वीकार करता है और पालने के समय पूरा नहीं पालता वह इस लोक में तथा परलोक में अपयश को प्राप्त होता है।

(भिक्षु दृष्टान्त ५६)।